महाकवि कालिदास कृत

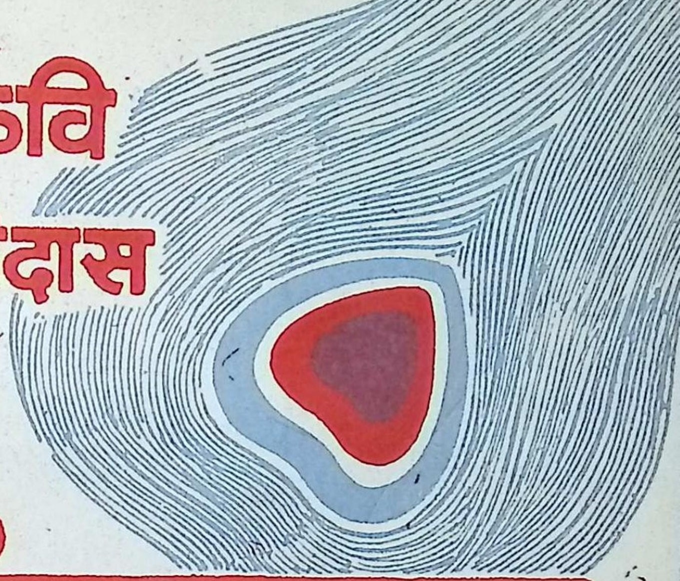

रघुवंशमहाकाव्यम्

त्रयोदशः सर्गः

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदान दक्षः।
अनन्य सामान्य कलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धुः। १३/९

कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चा-
न्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम्।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात
सकानना निष्पततीव भूमिः १३/१८

रघुवंश महाकाव्यम्

[त्रयोदश: सर्ग:]

नई दिल्ली
श्री/श्रीमती/कुमारी..........
को........परीक्षा........में
उत्तीर्ण होने पर पुरस्कृत की गई
मंत्री संचालक
दिनाँक

डॉ० बाबूराम त्रिपाठी
शास्त्री, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच० डी०
संस्कृत विभागाध्यक्ष (नि०)
सेण्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा

●

डॉ० चन्द्रशेखर द्विवेदी
एम० ए०, पी-एच० डी०
संस्कृत विभागाध्यक्ष
कासगंज कॉलेज, कासगंज (एटा)

Bhagwan Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya ★ Bharatiya Vidya
612

1991-92

महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा-२

संस्करण : १९९१-९२] [मूल्य : १८·००

प्रकाशक :
महालक्ष्मी प्रकाशन
पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता
शहीद भगतसिंह मार्ग, (नूरीगेट) आगरा–२८२ ००२

Bharatiya Vidyalaya ... Sri Sankaracharya
612

संस्करण : १९९१-९२
मूल्य : अठारह रुपये मात्र (१८·००)

भारतीय विद्या भवन
नई दिल्ली
श्री/श्रीमती/कुमारी मोहन रावत
को........परीक्षा........में
उत्तीर्ण होने पर पुरस्कृत की गई
T. R. Mandran
मंत्री संचालक
दिनाँक..........................

मुद्रक :
नटराज आफसेट प्रेस, दिल्ली

प्राक्कथन

डॉ० चन्द्रशेखर द्विवेदी द्वारा सम्पादित रघुवंश महाकाव्य के त्रयोदशः सर्गः को आद्योपान्त देखा और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विद्वान् लेखक ने परीक्षाब्धितितीर्षु, छात्रों की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की है। यद्यपि एतद्विषयक कई पुस्तकें उपलब्ध हैं, पर उन सब में कोई न कोई कमी रह गई है जिसके लिए परीक्षार्थियों को इतस्ततः भटकना ही पड़ता है, उदाहरणार्थ विश्वविद्यालयीय परीक्षाओं में श्लोकों की व्याख्या अथवा संस्कृत सरलार्थ या भावार्थ संस्कृत में भी लिखना आवश्यक होता है, पर अन्य टीकाकारों ने अब तक इस ओर ध्यान नहीं दिया, प्रस्तुत पुस्तक में प्रत्येक श्लोक की संस्कृत टीका या व्याख्या के साथ-साथ, प्रत्येक श्लोक का संस्कृत सरलार्थ भी दिया गया है, तथा प्रत्येक श्लोक के शब्दानुयायी अनुवाद के बाद उसका भावार्थ या सरलार्थ भी स्पष्ट किया गया है, 'विशेष शीर्षक' के अन्तर्गत छन्द अलंकार गुण आदि काव्यगत विशेषताओं और कविकाव्यकौशल का भी निर्देश किया गया है। प्रत्येक श्लोक के अन्त में श्लोक के पदों की व्याकरणगत विशेषताओं का निर्देश करते हुए, अन्तः कथाओं एवं शब्द सौष्ठव तथा अर्थगाम्भीर्य आदि का भी पूर्णतया परिचय दिया गया है। इस प्रकार पुस्तक अपने में पूर्ण हैं तथापि संक्षिप्त भी है, केवल उतना ही विवेचन है जितना कि परिक्षार्थी के लिए आवश्यक है।

भूमिका भाग में विद्वान् लेखक ने उन सभी विषयों का संक्षिप्त और परीक्षा की दृष्टि से परिपूर्ण विवेचन किया है जिसका कि कवि तथा उसके कवित्व से सम्बन्ध है और जिनका जानना परीक्षार्थी के लिए आवश्यक हैं जैसे—काव्य तथा महाकाव्य का शास्त्रीय विवेचन, रघुवंश का महाकाव्यत्व और उसका कथानक। कालिदास की अन्य रचनाओं का परिचय स्थितिकाल, जीवन चरित, काव्यकला, भाव सौन्दर्य, रसाभिव्यक्ति, अलंकार योजना और उपमा के क्षेत्र में उनका वैशिष्टय, प्रकृति चित्रण आदि। त्रयोदश सर्ग कथासार, तथा वैशिष्ट्य, आदि। अन्त में कालिदास तथा भारवि के कवित्व की समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक विवेचना आदि। वस्तुतः प्रस्तुत पुस्तक का भूमिका भाग संक्षिप्त होता हुआ भी परीक्षार्थियों से प्रष्टव्य सभी प्रश्नों का संक्षिप्त एवं पूर्ण उत्तर प्रस्तुत करने में सक्षम है। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी ऐसी मेरी धारणा हैं। —**बाबूराम त्रिपाठी**

दो शब्द

महाकवि कालिदास की रचनाओं में रघुवंश महाकाव्य का अतिविशिष्ट महत्व हैं। भारतीय आदर्श पुरुष राम के जीवन का एवं सम्पूर्ण मनुवंश का वर्णन अत्यन्त कलात्मक एवं ललित ढंग से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। लङ्का से लेकर अयोध्या तक के मार्ग एवं प्रमुख महत्वपूर्ण भूभाग, पर्वत, नदी, आश्रमों एवं महापुरुषों का विस्तृत वर्णन इस सर्ग में होने के कारण यह सर्ग प्रकृति वर्णन एवं भौगोलिक दृष्टि से जहाँ महत्वपूर्ण है वहीं कालिदास की अद्भुत कल्पना शक्ति एवं वर्णन क्षमता का भी परिचायक है।

छात्रों के हित को ध्यान में रखकर इस पाठ्य पुस्तक का सम्पादन करते समय भूमिका के रूप में संस्कृत महाकाव्य परम्परा, कालिदास की कलाशैली, प्रतिपाद्य ग्रन्थ का विश्लेषण आदि करते हुए प्रत्येक श्लोक का अन्वय, शब्दार्थ, हिन्दी अनुवाद भावार्थ, संस्कृत टीका, संस्कृत में सरलार्थ, व्याकरणात्मक टिप्पणी, और विशेष देकर साहित्यिक सौन्दर्य प्रस्तुत किया गया है। अन्त में सभी प्रमुख सूक्ति वाक्यों की व्याख्या देकर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाया गया है। आशा है इससे छात्र-छात्राओं का हित साधन तो होगा ही प्राध्यापकों को भी यह पुस्तक रुचिकर लगेगी।

—सम्पादक

प्रश्न-सूची

१. रघुवंश का परिचय दीजिए।

२. रघुवंश के १३वें सर्ग की विशेषताएँ बताइये।

३. कालिदास का परिचय देते हुए संक्षेप में उनकी कृतियों पर प्रकाश डालिये।

४. कालिदास का समय बताते हुए उनके निवास स्थान के विषय में अपने विचार लिखो।

५. रघुवंश के १३वें सर्ग की कथा लिखिए।

६. रघुवंश त्रयोदश सर्ग में श्री राम द्वारा वर्णित 'समुन्द्र शोभा' को अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए।

७. रघुवंश के त्रयोदशः सर्गः के आधार पर 'उपमा कालिदासस्य' पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

८. 'उपमा कालिदासस्य' के परिप्रेक्ष्य में रघुवंश महाकाव्य त्रयोदशः सर्गः की समीक्षा कीजिए।

९. "कालिदास का काव्य भारतीय संस्कृति का दर्पण है।" इस उक्ति की उपयुक्तता को रघुवंश के त्रयोदशः सर्गः के आधार पर संक्षेप में समझाइये।

१०. राम द्वारा किये गये विविध वर्णनों में से किसी एक वर्णन का चित्रण कीजिये।

११. रघुवंश के त्रयोदशः सर्गः के आधार पर राम की चारित्रिक विशेषताओं पर एक लेख लिखिये।

१२. रघुवंश के त्रयोदशः सर्गः में वर्णित "गंगा-यमुना-संगम" का सार अपने शब्दों में हिन्दी अथवा अंग्रेजी में लिखिये।

१३. रघुवंश त्रयोदशः सर्गः के आधार पर निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर विवेचनात्मक टिप्पणियाँ लिखिए—

(i) माल्यवान्
(ii) पञ्चाप्सर
(iii) शरभंगमुनि
(iv) ब्राह्मण सरः

१४. रघुवंश—त्रयोदश सर्ग के आधार पर कालिदास के प्रकृति—चित्रण की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

१५. रघुवंश—त्रयोदश सर्ग के आधार पर निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर विवेचनात्मक टिप्पणियाँ लिखिये :—

(i) माल्यवान्
(ii) अगस्त्यमुनि
(iii) चित्रकूट
(iv) सरयू नदी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
भूमिका	१—४०
संस्कृत साहित्य का वर्गीकरण	१
महाकाव्य का लक्षण	२
रघुवंश का महाकाव्यत्व	३
कालिदास की रचनाएँ	५
कालिदास का काल	६
कालिदास का जन्म स्थान	१२
कालिदास का जीवन-चरित्र	१३
कालिदास की काव्य-कला	१५
उपमा कालिदासस्य	२५
प्रकृति चित्रण	२९
रघुवंश त्रयोदश: सर्ग: का कथासार	३३
त्रयोदश: सर्ग: का वैशिष्ट्य	३४
कालिदास व भारवि की काव्य-शैली की तुलना	३८
मूल पाठ	१-१३६
त्रयोदश: सर्ग:	१
परिशिष्ट	१३७-१४४
सूक्तियों की व्याख्या	१३७

भूमिका

काव्य परिचय

बाल्मीकिमित्र साभासं यशः शरीरेण सर्वदा सन्तम् ।
रसवद्वचनविकासं नमत कवि कालिदासं तम् ॥

समस्त विश्व को सभ्यता और संस्कृति का सन्देश देने वाले वेदों की अमरवाणी संस्कृत भाषा अनादि काल से ज्ञानमन्दाकिनी के रूप में प्रवाहित है। इसी के क्षितिज पर सहस्त्रों वर्ष पूर्व वाल्मीकि का ज्ञान सूर्य प्रथम संस्कृत काव्य के रूप में उदित हुआ था। वस्तुतः संस्कृत भाषा भारत की आत्मा है इसी के साहित्य से भारत को जगदगुरु का गौरव मिला था। इन्हीं ब्राल्मीकि की परम्परा में कालिदास, हर्ष, बाण, माघ आदि कवियों की वाग्धारा प्रवाहित होकर जनमानस को तरङ्गित करती रही है।

संस्कृत भाषा के वर्तमान में दो रूप है—(१) वैदिक संस्कृत और (२) लौकिक संस्कृत। आज संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत पाणिनीय व्याकरण (लौकिक संस्कृत) का आश्रय लेकर लिखा गया काव्य साहित्य है। इस संस्कृत साहित्य का दो प्रमुख धाराओं में विकास हुआ जिसका परवर्ती काल पुनः विविध रूपों में पल्लवन होता रहा। संक्षिप्त इसका समीक्षण निम्नांकित रूप में किया जा सकता है—

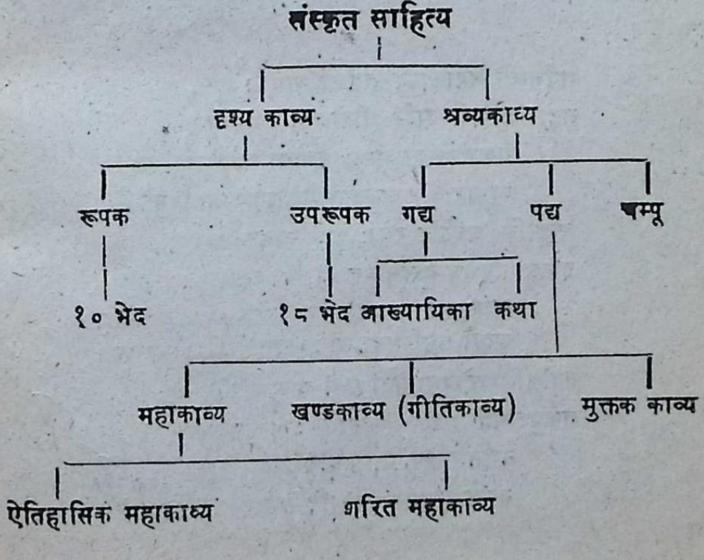

उपरिलिखित चित्रक के माध्यम से श्रव्यकाव्य की महाकाव्य परम्परा में ही प्रस्तुत ग्रन्थ रघुवंश को परिगणित किया जाता है, क्योंकि इसमें महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण हैं। विद्वानों के अनुसार महाकाव्य में निम्नांकित प्रमुख लक्षण होने चाहिए—

महाकाव्य के लक्षण

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार

(१) महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। (२) इसका नायक कोई देवता या उत्तमकुलोत्पन्न धीरोदात्त गुणान्वित कोई क्षत्रिय होता है। (३) एक ही वंश के अनेक कुशल क्षत्री राजा भी नायक हो सकते हैं। (४) शृंगार, वीर शान्त में से ही कोई एक रस अंगी तथा शेष रस अंग रूप में होने चाहिए (५) इतिवृत्त ऐतिहासिक या सज्जनाश्रित होता है। (६) ग्रन्थारम्भ मंगलाचरण से होता है। (७) काव्य में कहीं खलों की निन्दा तो कहीं सज्जनों की प्रशंसा होनी चाहिए। (८) सर्गों की संख्या ८ से अधिक होती है। (९) एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होता है। सर्गान्ति में छन्द बदला जाता है। (१०) सन्ध्या, सूर्योदय, ग्रीष्म, बसन्त, वन मृगया, युद्ध आदि का विस्तार से वर्णन होता है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः,
सद्वंश क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वित
एकवंशभवा भूपाः कुशला बहवोऽपि वा,
शृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः,
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्प वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फल भवेत्,
आदौ नमस्क्रिया शीर्वा वस्तु निर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम्,
एकवृत्तमयैं पद्यैर वसाने ऽन्य वृत्तकैः।
नाति स्वल्पा नाति दीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह,
नाना वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्वनं दृश्यते।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचन भवेत,
सन्ध्या सूर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वान्त वासराः।
प्रातर्मध्यह्न मृगया शैलर्तु वनसागराः,
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग तुराध्वराः।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा,
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।

उपरिलिखित महाकाव्य के समस्त लक्षणों का समन्वय रघुवंश में हुआ है या नहीं यह अभी विश्लेषण से ज्ञात हो जायगा किन्तु इस सन्दर्भ में यह बतलाना आवश्यक है कि कोई भी कवि नियमों के संकीर्ण बन्धनों में आबद्ध होकर नहीं चलता और यदि उसने ऐसा किया तो लक्षणानुसारी काव्यलेखन की प्रवृत्ति में उसका काव्य मात्र उदाहरण ग्रन्थ बनकर रह जायेगा उसमें सहृदय हृदयाकर्षक तत्वों का अभाव ही रहेगा। इसीलिए कवि को स्वतन्त्र प्रजापति की संज्ञा दी गई है रघुवंश महाकाव्य में जहाँ एक ओर इन लक्षणों का समन्वय है वहीं कवि प्रतिभा का चमत्कार भी।

ऐसा प्रतीत होता है कि लक्षणकार ने कालिदास आदि के काव्यों को सामने रखकर ही लक्षणों की रचना की होगी।

रघुवंश का महाकाव्यत्व

(१) रघुवंश की रचना १६ सर्गों में की गई।

(२) इसमें ३१ राजाओं का वर्णन है अतः सूर्य वंशी राजा इसके नायक हैं।

(३) अङ्गीरस शृंगार एवं वीर, करुण, हास्य आदि सभी रस अङ्गभूत हैं।

(४) प्रायः प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग है सर्गन्ति के २, ३ श्लोकों में छन्द भेद है।

(५) सर्गन्ति में भावी वृत्त की सूचना है।

(६) ग्रन्थारम्भ नमस्क्रियात्मक संगलाचरण से हुआ।

(७) सन्ध्या, युद्ध, मृगया, नदी, वन आदि का विस्तृत वर्णन है।

(८) इतिवृत्त ऐतिहासिक या पौराणिक है।

(९) काव्य का नाम प्रतापी, दानशील, उदार रघु के बंश पर रखा गया है।

जैसाकि नाम से प्रतीत होता है कि इसमें रघु के वंशज राजाओं का अर्थात् मनु से लेकर अग्निवर्ण तक ३१ सूर्य वंशी राजाओं का चरित्र वर्णित हैं। अतः यह एक चरित्र प्रधान काव्य है।

कुछ विद्वानों ने रघुवंश में २८ राजाओं का वर्णन माना है।

रघुवंश का कथानक—संक्षेप में सर्गानुसार

सर्ग १—मनुपुत्र दिलीप की सन्तानहीनता, वशिष्ठाश्रम में जाना, गुरु के आदेश से नन्दिनी की सेवा का व्रत लेना।

सर्ग २—राजा दिलीप द्वारा नन्दिनी की सेवा, नन्दिनी द्वारा राजा की परीक्षा, पुत्र प्राप्ति का वरदान।

सर्ग ३—रघु का जन्म, विद्याध्ययन, इन्द्र युद्ध में रघु की विजय, रघु का राज्याभिषेक।

सर्ग ४—रघु की दिग्विजय यात्रा।

सर्ग ५—ब्रह्मचारी कौत्स का आगमन, गुरुदक्षिणा देने के लिए रघु द्वारा कुबेर पर आक्रमण की योजना। कुबेर द्वारा धनवृष्टि, कौत्स द्वारा पुत्र प्राप्ति का वरदान देना, अज का जन्म, इन्दुमती स्वयंवर के लिए अज का प्रस्थान।

सर्ग ६—इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन।

सर्ग ७—अज इन्दुमती का विवाह, प्रतिस्पर्धी राजाओं से युद्ध, अज की विजय।

सर्ग ८—अज का राज्याभिषेक, दशरथ जन्म, इन्दुमती की मृत्यु, अज का विलाप।

सर्ग ९—दशरथ द्वारा मृगया में श्रवण कुमार को मारना, श्रवण कुमार के माता-पिता द्वारा दशरथ को शाप देना।

सर्ग १०—दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करना, राम लक्ष्मण आदि ४ पुत्रों का जन्म।

सर्ग ११—सीता स्वयंवर, राम आदि का विवाह।

सर्ग १२—राम वनवास, सीताहरण, रावण से युद्ध, रावण वध।

सर्ग १३—राम का पुष्पक विमान से अयोध्या लौटना, मार्ग का विस्तृत वर्णन।

सर्ग १४—राम का राज्याभिषेक, सीता का परित्याग।

सर्ग १५—कुश लव का जन्म, राम का स्वर्गारोहण ।

सर्ग १६—कुश का राज्याभिषेक, कुमुद्वती से विवाह ।

सर्ग १७—कुश की मृत्यु, पुत्र अतिथि का राज्याभिषेक ।

सर्ग १८—अतिथि से २१ राजाओं का वर्णन ।

सर्ग १९—अग्निवर्ण का राज्याभिषेक, उसकी अतिशय विषयाशक्ति, राजयक्ष्मा रोग से उसकी मृत्यु, रानी का राज्याभिषेक, मन्त्रियों द्वारा गर्भस्थ शिशु को उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय ।

इस प्रकार रघुवंश के १९ सर्गों में ३१ राजाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज और राजव्यवस्था का सुन्दर चित्रण हुआ है । कालिदास की लघुत्रयी (कुमारसम्भव, रघुवंश, मेघदूत) में यह ग्रन्थ सर्वश्रेष्ठ है ।

कवि परिचय

कालिदास की रचनाएं

संस्कृत साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र कविश्रेष्ठ, कविकुलकुमुद-सुधाकर कालिदास की कमनीय कला का प्रकाशन यह ग्रन्थ युगों तक उनकी यशोगाथा का गान करता रहेगा। इस ग्रन्थ की रचना के विषय में यद्यपि कोई मतभेद नहीं हैं किन्तु कतिपय विद्वानों ने कालिदास के नाम से ४१ कृतियों का उल्लेख किया है ।

इस विषय में अधिक सन्देह की आवश्यकता नहीं कि कालिदास की अति प्रसिद्धि और लोकप्रियता के कारण परवर्ती काल में अनेक साधारण कवियों ने भी कालिदास की उपाधि धारण कर अपनी कृतियों की लोकप्रियता की कामना की थी । संस्कृत साहित्य में इन यशोऽभिभाषी विद्वानों का उल्लेख है जिन्होंने कालिदास उपनाम धारण किया था ।

आदि कालिदास की तो निम्नांकित ७ कृतियाँ ही निर्विवाद रूप से स्वीकार की जाती है—

महाकाव्य (१) कुमारसम्भव, (२) रघुवंश ।

खण्डकाव्य—(३) मेघदूत

मुक्तक काव्य—(४) ऋतु संहार

नाटक—(५) अभिज्ञान शाकुन्तल (६) विक्रमोर्वशीय (७) मालविकाग्निमित्रम ।

कालिदास का स्थितिकाल

प्राचीनकाल के संस्कृत कवियों में कुछ को छोड़कर प्रायः अधिकांश ने अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा हैं, इसमें जहाँ एक ओर उनकी निरहंकारिता का परिचय प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर उनके समय, स्थान, कृतित्व आदि के सम्वन्ध में पर्याप्त असुविधा एवं व्यर्थ टीका टिप्पणी का अवसर उपस्थित होता है। इसी प्रकार के कवियों में कालिदास भी हैं। फलतः अनेक देशी विदेशी समालोचकों की विभिन्न मान्यताएँ आज तक कालिदास के समय निर्धारण में असफल रही हैं फिर भी जिस प्रकार अन्वेष्टा विद्वानों ने श्रमपूर्वक साहित्य और पूर्वापर सीमाओं का मन्थन किया है तदनुसार कालिदास के काल सम्बन्ध में पर्याप्त एकरूपता आई है भले ही इदयित्थं रूप से कुछ कह पाने के लिए हमारे पास पुष्ट प्रमाण नहीं हों।

'सारन्ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु' के अनुसार छात्रों के सर्वांगीण हित को ध्यान में रखकर यहाँ अति प्रसिद्ध तर्कों को उपन्यस्त करते हुए उनके काल निर्धारण का प्रयत्व किया गया है।

कालिदास से जन्म काल की पूर्वापर सीमा को ध्यान में रखकर विद्वानों के मतों को चार वर्गों में संकलित किया जा सकता है—

प्रथम मत—ईशा की छठी शती।

द्वितीय मत—ईशा की चतुर्थ शती या गुप्तकाल।

तृतीय मत—ई० पू० द्वितीय शती।

चतुर्थ मत—ई० पू० प्रथम शती।

प्रथम मत-छठी शती ई० का मत—पाश्चात्य विद्वान् डॉ० फर्ग्युसन, डॉ० हार्न०ली, प्रो० मैक्समूलर और भारतीय विद्वान् श्री हरप्रसाद शास्त्री ने इस शती में कालिदास को स्वीकार किया है। उसके समर्थन में जो तर्क दिये गये हैं उनमें मुख्य इस प्रकार है—

(१) ५४४ ई० में शकों को पराजित कर उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने अपनी विजयस्मृति में विक्रम संवत् चलाया था जो ६०० वर्ष पूर्व से प्रचारित किया गया था। कालिदास के रघुवंश में शक, हूण आदि जातियों का उल्लेख है। हूणों ने ५०० ई० में भारत पर आक्रमण किया था, अतः कालिदास का काल छठी शती है।

(२). छठी शती के प्रसिद्ध ज्योतिषी बराहमिहिर ने आषाढ़ से वर्षारम्भ माना है, कालिदास ने भी मेघदूत में आषाढ़ से ही वर्षा ऋतु स्वीकार की अतः कालिदास और बराहमिहिर समकालीन थे।

(३) कालिदास के मेघदूत में दिङ्नाग का उल्लेख है, दिङ्नाग आचार्य का काल छठी शती है।

(४) छठी शती में संस्कृत का पुरुत्थान हुआ था।

(५) ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ की रचना कालिदास ने की थी जो कालिदास शकारि विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे—

धन्वन्तरि क्षपणकामर सिंह शंकु वेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासाः।
ख्यातो बराहमिहिरो नृततेः सभायां रत्नानि वैवररुचिर्नवविक्रमस्य ॥

समीक्षा— कालिदास का काल ईशा की छठी शती स्वीकार करने में जो तर्क दिये हैं वे पुष्ट नहीं है क्योंकि—

१—किसी भी ऐतिहासिक प्रमाण से यह प्रमाणित नहीं है कि ६०० वर्ष वाद के किसी राजा ने ६०० वर्ष पूर्व से सम्वत् चलाया हो और समाज ने उसे मान्यता दे दी हो।

२—४७३ ई० के मन्दसौर शिलालेख पर मालव सम्वत् का उल्लेख है तथा इस पर कालिदास के मेघदूत का स्पष्ट प्रभाव है।

३—छठी शती में विक्रमादित्य नामक या उपाधिकारी किसी राजा का विवरण प्राप्त नहीं है।

४—हूणों ने भारत पर आक्रमण नहीं किया था अपितु रघु ने उन्हें भारत की सीमा के बाहर ही परास्त किया था।

५—छठी शती में हर्ष ने नहीं अपितु यशोधर्मत ने हूणों को पराजित किया था।

६—संस्कृत की उन्नति तो ई० पू० से ही होती आ रही थी।

७—आषाढ़ से वर्षा ऋतु का आरम्भ बराहमिहिर से पहले ही माना जाता रहा है। अतः यह तर्क कि कालिदास बराहमिहिर के समकालीन थे व्यर्थ है।

८—दिङ्नाग शव्द का उल्लेख कालिदास ने किसी बौद्ध दार्शनिक दङ्नागाचार्य के लिए प्रतिस्पर्धा से किया था ऐसा कोई प्रमाण नहीं फिर दङ्नाग का काल छठी शती न होकर चतुर्थ शती है।

६—ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ का रचनाकार आदि कालिदास को नहीं मान सकते क्योंकि उनकी अन्य कृतियों से इसका कोई साम्य नहीं है। सम्भवत: किसी परवर्ती कालिदास नामधारी ने इसकी रचना की होगी।

अत: कालिदास को ईशा की छठी शती में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

द्वितीय मत-ईशा की चतुर्थ शती या गुप्तकाल—

पाश्चात्य विद्वान् प्रो० कीथ, मैकडोनेल एवं अनेक आधुनिक भारतीय विद्वान् जिसमें प्रमुख हैं—

प्रो. के. वी. पाठक, प्रो. डॉ. वा. वि. मिराशी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल एवं डॉ० रमाशंकर तिवारी इन्होंने कालिदास का काल चतुर्थ शती का अन्त या पांचवीं शती का आरम्भ अर्थात् चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल स्वीकार किया है। इस मत के समर्थकों को युक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१. कालिदास के विषय में प्रसिद्ध है कि वे किसी विक्रमादित्य की राज्य सभा में थे—शकारि चन्द्रगुप्त द्वितीय (३६५-४१३ ई०) ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, अत: कालिदास इसी राजा के आश्रित थे।

२. कालिदास के रघुवंश में वक्षु नदी के तट पर हूणों को पराजित करने का उल्लेख है यह नदी बाह्लीक देश की आवसस नदी है। यहीं ४६० ई० में हूणों ने साम्राज्य की स्थापना कर भारत पर आक्रमण किया था। अत: कालिदास इस घटना के समकालीन थे।

३. कालिदास के काव्यों में वर्णित वैभव गुप्तकालीन समृद्धि का परिचायक है।

४. चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर कुमारसम्भव की रचना की गई।

५. रघुदिग्विजययात्रा चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजय यात्रा से प्रभावित है।

६. कालिदास के ग्रंथों में चन्द्र और गुप्त शब्दों का भूयो भूय प्रयोग हैं। जो गुप्त राजाओं का परिचायक है।

७. विक्रमोर्वशीय नाटक का नामकरण विक्रमादित्य उपाधि का सूचक है।

८. गुप्तकाल संस्कृत भाषा का स्वर्णकाल है।

९. चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पूर्व प्रचलित मालव सम्वत् को विक्रम सम्वत् में बदला था।

१०. अभिज्ञान शाकुन्तल में स्त्री शिक्षा (सुश्रूषस्व गुरून कुरु प्रियसखी वृत्ति सपत्नी जने०) विषयक उल्लेख वात्स्यायन के काम सूत्र पर आधारित है। वात्स्यायन का काल ई० की तीसरी शती है अतः कालिदास उनसे परवर्ती हैं।

समीक्षा—इस शती में कालिदास को स्वीकार करने के लिए जो तर्क दिए गये हैं उनमें कुछ अवास्तविक और कुछ मात्र भावनात्मक हैं यथा—

१. अनेक प्रचलित रूढ़ियों व साहित्यिक प्रमाणों से यह तो निर्विवाद है कि कालिदास किसी शकारि विक्रमादित्य के काल में हुये थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने जब विक्रमादित्य की उपाधि धारण की तो निश्चय ही विक्रमादित्य नामक कोई पराक्रमी राजा हुआ होगा जिसका नाम उपाधि रूप में धारण करने की वीरों में परम्परा चल पड़ी। ये विक्रमादित्य उज्जयिनी में ई० पू० प्रथम शती में हुये थे और उन्होंने ई० पू० ५७ में शकों पर विजय प्राप्त कर स्मृति में विक्रम सम्वत् की स्थापना की थी।

२. हूणों को ५वीं शती में ही मानना युक्ति युक्त नहीं महाभारत व बौद्ध ग्रन्थों में भी हूणों व शकों का उल्लेख मिलता है।

३. गुप्त वंश से भी पहले भारत में वैभव एवं विलासिता का साम्राज्य था, पुराणों महाभारत और श्री मद्भागवत में अनेक राजाओं का ऐसा वर्णन है जिनकी समृद्धि के सामने गुप्त युगीन वैभव तुच्छ प्रतीत होता है।

४. कुमारसम्भव की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर हुई थी इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। साथ ही कुमार शब्द कार्तिकेय के अर्थ में रूढ होने से कुमार गुप्त का किसी भी रूप में परिचायक नहीं हो सकता। क्योंकि "योगाद्रूढ़िर्बलीयसी" के अनुसार रूढ़ि परक अर्थ ही मुख्य होता है। कुमार सम्भव में कुमार शब्द शिवपुत्र कार्तिकेय का ही प्रकाशक है।

५. रघु की दिग्विजय यात्रा चन्द्रगुप्त की विजययात्रा का ही प्रतीक है स्वीकरणीय नहीं क्योंकि पुराणों एवं अन्य महाकाव्यों में भी इसी प्रकार की विजय यात्राओं का वर्णन है। क्या वहाँ सर्वत्र चन्द्रगुप्त की ही विजययात्रा का प्रभाव माना जायेगा।

दूसरा कारण यह भी है कि चन्द्रगुप्त पाण्डय राजाओं से पराजित हुआ था. पराजित व्यक्ति की विजययात्रा का वर्णन नितान्त अस्वाभाविक है।

६. चन्द्र और गुप्त शब्दों का बाहुल्येन प्रयोग भी एक निरर्थक तर्क है। महाकवि कालिदास एक प्रकृति प्रेमी कवि है, वह प्राकृतिक सुषमा वर्णन में सहस्रशः चन्द्र, इन्दु आदि शब्दों का प्रयोग कर सकता है। फिर माघ, हर्ष आदि ने भी तो चन्द्र का बाहुल्येन वर्णन किया है। क्या उसे भी चन्द्रगुप्त से जोड़ना उचित है। यदि नहीं तो यह एक शाब्दी क्रीड़ा के अलावा किसी तथ्य का प्रतिपादक नहीं। इसी प्रकार गुप् धातु का रक्षणार्थ प्रयोग है गुप्तवंश के लिये नहीं।

७. विक्रमोर्वशीय नाटक को भी विक्रमादित्य उपाधि से जोड़ना अस्वाभाविक है। नाटक में विक्रम शब्द पुरुरवा के पराक्रम का परिचायक मात्र है। यदि इसे नाम से जोड़ें तो भी यह विक्रमादित्य नाम का परिचायक हो सकता है उपाधि का नहीं। इतिहास में ४ विक्रमादित्य हैं उनमें यह किसका बोधक है इसका भी कोई प्रमाण नहीं।

८. संस्कृत की उन्नति गुप्तकाल में ही हुई ऐसी बात नहीं। ई० पू० में भी वेद, पुराण, दर्शन, कौटिल्यार्थशास्त्र, रामायण, महाभारत आदि मानक ग्रन्थों की रचना स्पष्ट रूप से संस्कृत के समुन्नतिकाल की परिचायिका है।

९. चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पूर्व प्रचलित मालव सम्वत् को विक्रम सम्वत् में बदला था यह भी तर्क गले से उतरता नहीं क्योंकि चन्द्रगुप्त के पितामह चन्द्रगुप्त प्रथम ने ३२० ई० में गुप्त सम्वत् चलाया था जो उसके अपने वंश का परिचायक था अतः यह उचित प्रतीत नहीं होता कि उसका पौत्र अपने वंश परम्परागत सम्वत् का परित्याग कर कोई अन्य सम्वत् चलाये। चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद भी गुप्त राजाओं ने गुप्त सम्वत् को ही मान्यता दी।

१०. कालिदास के शाकुन्तल पर वात्स्यायन का प्रभाव था या वात्स्यायन कालिदास से प्रभावित थे इसका कोई पुष्ट आधार नहीं है।

अतः इन तर्कों के आधार पर महाकवि कालिदास को गुप्तकाल या ५वीं शती में स्वीकार करना उचित नहीं।

तृतीय मत—ई० पू० द्वितीय शती

डा० कुन्हन राजा ने मालविकाग्निमित्रम् के भरतवाक्य में वर्णित

कल्याणकामना में अग्निमित्र का सम्बन्ध ई० पू० द्वितीय शती के शुङ्ग वंशीय राजा अग्नि मित्र से मानकर कालिदास को इन्हीं का राजकवि माना है।

समीक्षा—कालिदास ने अग्निमित्र का उल्लेख किया है किन्तु वे उसके समसामायिक थे इसका कोई प्रमाण नहीं, यह सम्भव है कि कालिदास के काल तक शुंगवंश की स्थिति अच्छी रही हो जिससे कि कवि ने उसकी प्रशंसा की हो। इससे यह स्पष्ट है कि कालिदास इस शती के समीपही उत्पन्न हुए।

चतुर्थ मत—ई० पू० प्रथम शती

महाकवि कालिदास का काल ई० पू० प्रथमशती मानने वाले विद्वानों ने अनेक ठोस प्रमाण दिये हैं जैसे—

१. महाकवि कालिदास शकारि विक्रमादित्य के ९ रत्नों में से एक थे यह जनश्रुति है। गुणाढ्य की वृहत्कथा, कथासरित् सागर और हाल (प्रथम शती ई०) की गाथा सप्तशती के विवरणों से यह निश्चित हो चुका है कि ई० पू० प्रथम शती में उज्जयिनी में एक प्रसिद्ध सम्राट विक्रमादित्य हुआ था जिसने शकों को परास्त कर शकारि का विरुद धारण किया था।

२. कालिदास और अश्वघोष (प्रथम शती० ई०) की रचनाओं में अनेकत्र समानता हैं जिससे सिद्ध है कि अश्वघोष पर कालिदास का प्रभाव है।

३. भीटा (प्रयाग) की खुदाई से प्राप्त प्रथम शती के एक मृण्मय पदक पर अभिज्ञान शाकुन्तल का वह दृश्य अंकित है जहाँ जब राजा रथ पर बैठा हुआ मृग पर तीर चलाने का प्रयास कर रहा है समीप ही ऋषि का उठा हुआ हाथ और एक युवती द्वारा पौधा सींचने का चित्रण है जो शकुन्तला का परिचायक है। इस प्रकार कण्वाश्रम का ही स्पष्ट रूप से वह चित्र है अतः कालिदास को इससे पूर्ववर्ती होना ही चाहिये।

४. कालिदास की रचनाओं में यत्र तत्र अपाणिनीय शब्दों एवं वैदिक छन्दों का प्रयोग हुआ है जो इस बात का द्योतक है कि वे ई० पू० में ही हुए होंगे।

५. द्वितीय शती के गिरनार और नासिक शिलालेखों की अलंकृत काव्य शैली की अपेक्षा कालिदास की शैली सरल एवं स्वाभाविक है जो यह सिद्ध करती है कि कालिदास इससे पूर्ववर्ती थे क्योंकि संस्कृत में अलंकृत काव्य शैली का प्रचलन ई० प्रथम शती के बाद ही आरम्भ हुआ।

६. मालविकाग्निमित्र की अनेक चर्चाओं में शुङ्गकालीन परिस्थितियों

का साम्य प्रतीत होता है जिससे कालिदास को शुङ्गकालीन परिस्थितियों का सम्यक् ज्ञान था यह विदित होता है।

७. विक्रमोर्वशीय नाटक में विक्रमादित्य एवं उनके पिता महेन्द्रादित्य का भी उल्लेख है। विक्रमादित्य ई० पू० प्रथम शती के थे अतः कवि उन्हीं का आश्रित था यह स्वीकार्य है।

८. रघुवंश में पाण्ड्य नरेश की राजधानी की सम्पन्नता का उल्लेख है। यह शासक ई० की प्रथम शती में पराजित हुआ था अतः स्पष्ट है कि पराजित होने से पूर्व उसकी राजधानी अति समृद्ध रही होगी और यह काल ई० पूर्व प्रथम शती होगा।

९. कालिदास ने परशुराम को अवतार की मान्यता नहीं दी। अवतार के रूप में उनकी कल्पना ईशवीय सन से प्रारम्भ हुई।

१०. कालिदास के काव्यों में वैदिक कर्मकाण्ड का प्रबल समर्थन बौद्ध धर्म के प्रति तीव्र विरोध का सूचक है। इस प्रकार का तीव्र विरोध ई० पू० में था।

११. विधवा स्त्री को पति की सम्पत्ति का अधिकारी मानना ई० पू० की विधान संहिता पर आधारित है। इसी प्रकार चोरी आदि की दण्ड व्यवस्था भी जो कालिदास ने वर्णित की है तत्कालीन ही है।

इन सभी तर्कों व प्रमाणों के आधार पर महाकवि कालिदास का जन्मकाल ई० पू० प्रथम शती ही प्रायः विद्वानों ने स्वीकार किया है—

कालिदास का जन्म स्थान—जन्मकाल के समान ही कालिदास के जन्मस्थान के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है। उनकी कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्हें उज्जयिनी से अधिक प्रेम है। शिप्रा, महाकालेश्वर, वहाँ के बाजार और स्त्रियों के वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और सुन्दर हैं। इससे यह स्पष्ट है कि कालिदास का अधिकांश जीवन उज्जयिनी में बीता था।

कुछ लोग उनका जन्मस्थान कश्मीर मानते हैं तो कुछ बंगाल या विदर्भ। वस्तुतः कालिदास ब्राह्मण और शैवमतानुयायी थे, उन्होंने अपने ग्रन्थों में प्रायः शिव की ही स्तुति की है इससे भी महाकालेश्वर शिव की नगरी ही उनका मूल स्थान प्रतीत होती है।

कालिदास का जीवन चरित्र

प्रामाणिक विवरण प्राप्त न होने पर भी कालिदास के विषय में विभिन्न किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं जिनसे कालिदास के जीवन चरित्र का कुछ परिचय मिलता है। संक्षेप में किम्बदन्तियाँ इस प्रकार हैं।

(क) महामूर्ख कालिदास—

एक किम्बदन्ती के अनुसार अपने बाल्य काल में महाकवि कालिदास महामूर्ख थे। वे पेड़ की जिस डाल पर बैठे थे, उसी को मूल से काट रहे थे। सौभाग्य से उसी समय कुछ पण्डित लोग एक मूर्ख की खोज कर रहे थे क्योंकि वे तत्कालीन परमविदुषी विद्योत्तमा से शास्त्रार्थ में पराजित हो चुके थे। विद्योत्तमा की प्रतिज्ञा थी कि मुझे शास्त्रार्थ में जो पराजित करेगा उसी से विवाह करूँगी। अपमानित उन पण्डितों ने जब कालिदास की इस मूर्खता को देखा तो प्रसन्न हुए और कालिदास को विवाह का लालच देकर अपने साथ लाए तथा उनसे राजसभा में मौन रहने को कहा। बाद में उन पण्डितों ने कालिदास को पाण्डित्यवेश धारण करा कर परम विद्वान की संज्ञा देकर राजसभा में विद्योत्तमा के साथ शास्त्रार्थ का आयोजन किया। विद्योत्तमा ने एक ब्रह्म की भावना से एक उंगली उठाई कालिदास ने यह समझ कर कि यह मेरी एक आँख फोड़ने को कहती है, दो उंगलियाँ उठा दीं। पण्डितों ने इसकी व्याख्या में ब्रह्म और माया का कथन किया। विद्योत्तमा ने पञ्चमहाभूतों के अभिप्राय से ५ अंगुलियाँ उठाईं; कालिदास ने इसे थप्पड़ का संकेत समझ कर झटकों का संकेत किया। पण्डितों ने इस संकेत की व्याख्या की कि "पाँच महाभूतों से एक शरीर बनता है"। इस प्रकार मौन शास्त्रार्थ में विद्योत्तमा को परास्त कर पण्डितों ने उसे पूरा धोखा देकर अपनी पराजय का बदला लिया और विद्योत्तमा को मूर्ख कालिदास से विवाह करना पड़ा।

प्रथम रात्रि में एक ऊंट की आवाज सुन कर कालिदास उट्र उट्र कहकर चिल्ला पड़े। तब विद्योत्तमा को उनकी मूर्खता का पता चला। क्रोधावेश में उसने कालिदास को घर से निकाल दिया। कहते हैं—कालिदास को इससे इतना अपमान अनुभव हुआ कि वे माँ काली की शरण में गए और साधना-लीन हो गये। उन्हीं ने उन्हें ज्ञान शक्ति प्रदान की। वे लौट कर घर आए तो बन्द द्वार को खोलने के लिये "अनावृतकपाटं द्वारं देहि" कहा। पत्नी

विद्योत्तमा ने उत्तर में—"अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः" कहकर द्वार खोला। कहते हैं कालिदास ने पत्नी के मुख से उच्चरित इस वाक्य के तीन शब्दों 'अस्ति', 'कश्चित्, और 'वाग्विशेषः' से तीन काव्यों क्रमशः कुमार सम्भव (अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा० १/१). मेघदूत—(कश्चित् कान्ता विरह गुरुणा० १/१) एवं रघुवंश—(वागर्थाविव सम्पृक्तौ० १/१) की रचना की। तभी से इनका नाम कालिदास हुआ।

(ख) वेश्या द्वारा मृत्यु—

एक किम्वदन्ती के अनुसार कालिदास जीवन के अन्तिम काल में सिंहल-द्वीप के राजा कुमारदास की सभा में गये जहाँ उनका एक वेश्या से सम्पर्क हुआ, बाद में उसी वेश्या ने धन के लोभ में इनका बध करवा दिया।

(ग) धारा के राजा भोज से सम्बन्ध—

एक कवि के अनुसार कालिदास धारानरेश भोज (१००५ से १०५४ ई०) के दरबारी कवियों में सर्वाग्रणी थे।

निष्कर्ष—महाकवि के जीवन चरित के सम्बन्ध में यद्यपि इन किम्वदन्तियों का कोई प्रभाव नहीं है। फिर भी यह यथार्थ है कि कालिदास किसी विक्रमादित्य के दरबारी कवियों में थे एवं उन्होंने पूर्ण भोग, सुख सुविधाओं का भरपूर अनुभव किया था। वर्णाश्रम धर्म में उनकी प्रगाढ़ आस्था थी तथा वे अपने समय के अतिप्रतिभावान् सहृदय कवि थे। शैव ब्राह्मण एवं वैदिक आचार व्यवहार, तपोवन, गुरुकुल और भारतीय संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ निष्ठावान थे। भावुक हृदय होकर भी विनोदी प्रकृति के थे और प्राकृतिक वातावरण से अधिक प्रेम रखते थे।

कवि ने अपने जीवनकाल में देश विदेश का पर्याप्त भ्रमण किया था जिससे उन्हें प्रत्येक स्थान की रीतिरिवाजों, परम्पराओं, आचार व्यवहार और जीवनपद्धति का सम्यग्ज्ञान था। देश की सीमाओं से भी कालिदास का अच्छा परिचय है।

महाकवि के ग्रन्थों के अध्ययन से यह सुस्पष्ट है कि उन्होंने नियमित रूप से विद्याध्ययन कर सर्वाङ्गीण ज्ञान प्राप्त किया था। धर्म, दर्शन, शास्त्र, पुराण, ज्योतिष, काव्यशास्त्र, इतिहास, राजनीति, समाजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, कला, संस्कृति, नाट्यशास्त्र एवं धनुर्वेद आदि सभी में कवि की गति उनकी नियमित शिक्षा की परिचायक है।

गृहस्थ धर्म के प्रति प्रेम होने के कारण यह कहा जा सकता है कि वे एक सद्‌गृहस्थ रहे होंगे भले ही उनके इस जीवन का कोई परिचय प्राप्त न हो। गार्हस्थ्य जीवन की अनेक गूढ़ बातों, पुत्र स्नेह पति-पत्नी के सम्बन्ध, आदर्श पत्नी के गुण, प्रेम की परिभाषा आदि का सम्यक् सूक्ष्म व स्वाभाविक वर्णन उनके रघुवंश, कुमार सम्भव तथा अभिज्ञान शाकुन्तल में अनेकशः देखने को मिलते हैं। आदर्श पत्नी के विषय में वे लिखते हैं—"गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ" गृहस्थाश्रम कालिदास की दृष्टि में सर्वोपकारक्षम होने के कारण मुनिआश्रम से किञ्चित् भी न्यून नहीं है।

इस प्रकार कवि की रचनाओं के अध्ययन से उनके गृहस्थ होने के जहाँ संकेत मिलते हैं वहीं वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्था, तपोवन और गुरुकुलों से प्रेम, समस्त सम्प्रदायों और देवी देवताओं के प्रति श्रद्धा, पशुपक्षियों से प्रेम एवं समाज के सर्वांगीण हित की कामना भी व्यक्त होती है।

कालिदास की काव्य कला

काव्य का उद्देश्य जहाँ यश, अर्थ और व्यवहार ज्ञान प्राप्ति है वहीं सर्वोपरि उद्देश्य है कान्तासम्मित उपदेश के माध्यम से सद्यः रसानुभूति कराना। जैसा कि साहित्य शास्त्र मर्मज्ञ आचार्य मम्मट ने लिखा है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेश युजे॥

महाकवि कालिदास के काव्यों में रसानुभूति-पदे-पदे होती है। रस सदैव व्यङ्ग्य होता है अतः कालिदास मूलतः ध्वनि प्रधान काव्य रचयिता हैं। संस्कृत साहित्य में यद्यपि समय-समय पर अनेक सिद्धान्त प्रचलित हुए किन्तु उनमें ध्वनि सम्प्रदाय ही सर्वोपरि है। मुख्य प्रचलित सम्प्रदाय हैं—एवं उनके प्रतिष्ठापक आचार्य निम्नवत् हैं—

१. ध्वनि सम्प्रदाय—आनन्दवर्धनाचार्य
२. रस सम्प्रदाय—आचार्य भरत मुनि
३. रीति सम्प्रदाय—आचार्य वामन
४. अलंकार सम्प्रदाय—भामह दण्डी आदि
५. वक्रोक्ति सम्प्रदाय—आचार्य कुन्तक
६. औचित्य सम्प्रदाय—आचार्य क्षेमेन्द्र

इन ६ सम्प्रदायों में प्रत्येक में काव्य की आत्मा क्रमशः ध्वनि, रस, रीति, अलंकार आदि को बतलाया गया है। वस्तुतः ध्वनि और रस में बहुत सूक्ष्म अन्तर है इसलिये इन दोनों में अन्तर प्रायः नगण्य सा है। शेष काव्य शरीर के बाह्य अंगाश्रित होने के कारण आत्मा के स्वरूपाधायक स्वीकार नहीं किये जा सकते।

कालिदास ने रीति अलंकार वक्रोक्ति आदि का तो यथावसर प्रयोग किया ही है सर्वाधिक प्रयत्न उनका ध्वनि और रस पर रहा। इसलिये यत्र तत्र अलंकारादि के न होने पर ध्वनि की सत्ता के कारण काव्य की सुन्दरता, उत्कृष्टता में कमी नहीं आई। इस दृष्टि से कालिदास के काव्य के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जैसे—

कुमार सम्भव में—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः
पयोधरोत्सेध निपात चूर्णिताः।
वलीसु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे
क्रमेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः ।।

वर्षा की प्रथम बूंदें पार्वती की पलकों पर क्षण भर रुकीं फिर उन्होंने अधरोष्ठ को ताडित किया, उरोजों पर गिरकर चकनाचूर हो गईं और बाद में वे त्रिवली पर फिसलती हुई नाभि में प्रविष्ट हो गईं। यहाँ वर्षा की प्रथम बूंदों का पार्वती के शरीर पर गिरकर उनकी गति का स्वाभाविक सरल वर्णन तो है ही, साथ ही अनेक गूढ़ भाव भी ध्वनित होते हैं जैसे—

१. स्थिताः क्षणंयक्ष्मसु से—पार्वती के नेत्र लोमों का घना होना एवं आंखों का अर्धनिमीलित होना ध्वनित है।

२. ताडिताधराः से—अधरोष्ठ का अतिशय कोमलत्व एवं मुख का बन्द होना ध्वनित है।

३. पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः से—स्तनों की पुष्टता, कठोरता और शरीर की निश्चल स्थिति ध्वनित है।

४. वलीसु स्खलिताः से—उदर रेखाओं का चिक्कणत्व एवं घनत्व ध्वनित है।

५. नाभिं प्रपेदिरे से—नाभि का पर्याप्त गहरा होना व्यङ्ग्य है।

६. क्रमेण से—पार्वती का निश्चल तपस्यारत रहना अतएव उन्हें न पोंछना व्यङ्ग्य है।

इन सभी ध्वनियों में पार्वती के विविध अंगों का सौन्दर्य तथा उनकी उत्कृष्ट तपसाधना का सुन्दरतया ज्ञान होता है। यद्यपि इस श्लोक में कोई भी अलंकार स्पष्ट नहीं है।

इसी प्रकार—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमल पत्राणि गणयामास पार्वती ॥

विवाहवार्ता के समय पिता के पास बैठी हुई पार्वती की लज्जालु मनोभावना एवं प्रेमभावना को छिपाने के प्रयत्न का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र ध्वनित होता है।

साहित्य शास्त्रियों ने इसीलिये ध्वनि प्रधान काव्य को उत्तम काव्य की संज्ञा दी—"इदमुत्तम मतिशायिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः"।

कालिदास अत्यन्त भावुक, सरल और सहृदय कवि हैं। भाषा पर असाधारण अधिकार, कथा में नाटकीयता, भावों की अगाधता और रस की अजस्र धारा प्रवाहित करना कालिदास की काव्य शैली की कुछ विशेषताएँ हैं। यहाँ सक्षेपतः उनकी इन विशेषताओं का वर्णन किया जा रहा है।

कालिदास की भाषा—कालिदास की भाषा सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण, ललित और सूक्तिमय है। समास स्वल्प एवं छोटे-छोटे हैं साथ ही उनमें क्लिष्टता का सर्वथा अभाव है। इस प्रकार की भाषा वैदर्भी शैली के अन्तर्गत परिगणित की जाती है। अतः कालिदास वैदर्भी शैली के कवि हैं और उनकी भाषा में सर्वत्र मधुर पदों की झंकार, संगीतात्मकता, पात्रानुकूल शब्द संचयन सहृदय हृदय को बालात् आकृष्ट कर लेता है। तभी तो उनके विषय में यह सूक्ति प्रचलित हुई।

'वैदर्भी रीति सन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते।'

रघुवंश महाकाव्य के १४ सर्ग में सीता का परित्याग किये जाने पर बाल्मीकि आश्रम में सीता के करुण क्रन्दन से पशु पक्षियों की सम्वेदना का भाव वर्णित करते हुए कवि की भाषा अवलोकनीय है।

नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृङ्गाः दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः ।
तस्याः प्रपन्ने सम दुःख भाव मत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि ।।

जानकी के शोक से सन्तप्त मयूरों ने नृत्य का, भ्रमरों ने फूलों का और मृगियों ने कुशचर्वण का परित्याग कर जानकी के प्रति सम्वेदना व्यक्त की। यह भाव कितने सरल शब्दों में व्यक्त है।

कालिदास पद्य में जितनी ललित पदावली का प्रयोग करते हैं उतनी ही गद्य में भी—कण्वाश्रम में प्रवेश का इच्छुक राजा दुष्यन्त सारथी से कहता है—"सूत विनीत वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम।" इस प्रकार के सरल सूक्तिमय वाक्य अभिज्ञान शाकुन्तल में कवि ने बहुशः प्रयुक्त किये हैं। कण्व शकुन्तला से कहते हैं—"दिष्टया धूमाकुलित दृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता", "सुशिष्य परिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता" आदि।

कालिदास प्रतिभा के धनी थे। काव्य और नाट्य में उनकी समान गति थी, किसी भी विषय में घटकर या बढ़कर बताना सम्भव नहीं। समस्त विश्व में उनका अभिज्ञान शाकुन्तल जितना अधिक समादृत हुआ है उतना पाश्चात्य कवि शेक्सपियर के नाटकों के अतिरिक्त सम्भवतः कोई नहीं। कवि गेटे ने उनके शाकुन्तल नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

उनके वर्णन एवं पात्रोचित भाषा, अलंकारों के अनावश्यक बोझ से कहीं भी बोझिल नहीं हो सकी है। कवि की सूक्ष्मेक्षिका बुद्धि निरन्तर इसके लिये प्रयत्नशील रही है कि कौन सा शब्द किस स्थान के लिये उपयोगी है और अधिक उचित। उदाहरणार्थ—

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां,
समागम प्रार्थनया कपालिनः ।
कला च सा कान्तिमती कलावत,
स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्र कौमुदी ।।

(कुमार संभव)

यहाँ भगवान शंकर के लिये कपाली शब्द का प्रयोग कवि ने किया। शिव के अन्य भी पिनाकी आदि शब्द वाचक हैं किन्तु उनके प्रयोग से प्रतिपाद्य चन्द्रकला और पार्वती की शोचनीयता प्रमाणित नहीं हो सकती थी। क्योंकि वरण करने की इच्छा वाली कोई भी कन्या यह नहीं चाहेगी कि उसका पति,

प्रेमी कपाली हो, जिसके पास भोजन के उचित पात्र भी न हों। कालिदास किसी बात का लम्बा चौड़ा वर्णन न करके सूक्ष्म और मार्मिक रूप में उसकी व्यंजना कर देते हैं अतएव उनकी कृतियों में ध्वन्यात्मकता मुख्य है। वैदर्भी शैली के सफल कलाकार कालिदास की वर्ण्यविषयानुकूल शब्दावली, रसाभिव्यक्ति सक्षमा, भावानुगमप्रवणा, सहृदय हृदयानुरञ्जिनका भाषा का दर्शन पग पग पर उनकी प्रत्येक कृति में दृष्टव्य है। बाणभट्ट ने ठीक ही कहा है—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

भाव

कालिदास मूलतः ललित सुकुमार भावों के कवि हैं फिर भी उनकी कृतियों में परस्पर विरोधी भावों का मधुरोपन्यास है। एक ओर यदि वे शालीन सम्भोग का चित्र खींचते हैं तो अन्यत्र वियोग की भीषण ज्वाला। एकत्र भावनाओं का ज्वार है तो अपरत्र जीवन दर्शन की व्याख्या। उनके कल्पना महलों पर मनोभावों के कृष्णमेघ स्निग्ध रसवृष्टि कर प्रत्येक भावुक हृदय को भिगो देने की सामर्थ्य न रखें ऐसा कैसे हो सकता है।

पार्वती के शरीर में यौवन ने कितना कमाल दिखाया है इस विषय में कवि की तूलिका से निःसृत ये पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दनम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्र शोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥

(कुमार संभव १/३२)

तूलिका से रंग भरने पर जैसे चित्र खिल उठता है, सूर्य किरणों के संस्पर्श से जैसे कमल खिल उठता है उसी प्रकार यौवन के संस्पर्श से पार्वती का अंग प्रत्यंग खिल उठा।

इसी प्रकार जीवन मरण का दर्शन भी अत्यन्त सरलता के साथ भावातिशय पूर्ण शब्दों में कवि ने प्रकट किया है।

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते, श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ॥

(रघु ८/८७)

कालिदास अपने हृदय को पात्र के साथ तादात्म्य रूप में उपस्थापित कर देते हैं। शिव को ही पतिरूप में प्राप्त करने की भावना से तपस्यारत पार्वती के समक्ष ब्रह्मचारी वेशधारी शिव कृत कठोर वचनों का उत्तर पार्वती कितनी दृढ़ता और कठोरता के साथ देती है।

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृ सद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥

पिनाकी भगवान शंकर की यथार्थता को जानने वाले है ही नहीं। शिव तो अकिंचन होकर भी सम्पत्तियों के जन्मदाता हैं। श्मशानवासी होकर भी तीनों लोकों के स्वामी हैं। अशिववेष होने पर भी कल्याण रूप ही हैं। इस प्रकार की दृढ़ आस्था का वर्णन उदात्त नारी के गुणों की प्रतिष्ठापना है।

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि--"जैसा कवि का स्वभाव वैसा उसका काव्य, जैसा चित्रकार वैसा ही उसका चित्र।" कालिदास के ग्रन्थों के अध्ययन से उनके विनोदी, विलासी, स्वभाव के साथ-साथ देवी देवताओं के प्रति आस्था, सर्व धर्म सहिष्णुता, उदात्त प्रेम, भारतीय संस्कृति के प्रति आदर भावना आदि गुणों का भी ज्ञान होता है।

कालिदास की दृष्टि में युवावस्था के मनोहर रूप के दो पक्ष हैं—प्रथम यह कि रूप पापवृत्ति की ओर उन्मुख नहीं होता—"यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः" और द्वितीय यह कि स्त्री के रूप सौन्दर्य में पति को लुभाने, आकृष्ट करने, जीतने की सामर्थ्य होनी चाहिए। कामदेव के जल जाने पर पार्वती अपने रूप की निष्फलता का कथन कर उसकी निन्दा करती है।

"निनिन्द रूप हृदयेन पार्वती
प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।"

वस्तुतः कालिदास नयनाभिराम रूप की मादक छवि से आत्म विभोर तो हो जाते हैं किन्तु वे रूप के अनुरूप हार्दिक भावनाओं के नित्य सम्बन्ध के नितरां पक्षपाती हैं। शाकुन्तल में कवि लिखता है—"न तादृशाः आकृति विशेषाः गुणविरोधिनो भवन्ति।" स्पष्ट है कि कालिदास रूप में उचित गुणों की सत्ता अनिवार्य मानते हैं।

इस प्रकार कालिदास प्रेम जगत के रसिक पथिक हैं किन्तु उदात्त मार्ग का

परित्याग नहीं करते। इसी प्रकार भावनाओं में अतिशय लिप्त हो जाते हैं किन्तु औचित्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करते। अतः हम कालिदास के रसिक भावों को औदात्य के रंगमंच पर स्थापित कर ही उनका उचित रूप देख सकते हैं।

रस—

रसवर्षी कवि कालिदास की धारणा है कि कोई भी व्यक्ति जब रसानुभूति करता है तो उसकी बुद्धि रागात्मक हो जाती है क्योंकि जब भी सुन्दर वस्तुओं को देखकर या मधुर शब्दों को सुनकर कोई अनिश्चित उत्कण्ठा, उदासी से भर जाता है तो उसे निश्चय ही पूर्वजन्म के अज्ञातभाव स्मृत हो आते हैं जो उनकी रागात्मिका प्रकृति में पूर्वजन्म में आबद्ध हो गये थे—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि॥

(अभि० शाकु० ५/२)

यह सत्य ही तो है रस का आस्वाद बुद्धि अथवा तर्क का विषय न होकर भाव अथवा राग का ही विषय है और इस स्थिति में सहृदय सचेता आत्म विस्मृत होकर प्रकृति पुरुष के भेद को भूल जाता है। विचारों का वन्दीगृह ढह जाता है और आत्मा शाश्वत् संवेदनशील भावाकाश में उन्मुक्त विहरण करने लगता है।

कालिदास शृंगार के शीर्षस्थ कवि हैं किन्तु अन्य रसों के भी मार्मिक चित्रकार हैं। हास्य, करुण, वीर, विस्मय आदि की सम्यगनुभूति कराने में भी उनकी लेखनी ने असाधारण सफलता प्राप्त की है।

कालिदास के नाटकों में विदूषक जहाँ हास्यरस का प्रमुख अभिनेता है वहीं नायिका की सखियाँ भी कम नहीं हैं उनकी चुटीली उक्तियों में चातुर्य एवं उपालम्भ है जो सामाजिक के हृदय में गुदगुदी उत्पन्न कर देती हैं। कुमार सम्भव में ब्रह्मचारी वेशधारी शिव की उक्तियों में भी हास्य का पुट है।

उनके नाटकों में जहाँ शृंगार रस की मुख्य धारा प्रवाहित है वहीं वीर रस का सांकेतिक स्रोत भी साथ-साथ प्रवहमान है। अभिज्ञान शाकुन्तल में कण्व शकुन्तला को आश्वासन देते हुए कहते हैं—

"तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनम्
मम विरहजं न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ।"

यहाँ कवि ने ध्वनित किया है कि एक बालक जिसका गर्भाधान ऋषि आश्रम की शान्ति तथा पवित्रता के मध्य हुआ है, स्वर्ग के पवित्र राज्य में जिसका लालन-पालन हुआ है वही सूर्य के समान पवित्र, प्रकाशवान, शौर्यप्रिय तथा प्रखर तेजस्वी होगा।

रामास्वामी शास्त्री ने ठीक ही कहा है कि—"यद्यपि यह नाटक मुख्यतया श्रृंगार रस का चित्रण करता है तथापि इसमें वीररस की एक अन्तर्धारा एक क्षीण ध्वनि वर्तमान है, प्रेम वही श्रेयस्कर है जो अपूर्व आनन्द का दान ही नहीं देता है अपितु वीरत्व के भाव का जनन भी करता है।"

श्रृंगार रस में प्रेम का प्राधान्य होता है, परन्तु अविचारित, उच्छृङ्खल प्रेम समाज और व्यक्ति दोनों के लिये घातक है। गुरुजनों से समादृत, भली प्रकार सोच-विचार कर किया गया प्रेम अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है। अविचारित प्रेम के सम्बन्ध में कालिदास लिखते हैं—

"अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतम् रहः
अज्ञात हृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्।"

श्रृंगार के सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों रूपों का अत्यन्त आह्लादक, स्वाभाविक और सुन्दर चित्रण करने में सिद्धहस्त कवि मेघदूत में अपनी अन्तस् की वियोग ज्वाला को जितनी कुशलता के साथ व्यक्त कर सका है, सामान्यतः अन्य कवि ऐसा नहीं कर पाते।

यक्ष मेघ को सन्देश देता हुआ अपनी प्रेयसी का वर्णन करता है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

(उत्तरमेघ २२)

अलकापुरी की स्त्रियों में विधाता की प्रथम सृष्टि यक्षिणी—छरहरी देह, नवयौवन, कली सी दन्तपंक्ति, पक्वबिम्बफल सा अधरोष्ठ, क्षीण कटि, चकित हरिणी के से चंचल नयन, गहरी नाभि रन्ध्र, गुरुनितम्बभार से मन्द गति,

पुष्टस्तनभार से झुका हुआ वदन आदि सभी से तो वह सुसज्जित थी। एक दृष्टि पड़ते ही जो किसी का मन चुरा सकती थी आज उसकी क्या दशा हो रही है अपने प्रिय के वियोग में—

"जातं मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्" शीतऋतु में पाले (तुषारपात) से मसली हुई कमलिनी के समान आज शोभाहीन हो गई है। उसने समस्त आभूषण त्याग दिये होंगे, शय्या पर करवटें बदल-बदल कर रात्रि बिता रही होगी।

वस्तुतः प्रेम की महिमा स्थापित करना ही मेघदूत का प्रमुख उद्देश्य है, किन्तु उसमें भारतीय नारी की ही दशा है, उन्मुक्त विहरण कदापि नहीं। वह पति का नाम एवं गुणगान कर, उसका चित्र बनाकर, उसे स्वप्न में देख कर श्रृङ्गार आदि से सर्वथा परे होकर वियोग की दीर्घावधि काट देगी। इस प्रकार श्रृङ्गार के उभयरूप का मधुर परिपाक कवि ने किया है।

करुण, अद्‌भुत, शान्त, रौद्र एवं वीभत्स रसों का चित्रण भी इनकी कृतियों में यथा-स्थान उपलब्ध होता है।

इन्दुमती की मृत्यु पर अज का विलाप, कामदेव के भस्म हो जाने पर रति का रुदन और राम से परित्यक्त होने पर सीता की करुणव्यथा जहाँ करुण रस के सुन्दरतम निदर्शन हैं वहीं दिलीप के बाहु प्रतिष्टम्भ, शकुन्तला को अचानक अप्सरातीर्थ से आकाश में उठा ले जाने आदि स्थलों में अद्‌भुत रस का, तपोवन के वर्णनों में शान्त रस का एवं युद्धों के वर्णन में रौद्र आदि रसों का सम्यक् परिपाक हुआ है।

कालिदास की कृतियों में सर्वत्र प्रसाद गुण का ही दर्शन होता है चाहे वे शृंगार का वर्णन कर रहे हों याः वीर अथवा रौद्र का। सरस कलाकार की यही सर्वोपरि विशेषता है कि एक अवलोकन से ही पाठक या दर्शक को उसकी मूलभावना का रसावबोध करा दे। रसवर्षी कवियों में उनकी शीर्षस्थिति का परिज्ञान उनके विषय में उक्त इस सूक्ति से हो जाता है—

अस्पृष्टदोषा नलिनीव हृष्टा, हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः।
प्रियाङ्कपालीव प्रकामहृद्या, न कालिदासादपरस्य वाणी॥

अलंकार योजना

"लोकोत्तर चमत्कार कारिवैचित्र्य सिद्धये।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गी भणितिरुच्यते॥

वक्रोक्तिजीवितकार के रस कथन के अनुसार प्रत्येक कवि को अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये भाषा का आश्रय तो लेना ही पड़ता है उसमें सौन्दर्य का आधान भी आवश्यक है। क्योंकि स्वयं कुन्तक ने वक्रोक्ति की व्याख्या करते हुये लिखा है—'वैदग्ध्यं विदग्धभाव: कविकर्मकौशलं तस्य विच्छित्तिः तया भणितिः विचित्रैव अभिधा वक्रोक्तिः"। इस प्रकार उक्तिवैचित्र्य ही वक्रोक्ति है और उक्तिवैचित्र्य ही प्रकारान्तर से अलंकार भी है। कतिपय साहित्यिकों ने तो काव्य में अलंकारों की सत्ता अनिवार्यतया स्वीकार की है—

"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।
किं तया कवितया राजन् किं वा वनितया तया।
पद विन्यासमात्रेण मनो नापहृतं यया।।"

किन्तु अधिकांश का अभिमत यह है कि काव्य में अलंकारों को मुख्यता प्रदान नहीं की जा सकती क्योंकि काव्य का आत्मस्थानीय तत्व तो गुणों का आधार रस ही है—

अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत्।
वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम।। (अग्नि. पु. १/३४६)

वस्तुत: कालिदास ध्वनि प्रधान कवि तो हैं ही साथ ही ललितभाषा को अलंकृत कर संवारने में भी सिद्ध हस्त हैं। उनके काव्य में कहीं भी कृत्रिम अलंकारों का बोझ भाषा पर नहीं आने पाया। रूपवती अलंकृत नारी की भाँति उनकी भाषा मनमोहने में पूर्ण समर्थ हैं।

उनकी कविता में अनायास आने वाले अर्थालंकारों का प्राधान्य है श्रम-साध्य, कठोर और विद्वत्तापूर्ण अलंकारों यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि का यथासम्भव परित्याग ही किया गया है। कालिदास ने प्रायः उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास दृष्टान्त, व्यतिरेक और अपह्नुति का अधिक प्रयोग किया है। पद्य और गद्य में समान रूप से अलंकारों का विन्यास कवि की असाधारण प्रतिभा का प्रकाश है।

अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रियम्वदा शकुन्तला के वरचयन की प्रशंसा करती हुई कहती है—

"सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति"
"क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते"

यहाँ कितनी चतुरता से दृष्टान्त अलंकार के माध्यम से कवि ने शकुन्तला और राजा की परस्पर अनुकूलता का वर्णन किया है ।

अर्थालंकारों में अर्थान्तरन्यास और उपमा कवि को सर्वाधिक प्रिय है। अतएव इसके प्रचुर उदाहरण कवि की कृतियों में उपलब्ध होते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

"इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी ।
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् । शाकु. १/१९

सा शुश्रुवान्मातरि मार्गवेण पितुर्नियोगात्प्रहृतं द्विषद्वत ।
प्रत्यग्रहीदग्रज शासनं तदाज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया ॥
रघु. १४/४६

अनन्तरत्न प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥
(कुमार. १/३)

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकरस्तं ययाचे ।
कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ (पूर्वमेघ-५)

इत्यादि स्थलों में सर्वत्र अर्यान्तरन्यास के माध्यम से कवि ने क्रमशः शकुन्तला के लावण्यातिशय, राम के आदेश की अपरिहार्यता, हिमालय की शोभा और यक्ष की चरम कामपीड़ा का वर्णन करते हुए भाषा और भाव को अलंकृत किया है। कालिदास के अर्थान्तरन्यास के वाक्य प्रायः व्यावहारिक भाषा में आदर्शवाक्य के रूप में उदाहरणीय हैं जैसे—"मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्," हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः", "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" इत्यादि ।

कालिदास के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है कि वे प्रयत्नपूर्वक अलंकारों की योजना के पक्षपाती नहीं है। स्वाभाविकतया जो अलंकार आ जाते हैं उन्हीं का प्रयोग कवि ने किया है। वस्तुतः जहाँ समस्त अलंकार यत्र तत्र कवि की रचनाओं में यथावसर समायोजित है वहीं अधिकांश अंश उपमा की छटा से चमत्कृत है ।

उपमा कालिदासस्य

कालिदास की उपमा के विषय में भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। यह

वाक्य भी समालोचकों ने उनके उपमा प्रयोगों की परीक्षा करके ही लिखा है। वस्तुस्थिति तो यह है कि उपमा अलंकार अत्यन्त सरल, सुन्दर और सर्वजन उपस्थापनीय है। शायद ही ऐसा कोई कवि हो जिसने उपमा ा प्रयोग न किया हो फिर कालिदास के विषय में "उपमा कालिदासस्य" लिखकर प्रशंसा करने का क्या प्रयोजन है ? जब हम इस विषय पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि अन्य कवियों की अपेक्षा कालिदास की उपमा में सहज रमणीयता है, स्थान, पात्र, काल और भावनाओं तथा प्रयोजन की अ ूलता है। उनमें श्लेषादि के माध्यम से कृत्रिमता का कोई प्रयत्न नहीं है जैसाकि श्री हर्ष, बाण, भारवि आदि की उपमाओं में।

विषय को सरलतया उपस्थापित करने के उद्देश्य से कालिदास की उपमाओं को आगम और स्वरूप भेद से क्रमशः निम्नांकित ्प में विभक्त किया जा सकता है—

१. सृष्टि पदार्थीय उपमाएँ।

२. शास्त्रीय उपमाएं।

३. आध्यात्मिक उपमाएँ।

४. व्यावहारिक उपमाएँ।

स्वरूप भेद से भी कालिदास की उपमाओं को ४ वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) रम्यताविशिष्ट (ख) यथार्थताप्रधान (ग) औचित्यपूर्ण और (घ) पूर्णतायुत।

सृष्टि पदार्थीय उपमाएँ—कालिदास ने पृथ्वी पर उत्पन्न विविध लता, वृक्ष, फल, फूल, विभिन्न जातियों के प्राणी, आकाशीय ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र आदि सृष्टि के समस्त पदार्थों से उपमानों का चयन कर उपमा अलंकार की रचना कर अपनी विशाल दृष्टि का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ—

१. कण्व को प्राप्त बाल शकुन्तला की उपमा अर्क पर पतित नवमालिका कुसुम से "अर्कस्योपरि पतितं नवमालिका कुसुममिव"।

२. अपने पति कामदेव के भस्म हो जाने पर विलाप करने वाली रति की शुष्क तालाब में व्याकुल मछली से। तथा—

३. त्रिभुवन को सताने वाले तारकासुर की धूमकेतु से उपमा दी गई है। सृष्टि पदार्थीय उपमाओं में सर्वाधिक प्रशंसनीय रघुवंश की यह उपमा है—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।
तदन्तरे सा विरराजधेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥

यहाँ राजा दिलीप की दिन से, गाय की सन्ध्या से एवं सुदक्षिणा की रात्रि से उपमा देकर जहाँ कवि ने लिंग, वर्ण आदि के औचित्य की रक्षा की है वहीं सुदक्षिणा को रात्रि बतलाकर उसकी निःसन्तानता की ओर भी मधुर संकेत किया है। आश्रम के अनुकूल, समय के अनुकूल तथा राजा और रानी की आशाओं को पूर्ण करने में समर्थ पापविनाशिनी सन्ध्या को गाय का उपमान बनाकर कवि ने सर्वांगीण सुन्दरता, औचित्य और पूर्णता का ध्यान रखा है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण कवि की कृतियों में अवलोकनीय हैं।

शास्त्रीय उपमाएं—व्याकरण, दर्शन, राजनीति, आयुर्वेद आदि क्षेत्रों से उपमानों का चयन कर कालिदास ने शास्त्रीय ज्ञान का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ—

१. **अर्थशास्त्रीय**—हिमालयोत्पन्ना पार्वती की उत्साह आदि राजनीतिक गुणों से प्राप्तव्य सम्पत्ति से (कुमार संभव)।

२. **आयुर्वेदीय**—शक्तिशाली तारकासुर के समक्ष निष्फल देवताओं की उग्र औषधि से भी न हटने वाले सन्निपात ज्वर से।

३. 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ०' में व्याकरण शास्त्रीय उपमा है।

४. राम के आदेश से सेना उसी प्रकार पीछे चली जैसे अर्थ सिद्धि के लिये इङ्० धातु के पीछे अधि उपसर्ग लग जाता है—

रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थ सिद्धये ।
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत् ॥ (रघुवंश)

५. ब्राह्म सरोवर से निकलने वाली सरयू नदी की अव्यक्त तत्व से उद्भूत महत्तत्व से उपमा सांख्य दर्शन से गृहीत है।

इस प्रकार की शताधिक उपमाएँ कालिदास की कृतियों में अन्वेषणीय हैं।

आध्यात्मिक उपमाएं—मूर्त जगत से उपमानों का चयन तो सभी कर सकते हैं पर अमूर्त मनोव्यापार से उपमानों का चयन कालिदास जैसे कवियों का ही कौशल है।

१. ऋषि वशिष्ठ की गाय के पीछे जाने वाले दिलीप की श्रद्धायुक्त विधि से।

२. माता को अलंकृत करने वाले भरत की उपमा सम्पत्ति को शोभा देने वाले विनय से दी है। इस प्रकार कवि की कल्पना वल्लरी के विकसित स्वरूप का परिज्ञान होता है।

व्यावहारिक उपमाएँ—सत्शिष्य को दी गई विद्या के समान दुष्यन्त को समर्पित शकुन्तला शोक योग्य नहीं है—"सुशिष्य परिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता" यहाँ लोक व्यवहार का परिज्ञान होता है तो "अभ्यास से विद्या के समान तुम (दिलीप) सेवा से नन्दिनी को प्रसन्न करो आदि में कालिदास के स्वानुभव की स्पष्ट झलक है।

स्वरूप की दृष्टि से कालिदास की उपमाओं में असाधारण सौन्दर्य और आह्लादकता है।

(क) रम्यता विशिष्ट-कालिदास की उपमा का सौन्दर्य एक झलक में ही पाठक या श्रोता को प्राप्त होता है उदाहरणार्थ—मेघदूत में—'रेवां द्रक्ष्य-स्युपलविषमे' इत्यादि में कवि ने विन्ध्य पर्वत की तलहटी में रेवा नदी के प्रवाह की हाथी के वदन पर खींचे चित्र विचित्र रंग के बेलबूटों से देकर सौंदर्य को व्यक्त किया है।

यथार्थता प्रधान—कालिदास की उपमाओं में जीवन की यथार्थता का स्पष्ट दर्शन है—तपस्वियों के बीच में कोमलांगी शकुन्तला पीले पके पत्रों के मध्य किसलय (कोंपल) के समान है—"मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डु पत्राणाम्"। इसी प्रकार मेघदूत में—"आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानाम्" में स्त्रियों के मधुर प्रेममय, स्वल्प विरह से (कुम्हलाने) व्याकुल होने वाले हृदय का यथार्थ चित्रण है।

औचित्यपूर्ण—पात्रोचित उपमानो का चयन कर कवि ने औचित्यपूर्ण उपमाओं की सृष्टि की है—खब्बू विदूषक चन्द्रखण्ड को लड्डू से, मोटे विदूषक को सांड़ से उपमित कर कवि ने व्यक्तियों के स्वभाव के औचित्य की रक्षा की है।

पूर्णता—उपमा अलंकार में कालिदास ने प्रायः पूर्णोपमा का ही प्रयोग किया है, किसी एक अंश को छोड़कर उसे क्लिष्ट बनाना कवि का अभिप्रेत नहीं।

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।

इन्दुमती के स्वयम्वर में राजाओं की जिनके पास से इन्दुमती निकल जाती थी क्या स्थिति थी इसका एक प्रत्यक्ष चित्र सा खींचते हुए कवि ने उपमान, उपमेय साधारण धर्म और उपमावाचक सभी को प्रस्तुत कर जिस चमत्कार को उत्पन्न किया है उसी का परिणाम है कि कालिदास को दीपशिखा की उपाधि से समलंकृत किया गया।

यहाँ गमनशील पतिम्बरा इन्दुमती उपमेय, संचारिणी दीपशिखा उपमान, राजागण (भूमिपाल) उपमेय, नरेन्द्र मार्गाट्ट उपमान, विषर्णभाव साधारण धर्म और इव उपमावाचक है। इस प्रकार पूर्णोपमा है।

अतः हम देखते हैं कि कालिदास की उपमाओं में पात्रों की अनुरूपता, वर्णनीय विषय की सुन्दरता, औचित्य और पूर्णता का तो ध्यान रखा ही गया है सर्वत्र सरलता, सहृदयता और रमणीयता पर भी विशेष प्रयत्न है। कालिदास के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवियों में प्रायः इस सरलता, स्वाभाविकता और सुन्दरता का निर्वाह नहीं है। कहीं परिणामगत दोष है तो कहीं स्वरूपगत। उपमा के समान ही अन्य अलंकारों में भी कालिदास ने औचित्य की रक्षा की है।

प्रकृति चित्रण

महाकवि कालिदास की दृष्टि में प्रकृति और पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। वह तो चेतन जगत की भाँति ही समस्त कार्यों में पुरुष को सहयोग ही प्रदान करती है। उनके प्रत्येक ग्रन्थ में ऋतुओं का वर्णन है। ऋतु संहार और मेघदूत की सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति के आँगन में ही की गई है। फिर भला प्रकृति का प्रभाव मानव स्वभाव पर क्यों न पड़े क्योंकि कालिदास की दृष्टि में समस्त सृष्टि में एक ही चैतन्य भरा हुआ है स्त्री पुरुष के समान लतावृक्षादि भी संवेदनशील भावुक हैं।

कण्वाश्रम से विदा होती हुई शकुन्तला को आश्रम के वृक्ष वस्त्राभूषण प्रदान करते हैं—"क्षौमं केनचिन्दु पाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतम्०" तो अन्य आश्रम की लताएँ उसके वियोग की भावना से पत्ते रूपी आंसू बहा रही है—

हरिणियों ने मुख के कौर (कवल) उगल दिये हैं और मयूरी ने नृत्य करना बन्द कर दिया है—

उद्गलित दर्भकवला मृग्यः परित्यक्त नर्तना मयूराः।
अपसृत पाण्डु पत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥
(शा० ५४/१२)

उपनिषदों के पश्चात् कालिदास ने प्रथम बार वनदेवता की कल्पना की है। महाभारत, रामायण में ऐसी कल्पना नहीं है। इसका कारण ऊपर दिया जा चुका है कि कालिदास प्रकृति और पुरुष में चेतन और अचेतन में सर्वत्र चैतन्य का भाव ही स्वीकार करते हैं।

मेघदूत में यक्ष स्वप्न में अपनी प्रियतमा को देखकर आलिंगनार्थ भुजाएँ फैलाता है तो उसकी इस दशा को देखकर वृक्षों में निवास करने वाली वन देवता के आँसू वृक्ष के पत्तों पर लुढ़क पड़ते हैं।

दक्षिणारण्य के बृक्ष, लताएं अपनी शाखाओं और पत्तों के द्वारा राम को सीताहरण का मार्ग बतलाते हैं। स्वयं शकुन्तला लता के समान है—

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्॥
(अभि-शा०)

कालिदास की समस्त नायिकाओं को फूलों का शृङ्गार रुचिकर है। नगर के बाहर फूलों के बगीचे हैं। महलों से लेकर तपोवनों तक पुष्पों की सुगन्ध प्रवाहित है। कालिदास की एक नायिका यक्षिणी की अलकापुरी में वेषभूषा में सर्वत्र पुष्पों का ही साम्राज्य है।

हस्ते लीलाकमलके बालकुन्दानुविद्धं,
नीता लोध्रप्रसव रजसा पाण्डुतामाननश्रीः।
चूडापाशे नव कुरबकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीतं बधूनाम्॥

अलकापुरी की स्त्रियाँ हाथ में लीलाकमल, केशपाश में बालकुन्द, मुख पर लोध्र का चूर्ण, जूड़े में नया कुरबक, कान में शिरीष और सिर पर माँग में कदम्ब पुष्प धारण करते हैं।

वस्तुतः कालिदास का प्रकृतिचित्रण अत्यन्त सूक्ष्म व मार्मिक है।

BVBSSMV

परम्परा प्रथित वर्णनों से हटकर कालिदास ने जो चित्र खींचे उनमें सहृदयता, रसिकता और ताजगी का स्पन्दन है, कल्पना की उड़ान है और मधुरभावों की मधुर अभिव्यंजना है। प्रकृति कहीं तो उद्दीपन बनकर आती है तो कहीं आलम्बन। कहीं वह शिक्षाचार्या के रूप में है तो कहीं रक्षिका के रूप में।

दिलीप के जंगल पहुँचने पर लताएँ पुष्प बिखेर कर पौरकन्या का कार्य करती हैं तो समीपवर्ती वृक्ष पार्श्ववर्ती सेवकों का। मृगी राजा के रूप को देखकर अपने नेत्रों के विस्तार का फल प्राप्त करती हैं।

विलोकयन्त्यो वपुरापुर क्षणां प्रकाम विस्तारफलं हरिण्यः।
(रघु. २/११)

मेघदूत और ऋतु संहार के बाद रघुवंश का नवम तथा १३वाँ सर्ग प्रकृति के सुन्दरतम निदर्शन हैं मानवीय व्यापारों का किस प्रकार सुन्दर प्रतिरोपण यहाँ किया गया है यह द्रष्टव्य है।

नदियाँ अपने मुख को अपने पति समुद्र को समर्पित करने में कुशल हैं तो समुद्र भी अपना तरंग रूपी अधरोष्ठ प्रदान कर परस्पर एक दूसरे का अधरोष्ठ पान कर रहे हैं—

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदान दक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः।
(रघु० १३/९)

वस्तुतः कालिदास ने प्रकृति के अन्तः एवं बाह्य दोनों रूपों का गम्भीर अवलोकन किया था और उसके सर्वांगीण वैभव को समझ सके थे। तभी तो उनकी दृष्टि में प्रकृति का कोई सुन्दर पहलू छूटने नहीं पाया। कालिदास की इस सूक्ष्मेक्षिका दृष्टि और प्रकृति प्रेम का वर्णन पढ़कर किसी अन्य काव्य में बुद्धि का रमना असम्भव है।

श्री कालिदासस्य वचो विचार्य नैवान्य काव्ये रमते मतिर्मे।
किं पारिजातं परिहृत्य हन्त भृङ्गालिरानन्दति सिन्दुवारे।।

छन्द—किसी भी कवि के लिये यह आवश्यक है कि वह वर्णनीय विषय के अनुकूल ही छन्दों का भी प्रयोग करे। आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस विषय में स्पष्ट लिखा है—

काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्व वृत्तानां विनियोगं विभागवित्।।

इसी प्रकार "छन्दोभङ्गं न कारयेत्" आदि वाक्य तथा "हतवृत्तता" आदि काव्य दोषों से छन्दो योजना की महत्ता का स्पष्ट ज्ञान होता है।

कालिदास जैसे महाकवि ने इस विषय में भी कोई चूक नहीं की। छन्दों के प्रति विशेष सतर्कता एवं उनमें सुन्दरता के समायोजन की भावना सर्वत्र परिलक्षित है। वर्षाकाल में मार्ग गीला हो जाने से जैसे प्रवासी पथिक की गति मन्द हो जाता है उसी प्रकार मन्दाक्रान्ता की रचना यति नियम से मन्द होती है अतः वर्षा और प्रवास के प्रकरण में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग करना चाहिये यह संकेत भी क्षेमेन्द्र ने ही किया।

"प्रावृट् प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते"

कालिदास ने मन्दाक्रान्ता छन्द की मधुरता, मन्दता और सुन्दरता का ध्यान रखकर ही सम्पूर्ण मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा। इस छन्द के माध्यम से कवि का उत्कृष्ट वाग्वैभव प्रकट हुआ है।

कालिदास के अन्य ग्रन्थों में वर्णनानुकूल भिन्न-भिन्न छन्दों की योजना है जैसे—

ऋतु संहार में—उपजाति, वसन्ततिलका और मालिनी का अधिक प्रयोग है तो कुमार सम्भव में—इनके साथ अनुष्टुप् वंशस्थ, पुष्पिताग्रा, शार्दूल विक्रीड़ित रथोद्धता, हरिणी आदि की भी योजना है। रघुवंश महाकाव्य में—तोटक, वैतालीय, द्रुत विलम्बित, मत्तमयूर, नाराच आदि कतिपय अप्रसिद्ध या प्राय. अप्रचलित छन्दों का भी विनियोग है।

कालिदास ने भावानुसार कुछ छन्दों का निर्धारण कर उनका प्रयोग किया है जैसे—

१. वंशवर्णन, नायक नायिका सौन्दर्य, तपस्या आदि में प्रायः—उपजाति का।

२. उपदेश देने एवं कथा बर्णन में—अनुष्टुप् का।

३. युद्ध, वीरता आदि में—वंशस्थ का।

४. करुण में—बैतालीय का।

५. समृद्धि वर्णन में—द्रुत विलम्बित का।

६. कामक्रीड़ा, आखेट या अन्य खेदजनक वर्णनों में—रथोद्धता का।

७. प्रवास, विपत्ति, वर्षा में—मन्दाक्रान्ता का।

८. समाप्ति एवं सफलता में—मालिनी का ।

९. हर्षातिरेक, हर्षपूर्वक समाप्ति में—प्रहर्षिणी का ।

१०. नायक का अभ्युत्थान, सौभाग्य वर्णन आदि में—हरिणी का ।

११. ऋतुवर्णन, ऋतु की सफलता आदि में—वसन्ततिलका का वर्णन किया है ।

इन भावों के अतिरिक्त भी इन छन्दों की योजना है इसी प्रकार इन भावों में भी यत्र तत्र अन्य छन्दोप्रयोग हैं किन्तु मूलतः पूर्वभावना को कवि ने यथासम्भव अधिक ध्यान देकर पालन किया है । वस्तुतः कालिदास सच्चे अर्थों में कवि थे, छन्द, अलंकार, सौन्दर्य, तो उनकी भावधारा के अंग बनकर स्वतः ही आ जाते थे. कहीं भी उनके लिये कवि को ताकना पड़ा हो या प्रयत्न करना पड़ा हो ऐसा नहीं है ।

डा० ए० बी० कीथ का यह कथन आदरणीय है—"कालिदास भारतीय काव्यशैली के निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ स्वामी हैं जो अपनी रचना की पूर्णता एवं मसृणता के कारण अश्वघोष से श्रेष्ठतर ठहरते हैं तथा जिनमें वे असंयमपूर्ण अलंकृतियाँ बिलकुल नहीं पाई जाती हैं जिनसे पश्चाद्भावी महान् काव्यकारों की रचनाएँ दूषित अथवा विकृत हो गई हैं । (हि० सं० लिट० पृ०—१०१)

रघुवंश त्रयोदश सर्ग का कथासार

लंकाधीश्वर राक्षसराज रावण का संहार करने के पश्चात् श्री रामचन्द्रजी पत्नी सीता, भाई लक्ष्मण, कपीश्वर सुग्रीव और सन्त विभीषण के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्यापुरी वापस लौट रहे हैं ।

आकाश मार्ग से दिखलाई पड़ने वाले भूमि के उन विभिन्न स्थानों, आश्रमों आदि का वर्णन करते हुये राम सीता को उनका दर्शन करा रहे हैं जिन स्थानों से होकर वे पहले पैदल लंका गए थे एवं जहाँ कोई विशेष घटना घटी थी ।

सर्वप्रथम रामचन्द्रजी लंका और भारत के मध्यस्थ समुद्र जिस पर नल नील ने पूल बनाया था. का वर्णन करते हैं तत्पश्चात् वे तटभूमि, वायु और मेघ का आकर्षक वर्णन करते हैं । मुनियों के नवीन आश्रमों. सीता के नूपुर प्राप्तिस्थान, माल्यवान पर्वत और पम्पासरोवर का क्रमशः मार्मिक वर्णन करते हुये वे

गोदावरी, पंचवटी, अगस्ताश्रम, पंचाप्सर सरोवर, सुतीक्ष्णाश्रम, शरभंग ऋषि आश्रम, चित्रकूट मन्दाकिनी एवं अत्रिमुनि के तपःस्थानों का दर्शन कराकर सीता को उसकी महत्ता समझाते हैं।

प्रयागराज की पावनस्थली में त्रिवेणी संगम की अद्भुत सुन्दरता का विस्तृत वर्णन करने के बाद गुहनगरी श्रृंगवेरपुर तथा सरयू नदी का वर्णन राम ने किया। इधर हनुमान के द्वारा राम आगमन की सूचना प्राप्त कर भरतजी गुरु वशिष्ठ मन्त्रियों एवं सेना के साथ अगवानी के लिये अयोध्या से बाहर आते हैं। रामचन्द्रजी विमान से उतरकर गुरु वशिष्ठ को प्रणाम कर भरत आदि सभी नगर निवासियों से मिलते हैं तथा सुग्रीव व विभीषण का भरत से परिचय कराते हैं। भरतजी लक्ष्मण का आलिंगन करते हैं।

इसके पश्चात् रामचन्द्रजी की आज्ञा से सुग्रीव आदि सभी वानर मनुष्य शरीर धारण कर हाथियों पर सवार होते हैं। विभीषण रथ पर आरूढ़ होकर अयोध्यागमन करते हैं। रामचन्द्रजी भरत लक्ष्मण के साथ पुनः विमान पर सवार होते हैं जहाँ भ्रातृजाया (भौजाई) सीता को देखकर भरत उन्हें प्रणाम करते हैं। अर्द्धकोश की यात्रा के पश्चात् पुष्पक विमान अयोध्या के उस उपवन में उतरता है जहाँ शत्रुघ्न ने तम्बू आदि लगाकर स्वागत की तैयारी की थी। इस प्रकार सपरिवार राम ने उस विशाल सुन्दर उपवन में निवास किया।

त्रयोदश सर्ग का वैशिष्ट्य

रघुवंश त्रयोदश सर्ग साहित्यिक सौन्दर्य के साथ-साथ प्राकृतिक वर्णन की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कालिदास ने मेघदूत में रामगिरि से अलका तक के मार्ग का वर्णन करते हुये जिस प्रकार अपनी भौगोलिक ज्ञान-धारा को उजागर किया है उसी प्रकार इस सर्ग में लंका से अयोध्या तक का मार्ग और वायुयान से दृष्टिगत होने वाले दृश्यों की मधुर अभिव्यंजना उनके कवित्व का विलास है। वर्णनों में कितनी यथार्थता, स्वाभाविकता, सूक्ष्मता एवं हृदयग्राहिता है यह तो पाठक ही अनुभव कर सकेंगे स्थाली पुलाकन्यायेन उसका किंचित् दिग्दर्शन मात्र ही यहाँ किया जा रहा है।

लंका से चलने पर राम को सर्वप्रथम समुद्र का दर्शन होता है। वह जहाँ एक ओर विशाल जलराशि है, बड़े-बड़े जलीय जन्तुओं का आधार है,

वहीं उसमें कुशल नायक की भाँति नदी रूपी अपनी पत्नियों का अधरोष्ठपान करने का कौशल भी है—

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः ।
अनन्य सामान्य कलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः । १३/९

प्रकृति के मानवीकरण के रूप में तो पद-पद पर कवि ने सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं किन्तु उनकी सर्वाधिक विशेषता है कि वे जिसका वर्णन करने चलते हैं उसका सर्वांगीण विवेचन करके ही रुकते हैं। नायक नायिका के रूप में या विशाल जलराशि के रूप में समुद्र का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन करते हुये वे उसके पौराणिक रूप की ओर भी संकेत करते हैं। जैसे—(१) समुद्र का यह स्वरूप राजा सगर के साठ हजार पुत्रों ने अश्वमेध यज्ञ के अश्व की खोज में भूमि को खोद कर दिया था। (देखिये श्लोक ३)

(२) यह समुद्र कितना लम्बा, कितना चौड़ा, कितना गहरा, कहाँ से कहाँ तक है यह बता पाना उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार भगवान विष्णु के रूप का निर्धारण करना असम्भव है। (देखिये श्लोक ५)

(३) नैमित्तिक प्रलय काल में इसी समुद्र में विष्णु भगवान शयन करते हैं (श्लोक ६) मनुस्मृति में 'नैमित्तिक प्रलय' के सम्बन्ध में भगवत् स्थिति का वर्णन करते हुये लिखा है—

यदा स देवो जागर्त्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति । १/५२

(४) पूर्वकाल में जब पर्वतों के पंख होते थे तब एक बार इन्द्र ने उनके पंख काटने प्रारम्भ कर दिये, इससे भयभीत होकर अनेक पर्वत तटस्थ राजा की भाँति विद्यमान इस समुद्र की शरण में आकर छिप गये जिनमें एक मैनाक नाम का पर्वत भी है। (देखिये श्लोक ७)

(५) हिरण्याक्ष के द्वारा अपहृत भूमि का उद्धार करने के लिये भगवान ने बाराह (शूकर) अवतार धारण किया था उस समय समुद्र का जल क्षण भर के लिये पृथ्वी रूपी बधू के मुख पर घूंघट की शोभा को प्राप्त हुआ था। (देखिये श्लोक ८)

इस प्रकार एक सन्दर्भ में अनेक पौराणिक एवं धार्मिक सन्दर्भों की योजना करते हुये कालिदास ने अपने ज्ञानवैभव का प्रकाश किया है।

सीताहरण से केवल राम, लक्ष्मण को ही दुःख नहीं है मृगमृगी, मयूरी, और लताओं तक को दुःख है। एक ओर मृगी दर्भ खाना छोड़ देती है और आँख के इशारे से सीताहरण की दिशा का संकेत करती है।

मृग्यश्च दर्भांकुर निर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशिदक्षिणस्यामुत्पक्ष्म राजीनि विलोचनानि।

तो दूसरी ओर लताएँ वाणी न होने पर भी अपनी शाखाओं को उधर की ओर हिलाकर मार्ग निर्देश करती हैं।

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जित पल्लवाभिः॥

प्रकृति के ये उपादान जहाँ राम के पथप्रदर्शक हैं वही अन्यत्र वे उनके विरह उद्दीपक रूप में चित्रित किये गये हैं जैसे घनगर्जन ने राम को सीता की उत्कट याद दिलायी (श्लोक २८) तो वर्षा से विकसित कन्दली पुष्पों ने सीता के नेत्रों का स्मरण कराकर राम को व्याकुल कर दिया (श्लो० २६) परन्तु चकवा चकवी के परस्पर प्रेम व्यवहार को देखकर वे सीता के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो जाते हैं—

अत्रावियुक्तानि रथांगनाम्नामन्योदत्तोत्पल केसराणि।
इन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये! सस्पृहमीक्षितानि॥

वियोग शृंगार के अनेक उदाहरण जहाँ प्रकृति के इन दृश्यों में उपलब्ध हैं वहीं उन्माद नामक विरहावस्था का सुन्दर चित्रण द्रष्टव्य है। राम पुष्प-स्तबक से अभिराम तन्वी अशोकलता को सीता समझकर आलिंगन करना ही चाहते थे कि लक्ष्मण ने रोक कर उन्हें सचेत किया—

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम्।
त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः॥

इस त्रयोदश सर्ग में एक ओर जहाँ वीर पुरुष राम के पराक्रम प्रदर्शन के बाद चिरवियुक्ता सीता से एकान्त मिलन एवं पूर्ववृत्त के स्मरण से हर्ष रोमाञ्च, विस्मय आदि नाना भावों का माधुर्य पूर्ण वर्णन है वहीं तत्कालीन भारत के दक्षिणी भाग में अति कठिन तप साधन करने वाले सुतीक्ष्ण, शरभंग, अगस्त, शातकर्णि आदि महर्षियों की अद्भुत साधना का वर्णन कर भारतीय संस्कृति और तपोवनों की महत्ता का परिचय भी दिया गया है। जिन

तपोवनों के समक्ष भौतिक ही नहीं स्वर्गीय सुख समृद्धि भी व्यर्थ है। जिन तपोवनों के वृक्ष सत्पुत्रों की भाँति आचरण करते हुये आश्रम में आये अतिथियों का सत्कार करते हैं—

छाया विनीताध्व परिश्रमेषु भूयिष्ठ सम्भाव्यफलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु॥

ऋषि मुनियों का प्रभाव केवल सचेतन पर ही नहीं पड़ता, अचेतन प्रकृति भी प्रभावित हुये बिना नहीं रहती। आश्रम के वृक्ष ऋषियों के साथ ही स्वयं योगाभ्यास करते हुए वर्णित किये गये हैं—

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणममी समध्यासित वेदिमध्याः।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि॥

कालिदास की दृष्टि में प्रकृति निर्जीव नहीं सजीव है। तभी तो उसमें योगाभ्यास की कल्पना की गई है। योग की परिभाषा पातञ्जल योगदर्शन के अनुसार "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" चित्त की वृत्ति (व्यापार) का निरोध है जो अचेतन में सम्भव नहीं अतः सम्पूर्ण प्रकृति को सचेतन मानकर ही कवि ने प्रकृति पुरुष के मध्य भेद का अपह्नव किया है।

प्रयागराज में गंगायमुना की संगमस्थली कवि की दृष्टि में जहाँ प्रकृति के अनेकानेक अद्भुत रूपों को व्यक्त करती हुई कहीं इन्द्रनीलमणि खचित मोतियों की छड़ी सी प्रतीत होती है तो दूसरे क्षण नीलकमल युक्त श्वेत कमलों की माला सी। कभी नीलहंस युक्त राजहंसों की पंक्ति तो कभी अन्धकार मिश्रित चाँदनी सी। कभी शारदीयामेघपंक्ति के समान तो कभी कृष्ण सर्पधारी भगवान शंकर के भस्माञ्चित शरीर के समान प्रतीत होती है।

इस वर्णन में एक ही वस्तु की अनेक वस्तुओं से समानता बतलाकर जहाँ कवि ने अपनी अलंकार प्रतिभा का परिचय दिया है वहीं उसकी सूक्ष्मेक्षिका शक्ति का भी परिज्ञान प्राप्त होता है। संगम स्थली का केवल प्राकृतिक सौन्दर्य ही प्रमुख नहीं है वह तो धार्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहाँ किसी भी रूप में स्नान करने वाला व्यक्ति न केवल पवित्र हो जाता है अपितु उसका मोक्ष भी हो जाता है—

समुद्र पत्न्योर्जल सन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः॥

भारतीय संस्कृति में तीर्थ स्थलों का अत्यधिक महत्व रहा है। हजारों वर्षों से इन स्थानों पर करोड़ों धार्मिक महापुरुष निरन्तर आते रहे हैं और स्नान आदि के द्वारा इनकी सांस्कृतिक परम्पराओं को अक्षुण्ण रखे हुए हैं।

कालिदास जैसे महाकवियों का योगदान भी इस दृष्टि से अनल्प है जिन्होंने इनका महत्व प्रख्यापित किया है।

इस प्रकार प्रस्तुत सर्ग में कवि ने प्रकृति के मधुरोपन्यास के साथ-साथ आश्रम व्यवस्था, तपोवन, तीर्थस्थान वायुयान यात्रा का स्वाभाविक वर्णन किया है। आकाश से पृथ्वी के दृश्यों का कालिदास ने जितना स्वाभाविक और युक्तिपूर्ण वर्णन किया है उससे यह निस्सन्देह ज्ञात होता है ई० पू० में भारत अध्यात्म के साथ-साथ वैज्ञानिक उन्नति में भी विश्वगुरु था। और आज यह कथन कि विज्ञान की उन्नति २०वीं शती में ही हुई मिथ्या सिद्ध हो जाती है। कालिदास की तटस्थ दृष्टि ही इन रहस्यों को जानने में समर्थ थी इसीलिये तो उसने लिखा था—

पुराणमित्येव न साधुसर्वम्।

महाकवि कालिदास और भारवि की काव्य शैली की तुलना

संस्कृत साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्रों में जहाँ एक ओर महाकवि कालिदास प्रसादगुण सम्पन्न, सरल, मधुर, सर्वजनाह्लादक, अभिव्यञ्जना प्रधान काव्यकार के रूप में अनुपमेय हैं, वहीं दूसरी ओर अलंकृतकाव्य शैली के जन्मदाता के रूप में महाकवि भारवि का नाम बड़े आदर के साथ इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों पर चिरकाल तक अंकित रहेगा।

महाकवि कालिदास ने वैदर्भी शैली के माध्यम से सरल स्वाभाविक अप्रयत्नसाध्य अलंकारों का अत्यन्त आह्लादक प्रयोग किया है। उनकी दृष्टि में काव्य का प्राणतत्व रस है जो सर्वोपरि है। इसीलिए वे सब कुछ अभिधा में ही कह देना उचित नहीं समझते अपितु पाठक या श्रोता की भावना के लिये भी कुछ छोड़ देते हैं उदाहरणार्थ—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन
प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनु—
दिनक्षपामध्य गतेव सन्ध्या॥

यहाँ राजा को दिन सुदक्षिणा को रात्रि और गाय को सन्ध्या से उपमित करते हुए जहाँ कवि ने राजा में पुरुषत्व के कारण दिन, सुदक्षिणा में स्त्रीत्व के कारण रात्रि और गाय में वर्ण के कारण सन्ध्या की सहज कल्पना की वहीं भावुक अध्येता जब विचार करता है कि सुदक्षिणा को रात्रि से रात्रि तो काली होती है फिर इस उपमा का क्या औचित्य तो स्पष्टतः उसमें सन्तानहीनता ऐसा दोष दीखता है जिसके कारण उस कुल का आगे अन्धकार ही था। भारतीय संस्कृति में वन्ध्या स्त्री कुलघातिनी मानी गई है। अतः वह अन्धकारपूर्ण ही होती है। सन्ध्या का समय पवित्र होता है उसमें पापक्षय की

क्षमता होती है, वह चन्द्र और सूर्य को प्रस्तुत कर अन्धकार का निवारण करती है। यहाँ नन्दिनी गाय राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा की आशाओं का केन्द्र है, वही उन्हें पुत्रवती होने का वरदान देकर कुलवृद्धि कर अन्धकार विनाश कर सकती है, राजा के द्वारा पूर्वतः उसकी माँ (कामधेनु) के प्रति किये गये अपराध रूपी पाप का विनाश कर सकती है। इस प्रकार गाय की उपमा अत्यन्त सार्थक है। फिर कवि वशिष्ठ आश्रम का दृश्य प्रस्तुत कर रहा है इसलिए आश्रम के औचित्य, काल और वर्णन के औचित्य का भी ध्यान रखता है।

इस प्रकार कालिदास की लेखनी में अभिव्यञ्जना की अद्भुत क्षमता है, अभिधा का प्रयोग तो प्राकृत जन भी कर सकते हैं पर व्यंजना तो विदग्धजनों में ही मिलती है। अतः वे विदग्धजनों को आनन्द देने के लिये स्वतः ही सब कुछ कह देना उचित नहीं मानते।

पिता के पास बैठी हुई पार्वती जव नारद से अपने विवाह के विषय में वार्तालाप सुनती है तो कन्याजनोचित लज्जा, और वार्ताश्रवण की उत्सुकता का भाव किस खूबी से व्यक्त किया है कवि ने—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती॥

इस प्रकार के अनेकानेक स्थलों में महाकवि कालिदास ने अपनी प्रतिभा का प्रकाश किया है। काव्य और नाट्य दोनों ही काव्यविधाओं के वे मर्मज्ञ हैं। वे रसवर्षी महाकवि हैं। विद्या नटी के समान उनकी वशवर्ती है। वाण-भट्ट ने इसीलिये तो कालिदास के विषय में लिखा है—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

महाकवि भारवि अलंकृत काव्य शैली के जन्मदाता हैं वे पाण्डित्य प्रदर्शन को महाकवि का प्रमुख लक्षण मानते हैं। उनकी दृष्टि में कविता कामिनी का रूप नाना प्रकार के अलंकारों और रीति, उक्ति वैचित्र्य आदि के चाकचिक्य से चमत्कृत होना चाहिए तभी तो वह पदविन्यास मात्र से ही पाठक के मन को आकृष्ट करने में समर्थ हो सकेगी जैसा कि अलंकारवादियों का मन्तव्य था—

किं तया कवितया राजन् किं वा वनितया तया।
पदविन्यासमात्रेण मनो नापहृतं यया॥

यद्यपि भारवि के काव्य में मात्र आलंकारिक सौन्दर्य ही नहीं है, उसमें रस, भाव, भाषा और औचित्य की छटा है, अर्थ गाम्भीर्य है, अभिनव प्रयोग की मधुर योजना है, और भावों की अभिव्यक्ति की अपनी एक विशिष्ट पद्धति है। उनके परवर्ती कवियों माघ श्रीहर्ष आदि में इस अलंकृत काव्य शैली का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। एक-एक श्लोक के पाँच-पाँच अर्थ, यमक की भरमार, चित्रालंकारों की क्लिष्ट योजना आदि अलंकृत काव्य शैली की कतिपय विशेषतायें हैं।

महाकवि भारवि की भाषा में प्रौढ़ता, ओज, प्रवाह और शक्तिमत्ता है तो कालिदास की भाषा में लालित्य, सौन्दर्य, माधुर्य और औचित्यपूर्ण पदावली के प्रयोग का वैशिष्ट्य है। दोनों कवियों के शब्द चयन में भावानुकूलता का ध्यान रखा गया है। कालिदास अभिव्यञ्जना के धनी हैं तो भारवि अर्थगाम्भीर्य में बेजोड़ हैं। पद-पद पर अर्थगौरव उनकी विद्वत्ता और अद्भुत कवित्व शक्ति के प्रमाण हैं। कालिदास मूलतः श्रृंगार रस के कवि हैं तो भारवि वीर रस के। कालिदास सरलता और स्वाभाविकता के पक्षपाती हैं तो भारवि कृत्रिमता के। किरातार्जुनीयम् के १५वें सर्ग में चित्रालंकारों की छटा यदि मनोहर है तो उसके काठिन्य से पाठक को अरुचि होना भी स्वाभाविक है। एक ही वर्ण के श्लोक जहाँ पाण्डित्य की कसौटी की पराकाष्ठा है वहीं वह अरसिकता का भी उदादान है। साधारण पाठक को इसमें किञ्चित् भी आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। डा० कीथ आदि पाश्चात्य समालोचकों ने इसीलिए किरातार्जुनीयम् के इस सर्ग की स्पष्टतः आलोचना की है। वस्तुतः भारवि संस्कृत साहित्य में रीति काव्य परम्परा के जन्मदाता हैं। वे वृहत्त्रयी के प्रथम कवि हैं तो कालिदास लघुत्रयी के सर्वस्व हैं। कालिदास भारतीय संस्कृति के व्याख्याता हैं तो भारवि भारतीय विद्वत्ता के पोषक हैं। वस्तुतः दोनों महाकवि दो महायुगों के प्रतिनिधि महाकवि हैं और दोनों में रस परिपाक, भावनिबन्धन और साहित्यिक सौन्दर्य का चमत्कार हैं किन्तु कालिदास का कवित्व कोमल भावोपन्यास से सरल स्वाभाविक एवं व्यञ्जना प्रधान है अतः वे पाठकों को अधिक प्रिय हैं। उनकी प्रतिभा का काव्य और नाट्य क्षेत्र में समान रूप से विकास हुआ है जबकि भारवि का मात्र महाकाव्य क्षेत्र में। दोनों कवि सौन्दर्य के उपासक हैं किन्तु कालिदास औचित्य का अधिक ध्यान रखते हैं, भाषा और भाव के समन्वय में पद-पद पर सजग हैं। एक-एक शब्द सोच विचार कर साभिप्राय प्रयोग करते हैं।

भारवि प्रत्येक श्लोक में कुछ नवीन भाव, अर्थ गाम्भीर्य व्यक्त करना चाहते हैं। कालिदास उपमा अलंकार के प्रयोग में असाधारण प्रतिभा सम्पन्न हैं तो भारवि अर्थान्तरन्यास में।

इस प्रकार दोनों कवियों के काव्य अपने-अपने क्षेत्र में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अन्तर इतना ही है कि एक आदर्शवादी है तो दूसरा यथार्थवादी। वस्तुतः दोनों कवि कविता जगत के शीर्षस्थ रत्न हैं। कालिदास की कविता मञ्जरी के समान सद्यः सुगन्धि का प्रसार करती है तो भारवि की कविता नारिकेल फल के समान ऊपर से कठोर होने पर भी अन्दर से कोमल और सरस है। जैसा कि मल्लिनाथ के शब्दों से स्पष्ट है-

नारिकेल फल साम्भत वचो भारवेः सपदि यदि विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भ निर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥

रघुवंश महाकाव्यम्

त्रयोदश सर्गः

प्रसंग—लङ्कापुरी में रावण को मारकर विभीषण को राजतिलक देकर अग्नि परीक्षा से शुद्ध सीता को साथ लेकर अयोध्यापुरी को पुष्पक विमान से लौटते हुए राम मार्ग में पड़ने वाले नदी, वन, पर्वतों और समुद्र को सीता को दिखला रहे हैं। प्रस्तुत श्लोक में समुद्र का वर्णन आरम्भ करता हुआ कवि राम की स्थिति का वर्णन करता है—

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः
पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां
रामाभिधानो हरिरित्युवाच ॥१॥

अन्वयः—अथ गुणज्ञः सः रामाभिधानः हरिः शब्दगुणम् आत्मनः पदम् विमानेन विगाहमानः रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः जायाम् इति उवाच।

शब्दार्थ - अथ=लङ्का पर विजय प्राप्त कर वहाँ से चलने के बाद। गुणज्ञः=दया, क्षमा, शौर्य आदि गुणों को जानने वाले। सः=वह। रामाभिधानः=राम नामधारी। हरिः=भगवान विष्णु ने। शुब्द गुणंम्=शब्दगुण वाले। आत्मनः पदम्=अपने स्थान अर्थात् आकाश को। विमानेन=पुष्पक नामक वायुयान से। विगाहमानः=पार करते हुए। रत्नाकरं=समुद्र को। वीक्ष्य=देखकर। मिथः=एकान्त में। जायां=पत्नी से। इति=अग्रिम श्लोकों में कही जाने वाली बात को। उवाच कहा।

हिन्दी अनुवाद—लङ्का से चलने के पश्चात्, गुणों को जानने वाले, राम नामधारी (स्वयं भगवान) विष्णु ने, शब्द गुण वाले अपने ही पद (स्थान) अर्थात् आकाश को विमान से पार करते हुए, समुद्र को देख कर एकान्त में अर्थात् केवल अपनी पत्नी सीता से, यह कहा।

भावार्थ—लङ्का स लौटते समय, पुष्पक विमान द्वारा आकाश मार्ग से यात्रा करते हुए राम ने मार्ग में समुद्र को देखकर अपनी पत्नी सीता से कहा।

संस्कृत टीका—अथ लङ्कायाः प्रस्थानानन्तरम्, गुणज्ञः = गुणज्ञाता, सः = प्रसिद्धः, रामाभिधानः = राम इत्याख्यान्वितः, रामरूपेणावतरित इत्यर्थः हरिः साक्षाद्विष्णुः, शब्दगुणम् = शब्दः गुणो यस्य शब्दगुणं आकाशम् "शब्दगुणकमाकाशमि' ति तल्लक्षणात्, आत्मनः विष्णोः पद चरणं स्थानं वाऽऽकाशम् "वियद्विष्णुपदम् इत्यमरः, विमानेन - विः आकाशं माति = मापयति यत् तद् विमानम तेन-कुबेरेण प्रदत्तं पुष्पकनामकं वायुयानम् तेन, विगाहमानः—विशेषेण गाहमान इति विगाहमानः—अवगाहमानः उल्लंघयन्नित्यर्थः, रत्नाकरम्—रत्नानामाकरम् – समुद्रम्, वीक्ष्य—विलोक्य, मिथः—रहसि एकान्ते इत्यर्थः "मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि" इत्मरः। जायाम्-पत्नीं सीताम्, इति-अग्रे वक्ष्यमाणं वचनम्, उवाच—कथयामास।

संस्कृत सरलार्थ—लङ्कां विजित्य ततः प्रस्थानानन्तरम्, पुष्पकविमानेन यात्रां कुर्वन् रामः मार्गे समुद्रं वीक्ष्य स्वपत्नीं सीता मित्यकथयत्।

व्याकरण—**शब्दगुणम्**—शब्दो गुणो यस्येति (बहुव्रीहिः) **गुणज्ञः**—जानातीति ज्ञः ज्ञा धातोः "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः इति क प्रत्ययः गुणानां ज्ञः इति गुणज्ञः (ष० तत्पु०) **विगाहमानः**—वि+गाह्+शानच्। **रत्नाकरम्**—रत्नानाम् आकरः तम् (ष० तत्पु०) **वीक्ष्य**—वि—ईक्ष्+क्त्वा-ल्यप्। **रामाभिधानः**—राम अभिधानं यस्य सः (बहुव्रीहि) उवाच—वच् परिभाषणे लिट् प्रथम पु० एकवचन।

विशेष—यहाँ रामाभिधान कहकर कवि ने राम को विष्णु का अवतार बतलाया है जिससे कि राम में सार्वकालिक ज्ञान एवं दया, क्षमा, शौर्य आदि गुणों की स्थिति एवं 'आत्मनः पदम्' कहने का औचित्य भी सिद्ध हो सके। पौराणिक आख्यान के अनुसार वामन अवतार में बलि का मद नष्ट करते हुए विष्णु ने अपने एक पैर से आकाश को नाप लिया था तब से आकाश को विष्णु पद कहा जाने लगा है। शब्दगुणम्—यह आकाश का विशेषण है। आकाश शून्य है उसका परिचायक धर्म शब्द है, क्योंकि शब्द आकाश में रहता है अतः आकाश का गुण शब्द होने के कारण उसे शब्द गुणम् कहा गया है।

'मिथः' शब्द के द्वारा कवि ने यह भाव व्यक्त किया है कि सीता से एकान्त में मिलकर कुछ अपने मन की बात कहने का राम को अवसर मिला है। 'अथ' शब्द मंगलात्मक होने के कारण सर्ग के आदि में मङ्गलाचरण का कार्य पूर्ण करता है।

अलंकार—यहाँ परिकर नामक अलंकार है क्योंकि गुणज्ञः शब्दगुणम् आदि सभी विशेषण साभिप्राय हैं।

परिकरालंकार का लक्षण—

विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः। (काव्यप्रकाश)

छन्द—यहाँ उपेन्द्र वज्रा और इन्द्रवज्रा छन्दों की क्रमशः पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में स्थिति होने के कारण एक ही पद्य में दो छन्दों की स्थिति रूप उपजाति छन्द है।

उपजाति लक्षण— **अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ**
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः॥ वृत्तरत्ना०।

उपेन्द्रवज्रा लक्षण— **'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ'**

इन्द्रवज्रा— **'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौगः॥**

श्लोक में लक्षणान्विति—

। S S S S । । S । S S
अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः

ज० त० ज०
। S । S S । । S । S S
पदं विमानेन विगाहमानः

तगण त० ज०
S S । S S । । S । S S
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायाम्

त० त० ज० गु० गु०
S S । S S । । S । S S
रामाभिधानो हरिरित्यु वाच

प्रसंग – राम के द्वारा बनाए गये सेतु से दो भागों में विभक्त समुद्र का आलंकारिक वर्णन करते हुए कवि कहता है

वैदेहि! पश्यामलया द्विभक्तं
मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्न—
माकाशमाविष्कृत चारुतारम्॥२॥

अन्वय—वैदेहि ! आमलयात् मत्सेतुना विभक्तं फेनिलम् अम्बुराशिम्, छायापथेन (विभक्तम्) शरत्प्रसन्नम् आविष्कृत—चारुतारम् आकाशम् इव पश्य।

शब्दार्थ—वैदेहि !=हे सीते ! आमलयात्=मलय पर्वत तक। मत्सेतुना=मेरे द्वारा बनाए गए पुल से। विभक्तं=दो भागों में बँटे हुए। फेनिलम्=फेन से युक्त। अम्बुराशिम्=समुद्र को। छायापथेन=छाया पथ से (बहुत से नक्षत्रों की बनी पंक्ति से) (विभक्त हुये) शरत्प्रसन्नम्=शरद् ऋतु में निर्मल। आविष्कृत चारुतारम्=उदित हुए सुन्दर तारों से युक्त। आकाशं=नभ के। इव=समान। पश्य=देखो।

हिन्दी अनुवाद—हे सीते ! मलय पर्वत तक मेरे द्वारा बनाए गए पुल से दो भागों में विभक्त, फेन से युक्त समुद्र को (तुम) छायापथ से दो भागों में विभक्त) शरद् ऋतु में स्वच्छ, उदित हुए सुन्दर नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान देखो।

राम कहते हैं कि हे सीते ! मेरे द्वारा बनाये गये सेतु से द्विधा विभक्त यह समुद्र, छाया पथ से विभक्त, शरत् कालीन तारा गणों से युक्त आकाश के समान दिखलाई पड़ता है।

संस्कृत टीका—वैदेहि ! सीते ! आमलयात् मलयपर्वत पर्यन्तम् "आङ्-मर्यादाभिविध्योः" मत्सेतुना मत्कृतसेतुना, विभक्तम्=द्विधाकृतम्, फेनिलम्=फेनयुक्तम् अम्बूनां जलानां राशिं कोषमिति, अम्बुराशिम्=जलनिधिम्, छायापथेन एतन्नामिकया नक्षत्रराशिपंक्त्या (द्विधाविभक्तम्) शरदि शरदृतौ प्रसन्नं स्वच्छं मेघादिदोष रहित मित्यर्थः, आविष्कृताः प्रकटिताश्चारवः मनोहरा स्तारा: नक्षत्राणि यस्मिन्=प्रादुर्भूतसुन्दरनक्षत्रम्, आकाशम् इव=अम्बर-मिवं, नभ इव पश्य=अवलोकय।

संस्कृत सरलार्थ—मलय पर्वतं यावत् मत्कृतसेतुना द्विधा विभक्तम्, फेनवन्तं सागरम् शरन्निर्मलं मनोहरनक्षत्रयुतमम्बरभिवालोकय।

व्याकरण—वैदेहि !—विदेहस्यापत्यं स्त्री वैदेही तत्सम्बुद्धौ हे वैदेहि ! (विदेह शब्द से अपत्य अर्थ में अण् एवं स्त्रीत्व विवक्षा में टिड्ढाणञ्० इत्यादि सूत्र से ङीप् होकर वैदेही शब्द बनता है जिसका सम्बोधन एकवचन में वैदेहि बना। आमलयात्—आङ् उपसर्ग पूर्वक मलय शब्द से "पञ्चम्य-

पाङ् परिभिः" सूत्र से पञ्चमी विभक्ति। विभक्तम्—वि+भञ्ज्+क्त द्वितीया एक वचन। फेनिल—फेन+इलच् ('फेनादिलच्च' सूत्र) अम्बूनां राशिः अम्बुराशिः तम् (ष० तत्पु०)। शरत्प्रसन्नम्—शरदि प्रसन्नम् (सप्त० तत्पु०) आविष्कृत चारुतारम्—आविष्कृताः चारवः ताराः यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि) आविष्कृत—आविस्+कृ+क्त।

विशेष—इस श्लोक में कवि ने राम के मुख से 'मत्सेतुना' कहलाकर राम के हृदय की इस मनोवैज्ञानिक भावना की ओर संकेत किया है कि—"सीते! तुम्हें प्राप्त करने के लिए मैंने समुद्र पर पुल बनाने जैसे अति कठोर व आश्चर्यजनक कार्य किए हैं

छायापथ—आकाश में नक्षत्रों की एक ऐसी रेखा सी जो बहुत लम्बी होती है जिससे आकाश दो भागों में विभक्त-सा प्रतीत होता है। मल्लिनाथ ने इसके विषय में लिखा है—"छायापथो नाम ज्योतिश्चक्रमध्यवर्ती कश्चित्तिरश्चीनोऽवकाशः।

अलंकार—यहाँ उपमालंकार है। उपमेय समुद्र उपमान आकाश, द्विधा विभक्त होना साधारण धर्म व इव उपमावाचक।

उपमा लक्षण=साधर्म्यमुपमा भेदे। (का० प्रकाश) जहाँ भिन्न उपमेय व उपमान में साम्य वर्णन किया जाय वहाँ उपमालंकार होता है।

अनुप्रास अलंकार भी है।

छन्द—इस श्लोक में इन्द्रवज्रा नामक छन्द है।

प्रसंग—समुद्र कैसे बना? इसका पौराणिक आख्यान प्रस्तुत कर वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये
रसातलं संक्रमिते तुरङ्गे।
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः
पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ॥३॥

अन्वय—यियक्षोः गुरोः मेध्ये तुरङ्गे कपिलेन रसातलं संक्रमिते तदर्थम् उर्वीम् अवदारयद्भिः नः पूर्वैः अयं परिवर्धितः किल।

शब्दार्थ—यियक्षोः=यज्ञ करने की इच्छा वाले। गुरोः=राजा सगर के। मेध्ये=अश्वमेध यज्ञ के योग्य पवित्र। तुरङ्गे=घोड़े को। कपिलेन=कपिल मुनि के द्वारा। रसातलं=पाताल में। संक्रमिते=ले जाने पर। तद-

र्थम्—उस अश्व मेधीय घोड़े को खोजने के लिए। ऊर्वीम्=पृथ्वी को। अवदारयद्भिः=खोदने वाले। नः=हमारे (राम के)। पूर्वैः=पूर्वजों के द्वारा। अयं=यह समुद्र। परिवर्धितः=बड़ा किया गया था। किल=यह निश्चय है।

हिन्दी अनुवाद—(अश्वमेध) यज्ञ करने की इच्छा वाले राजा (सगर) के अश्वमेधीय अश्व को कपिल मुनि के द्वारा पाताल में ले जाने पर, उस अश्व को खोजने के लिए, पृथ्वी को खोदने वाले हमारे पूर्वजों के द्वारा यह समुद्र बढ़ाया गया था, ऐसा प्रसिद्ध है।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि हे वैदेहि, जब अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा रखने वाले हमारे पूर्वज महाराज सगर के अश्व मेधीय अश्व को (चुराकर) इन्द्र ने पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचा दिया, तब उस अश्व को खोजने के लिये पृथ्वी को खोदते हुये हमारे पूर्वंज सगर पुत्रों ने इस समुद्र को परिवर्धित किया था, यह बात प्रसिद्ध है।

संस्कृत टीका—यियक्षोः=यष्टुमिच्छोः, गुरोः=राज्ञः सगरस्य, मेध्ये यज्ञीये पवित्रे तुरङ्गे=अश्वे, कपिलेन = एतन्नामकेन मुनिना रसायाः पृथिव्याः तलं अधोभागम् इति रसातलं पातालमित्यर्थः संक्रमिते=नीते सति, तदर्थम्=अश्वान्वेषणार्थम्, ऊर्वीम्+पृथ्वीम् अवदारयद्भिः=खनद्भिः, नः =अस्माकम् पूर्वैः=पूर्वपुरुषैः (सगर पुत्रैः) अयम्=पुरोदृश्यमानः समुद्रः परिबर्धितः=विस्तारितः किल इति निश्चये ऐतिह्ये वा।

संस्कृत सरलार्थ—यष्टु मिच्छोः सगरस्य यज्ञीयेऽश्वे कपिलमुनिना पातालं प्रापिते सति, तमधिगन्तुं पृथिवीं खनद्भिः अस्माकं पूर्वजैः अयं समुद्रः परिवर्द्धितः इति प्रसिद्धिः।

व्याकरण—**यियक्षोः**–यज्ञ करने की इच्छा, इस अर्थ में यज् धातु से सन्नन्त प्रयोग कर उ प्रत्यय कर षष्ठी एकवचन का रूप। यष्टुमिच्छतीति ययक्षति, ततः सन्नन्तात् "सनाशसभिक्ष उः" इति उप्रत्यये, यियक्षुः, तस्य यियक्षोः—यज्+सन+उप्रत्ययः। **मेध्ये**—मेध+ण्यत् सप्तम्येक वचन (पूतं पवित्रं मेध्यं च) **रसातलम्**—रसायाः तलम् (ष० तत्पु०)। **संक्रमिते**—सम +क्रम+णिच्+क्त (सप्त० एक०) **अवदारयद्भिः**—अव+दृ+णिच्+शतृ (तृतीया बहु०)। **परिबर्धितः**—परि+वृध्+णिच्+क्त (प्रथमा एक०)।

विशेष—इस श्लोक में एक पौराणिक आख्यान को आधार बनाया गया है जिसके अनुसार सगर के साठ हजार पुत्र, अश्वमेध यज्ञ के अश्व को, जो

भयभीत इन्द्र के द्वारा चुराकर पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया गया था, खोजने के लिए पृथ्वी को खोदकर वहाँ पहुँचे थे, और उन्होंने यही समझा था कि अश्व कपिल मुनि के द्वारा ही लाया गया है। अतः सगर पुत्रों ने ऋषि का अपमान किया जिसके परिणामस्वरूप ऋषि की क्रोधाग्नि में वे सभी भस्म हो गये। बाद में उनकी सद्गति के लिए राजा भगीरथ ने उग्र तपस्या कर गङ्गा को भूतल पर उतारा था। इस प्रकार सगर पुत्रों के द्वारा समुद्र का विस्तार किया गया था।

यदि कवि ने कपिलेन शब्द के द्वारा सीधे कपिल मुनि के द्वारा जो अश्व चुराने की बात लिखी है उसका उद्देश्य सगर पुत्रों की भ्रान्ति की ओर संकेत करना प्रतीत होता है। इसलिए अर्थ में किसी प्रकार दोषान्वेषण नहीं करना चाहिए।

छन्द—इस श्लोक में उपजाति नामक छन्द है।

प्रसंग—राम सीता से समुद्र का प्रकारान्तर से वर्णन करते हुए रत्न, अग्नि और चन्द्रमा का आधार रूप में वर्णन कर रहे हैं—

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्मा—
द्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।
अविन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति,
प्रह्लादनं ज्योतिरजन्य नेन ॥४॥

अन्वय—अस्मात् अर्कमरीचयः गर्भं दधति अत्र वसूनि विवृद्धिं अश्नुवते असौ अविन्धनं वह्नि विभर्ति अनेन प्रह्लादनं ज्योतिः अजनि।

शब्दार्थ—अस्मात्=इस समुद्र से। अर्कमरीचयः=सूर्य की किरणें। गर्भं =जल रूपी गर्भ को। दधति=धारण करती हैं। अत्र=इस सागर में। वसूनि=अनेक प्रकार के धन (रत्न आदि)। विवृद्धि=वृद्धि को। अश्नुवते =प्राप्त करते हैं। असौ=यह, अविन्धनं=जल से दीप्त होने वाली। वह्नि =अग्नि को। विभर्ति=धारण करता है। अनेन=इस समुद्र ने। प्रह्लादनं =प्रसन्न करने वाली। ज्योतिः=चन्द्रमा को। अजनि=उत्पन्न किया।

हिन्दी अनुवाद—इस समुद्र से सूर्य की किरणें जल रूपी गर्भ को धारण करती हैं। इसी समुद्र में विविध रत्न आदि वृद्धि को प्राप्त करते हैं। यह समुद्र जल रूपी ईंधन वाली (जल से दीप्त होने वाली) अग्नि को धारण

करता है और इसी समुद्र ने (संसार को) सुख देने वाले चन्द्रमा को उत्पन्न किया है।

भावार्थ—समुद्र से उत्पन्न और वृद्धि को प्राप्त होने वाले अन्य पदार्थों का वर्णन कर समुद्र के महत्व का प्रतिपादन करते हुये राम, सीता से कहते हैं कि इसी समुद्र से सूर्य किरणें जल ग्रहण करती हैं। अनेक रत्न इसी समुद्र में वृद्धि को प्राप्त करते हैं अतएव यह रत्नाकर कहा जाता है। इसी समुद्र में वडवानल रहता है जो कि जल से ही प्रदीप्त होता है। लोकाह्लादक चन्द्रमा भी यहीं से उत्पन्न होता है।

संस्कृत टीका—अस्मात्=समुद्रात्, अर्कस्य सूर्यस्य मरीचयः रश्मयः अर्कमरीचयः गर्भं=जल रूपं गर्भम्, दधति=धारयन्ति (सूर्यकिरणैरेव, मेघस्य सृष्टिः भवति तस्मादेव जलवृष्टिः अतएव सूर्यकिरणानां जलरूप गर्भधारणम् परिकल्पितं कविना। अत्र=समुद्रे वसूनि=धनानि रत्नानि इत्यर्थः (धने रत्ने वसु स्मृतम् इति विश्वः) विवृद्धिम्=विशिष्टाभिवृद्धिम, अश्नुवते=प्राप्नुवन्ति। असौ=समुद्रः एव, आपः जलानि इन्धनं हविःयस्य स काष्ठादिवत् दीपकं वस्तु। तम्=अविन्धनम्। वह्निम् = वडवाग्निम्, विभर्ति=धारयति। अपकार कर्त्तारमपि न त्यजति इति समुद्रस्योदातत्वमुपदर्शितं कविना। तथा च, अनेन=समुद्रेण, प्रह्लादनम्=जगदाह्लादकम्, ज्योतिः=तेजः चन्द्रः इत्यर्थः अजनि=जनितम्।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति यदस्मादेव समुद्रात् सूयरश्मयो वृष्टयर्थं जलं संग्रहृणन्ति। अस्मिन्नेव समुद्रे विविधानि मूल्यवन्ति रत्नानि उत्पद्यन्ते वृद्धिञ्चाप्नुवन्ति। अयमेव वडवानल धारयति। लोकाह्लादकं चन्द्रमसमप्ययमेव समुद्रः समुत्पादयति।

व्याकरण—**अर्कमरीचयः**—अर्कस्य मरीचयः (ष० तत्पु०)। **विवृद्धिम्**—वि+वृध्+क्तिन् (द्वितीया एक व०) **अविन्धनम्**—आपः इन्धनं यस्य तम् (बहु०) अप् शब्द नित्य वहुवचनान्त है। **प्रह्लाद**—प्र+ह्लाद्+ल्यु (अन्) **अजनि**—ण्यन्त जनि धातु से कर्म में लुङ् लकार।

विशेष—इस श्लोक में समुद्र के चार गुणों का वर्णन कर उसकी सर्व-जनोपकारिता का प्रकाश किया गया है।

(१) सूर्य की किरणें इससे जल को ग्रहण कर मेघ की सृष्टि करती हैं जिससे वृष्टि होकर संसार का पालन होता है। इसी महाकाव्य के दशम सर्ग

के ५८ वें श्लोक में कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि "सहस्ररश्मि सूर की चार सौ किरणें जिनकी 'अमृत' संज्ञा है, वर्षा करती हैं—

ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै दध्रे देवांश संभवः ।
सौरीभिरिव नाडीभिरमृताख्याभिरम्मयः ।। रघु० १०/।५८

(२) समुद्र में धनों की वृद्धि होती है। वस्तुतः अनेक प्रकार के रत्न, माणिक्य, मोती आदि समुद्र में होते हैं इसीलिए तो इसका प्रसिद्ध नाम रत्नाकर है।

(३) समुद्र में वडवाग्नि रहती है। वडवाग्नि से समस्त अतिरिक्त जल जलकर भस्म हो जाता है। भूगोल में ऐसे स्थानों को गल्फस्ट्रीम धारायें कहा गया है। वस्तुतः कवि ने जल रूप सम्पत्ति का नाश करने के कारण अपकारी वडवाग्नि को भी समुद्र अपने आश्रय में आया हुआ मानकर धारण करता है। इस प्रकार समुद्र का शरणागत रक्षक रूप व्यक्त किया गया है।

(४) समुद्र ने चन्द्रमा को जन्म दिया। पौराणिक आख्यान के अनुसार देवदानवों ने समुद्रमन्थन कर जो १४ रत्न निकाले थे उनमें एक चन्द्रमा भी था। चन्द्र किरणें शीतल होने के कारण इसे सर्व जनाह्लादक कहा गया है।

इन चार गुणों के कारण समुद्र का उदात्त रूप अभिव्यक्त हुआ है। एक ही श्लोक में समुद्र के चार गुण (१) लोकोपारकता (२) धनाढ्यता (३) आश्रयदातृत्व एवं (४) सौम्यता व्यक्त किए गए हैं।

अलंकार—अनुप्रास शब्दालंकार है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—समुद्र की व्यापकता और विशालता के कारण विष्णु से उसकी उपमा देते हुए राम सीता से कहते हैं—

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं
स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानव धारणीय
मीदृक्तया रूपमियत्तया वा ।।५।।

अन्वय—ताम् ताम् अवस्थाम् प्रतिपद्यमानम् महिम्ना दश दिशः व्याप्य स्थितम् विष्णोः इव अस्य रूपम् ईदृक्तया इयत्तया वा अनवधारणीयम् ।

शब्दार्थ—ताम् ताम्=उन उन अनेक भिन्न-भिन्न। अवस्थाम्=स्वरूपों को। प्रतिपद्यमानम्=प्राप्त करने वाले। महिम्ना=विस्तार से (विष्णु पक्ष में महिमा से) दशदिश:=दसों दिशाओं को। व्याप्य=व्याप्त कर। स्थितम्=विद्यमान। विष्णो इव=भगवान् विष्णु के समान। अस्य=इस समुद्र का। रूपम्=स्वरूप। ईदृक्तया=इस प्रकार का। इयत्तया=इतना। अनवधारणीयम्=निश्चय नहीं किया जा सकता है।

हिन्दी अनुवाद—(अक्षोभ ऊर्मि भंवर आदि) उन उन (अनेक) अवस्थाओं को (विष्णु पक्ष में—सत्व शक्ति आदि अवस्थाओं को) प्राप्त करने वाले, विस्तार से (विष्णु पक्ष में—विशिष्ट महिमा से) दसों दिशाओं को व्याप्त कर अर्थात् दसों दिशाओं में फैले हुए (विष्णु पक्ष में—समस्त ब्रह्माण्ड में कण-कण में व्याप्त) विष्णु के समान इस समुद्र का स्वरूप इस प्रकार का (ऐसा) है या इतना (बड़ा, छोटा) है। इस प्रकार का निर्धारण नहीं किया जा सकता है।

भावार्थ—समुद्र की विष्णु से तुलना करते हुये राम, सीता से कहते हैं कि जिस प्रकार का विष्णु भगवान् के रूप के विषय में यह कहना सम्भव नहीं है कि वह इतना और इस प्रकार का है, उसी प्रकार इस समुद्र के स्वरूप के विषय में भी कुछ निश्चयत: नहीं कहा जा सकता है, विष्णु के समान ही यह भी दश दिशाओं में व्याप्त है और यथा समय विविध अवस्थाओं को भी प्राप्त करता है।

संस्कृत टीका—ताम् ताम्=विभिन्नताम्, अवस्थाम्=अक्षोभाद्यवस्थाम्; विष्णुपक्षे=सत्त्वादिस्थितिम्, प्रतिपद्यमानम्=धारयन्तम्, महिम्ना=विस्तारेण प्रभावेण, च दश=दश सख्याका:, दिश: दिग्भागान्, व्याप्य=अभिव्याप्य, स्थितम्=विद्यमानम्, विष्णोरिव=भगवत: नारायणस्येव, अस्य=समुद्रस्य, रूपम्=स्वरूपम् ईदृक्तया=एतादृशत्त्वेन, इयत्तया वा एतावत्वेन वा अनवधारणीयम्=दुर्निरूपम्।

संस्कृत सरलार्थ—समुद्रस्य महत्वं वर्णयन् राम: सीतां कथयति, वैदेहि! यथा यथास्थिति सत्वाद्यनेकस्वरूपापन्नं विष्णुस्वरूपं प्रकारत: परिमाणतश्च निर्णेतुमशक्यम् तथैव समुद्रस्यास्यापि अक्षोभाद्यनेकस्वरूपापन्नम्, महत्वेन विस्तारेण च सर्वा: दिशो व्याप्य स्थितं च स्वरूपम् प्रकारत: परिमाणतश्च निश्चेतुमशक्यम्

व्याकरण—प्रतिपद्यमानम्—प्रति+पद्+श्यन्+मुक्+शानच् । **स्थितम्** =स्था+क्त । आकार को 'इकारादेश' । व्याप्य=वि+आप्+क्त्वा को ल्यप्। नञ् और अव पूर्वक णिजन्त धृ धातु अर्थात् धारि धातु से कर्म में अनीयर् प्रत्यय, णिच् प्रत्यय के इकार का लोप, नञ् के न को अन् आदेश, अन्+अव=अनव धार् अनीय=अनवधारणीयम् ।

विशेष—कवि ने इस श्लोक में विष्णु से समुद्र का सादृश्य दिखला कर समुद्र की विशालता और अनेक रूपता का जहाँ कथन किया है वहीं विष्णु के अद्वैत तत्व की स्थापना भी की है। "सर्व खल्विद ब्रह्म"इस मत को आधार बनाकर ही उन्होंने विष्णु के दसों दिशाओं में व्याप्त होने का उल्लेख किया है।

अलंकार—इस पद्य में उपमालंकार है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—यह समुद्र विराट् पुरुष अर्थात् सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता देवाधिदेव नारायण का शयनागार है। इस बात को राम सीता को वतला रहे हैं--

नाभि प्ररूढाम्बुरुहासनेन
संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा ।
अमुं युगान्तोचित योगनिद्रः,
संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते ॥६॥

अन्वय—युगान्तोचितयोगनिद्रः नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन प्रथमेन धात्रा संस्तूयमानः पुरुषः लोकान् संहृत्य अमुम् अधिशेते ।

शब्दार्थ—युगान्तोचितयोगनिद्रः=प्रलय काल में उचित योग निद्रा को प्राप्त किए हुए। पुरुषः=विष्णु भगवान्। लोकान्=भू, भुवः स्वः आदि चौदह लोकों को। संहृत्य=संहार कर (समेट कर)। नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन=(विष्णु की) नाभि से उत्पन्न कमल पर आसन लगाने वाले प्रथमेन=सर्वप्रथम (उत्पन्न)। धात्रा=ब्रह्मा के द्वारा। संस्तूयमानः =स्तुति किए जाते हुए। अमुं=इस समुद्र में (ही)। अधिशेते=शयन करते हैं।

हिन्दी अनुवाद—कल्पान्त में अर्थात् प्रलय काल में उचित योगनिद्रा को प्राप्त किए हुए, और नाभि से उत्पन्न कमल रूपी आसन पर स्थित आदि प्रजापति के द्वारा स्तुति किये जाते हुए भगवान् विष्णु चतुदर्श लोकों को समेट कर इसी समुद्र में शयन करते हैं।

भावार्थ—समुद्र के महत्व का प्रतिपादन करते हुए भगवान् राम, सीता से कहते हैं कि यह वही समुद्र है जहाँ प्रलयकाल में भगवान् विष्णु योगनिद्रा को प्राप्त कर, समस्त भुवनों को समेट कर शयन करते हैं और इस समय उनके नाभिस्थल से उत्पन्न कमलासन पर स्थित ब्रह्मा उनकी स्तुति करते हैं।

संस्कृत टीका—युगान्ते कल्पान्ते प्रलयकाले इत्यर्थः उचिता योग्या योगनिद्रा यस्य: सः=युगान्तोचितयोगनिदः=कल्पान्तपरिचितयोगनिद्रः। नाभेः प्ररूढ मुत्पन्नं=यदम्बुरुहं कमलं तदेव आसनं यस्य तेन=नाभिप्ररुढाम्बुरुहासनेन=नाभिसमुत्पन्नकमलासनस्थितेन। प्रथमेन धात्रा=आद्येन प्रजापतिना, ब्रह्मणा संस्तूयमानः=वन्द्यमानः। पुरुषः=भगवान् विष्णुः। लोकान् —भूर्भुवादीन् चतुदर्श लोकान् संहृत्य = स्वस्मिन्नेवाभ्यन्तरीकृत्य। अमुं समुद्रमधिशेते शयनं करोति। (कल्पान्ते यदा न किमप्यवशिष्यते तदाप्ययं समुद्रो विद्यत इत्यस्य महन्महत्वम्।

स्वनाभ्युत्पन्नकमलासनस्थितेन ब्रह्मणा स्तूयमानः प्रलयकाले भगवान् विष्णुः सर्वानपि लोकान् स्वस्मिन्नेव संहृत्य अस्मिन्नेव समुद्रे शयनं भजते।

व्याकरण—**नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन**—नाभेः प्ररूढं (ष० तत्पु०) यदम्बुरुह तदेवासनं यस्य तेन (बहुव्रीहि)। **संस्तूयमानः**—सम्+स्तु+शानच्। युगान्तोचितयोगनिद्रः— युगस्यान्तः युगान्तः (ष० तत्पु०) युगान्ते उचिता योगनिद्रा यस्य (बहुव्रीहि)। संहृत्य—सम्+हृ+क्त्वा ल्यप्। अमुं मे अधिशेते के योग के कारण 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' सूत्र से आधार में द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशेष—हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार प्रलयकाल में भगवान् विष्णु समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में समेट कर क्षीरसागर में शेषशय्या पर शयन करते हैं उस समय केवल विष्णु, लक्ष्मी एवं विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा जी ही अवशिष्ट रहते हैं। अतः समुद्र प्रलयकाल में भी रहने के कारण संसार की समस्त वस्तुओं से अधिक स्थायी एवं प्राचीन है।

अलंकार—अनुप्रास।

छन्द—उपजाति ।

प्रसंग—इन्द्र के द्वारा पंख काटने के भय से अनेक पर्वतों ने इस समुद्र में शरण ली थी' इसका वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः
शरण्यमेनं शतशो महीध्राः ।
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो
धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते ॥७॥

अन्वय—पक्षच्छिदा गोत्रभिदा आत्तगन्धाः शतशः महीध्राः शरण्यं एनं परेभ्यः उपप्लविनः नृपाः धमोत्तरं मध्यमम् इव आश्रयन्ते ।

शब्दार्थ—पक्षच्छिदा = पंखों को काटने वाले । गोत्रभिदा = पर्वतविदारक इन्द्र के द्वारा । आत्तगन्धाः = मद रहित किये गये (पराजित किये गये) । शतशः = सैकड़ों । महीध्राः = पर्वत । शरण्यं = शरण देने वाले । (शरण में आये हुए की रक्षा करने में समर्थ) । एनं = इस समुद्र का । परेभ्यः = शत्रुओं से । उपप्लविनः = भयभीत (पीड़ित) । नृपाः = राजागण । धर्मोत्तरं = धर्मात्माओं में श्रेष्ठ । मध्यमं = तटस्थ राजा को । इव = समान । आश्रयन्ते = आश्रय लेते हैं (शरण में आते हैं) ।

हिन्दी अनुवाद—(पर्वतों के) पंखों को काटने वाले, पर्वतविदारक [illegible] के द्वारा, मद रहित किये गये अर्थात् पराजित किये गये सैकड़ों [illegible], शरण में आये हुओं की रक्षा करने वाले इस समुद्र का (उसी [illegible]) आश्रय लेते हैं) । जैसे शत्रुओं से भयभीत (पीड़ित) राजागण (किसी) श्रेष्ठ धर्मात्मा मध्यम अर्थात् तटस्थ राजा का आश्रय लेते हैं ।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि यह समुद्र शरणागतरक्षक भी है, इसीलिए, पर्वतपंखों को काटने वाले इन्द्र से त्रस्त होकर पर्वत इस शरण्य समुद्र का ही आश्रय लेते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे शत्रुपीडित राजा किसी धार्मिक मध्यस्थ राजा का आश्रय लेते हैं।

संस्कृत टीका—पक्षान् छिनत्ति यः सः पक्षच्छित् तेन पक्षच्छिदा, पक्षच्छेदकेन, गोत्रभिदा = पर्वतभेदकेन अर्थात् इन्द्रेण = आत्तः हृतः गन्धः गर्वो येषां ते आत्तगन्धाः = तिरस्कृताः पराजिताः इत्यर्थः । "गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्ध

गर्वयो:" इति विश्वः। "आत्तगन्धोऽभिभूतः स्यात्" इत्यमरः। शतशः=शत संख्याकाः=महीं पृथ्वीं धरन्ति ये ते महीध्राः=पर्वताः, शरण्यं शरणे साधुः इति शरण्यः तम्=आश्रयदायिनम्। एनं=समुद्रम्, तथैवाश्रयन्ते यथा परेभ्यः=शत्रुभ्यः उपप्लविनः=भयभीताः, नृपाः=राजानः, धर्मोत्तरम्=धर्म-प्रधानम्, मध्यम्=तटस्थम्, भूपालम् आश्रयन्ते। "अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः" इति कामन्दकः।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति—वैदेहि ! समुद्रोऽयमस्ति शरणागत रक्षकोऽपि, अत एव गोत्रभित्त्रासिता अनेके पर्वताः शरणागतवत्सलस्यास्य समुद्रस्याश्रयं तथैवा गच्छन्ति यथा शत्रुपीड़िता नृपतयो धर्मश्रेष्ठं तटस्थं राजनमाश्रयन्ते।

व्याकरणादि—**पक्षच्छिदा**—पक्ष+छिद्+क्विप्, तृतीयैकवचन। **गोत्रभिदा**—गां=पृथिवीं त्रायन्ते इति गोत्राः, गोत्रान् भिनत्तीति गोत्रभित् तेन—गोत्रभिदा—गोत्र+भिद्+क्विप् तृतीयैकवचन। **आत्तगन्धाः**—आङ्+दा+क्त=आत्तः, आत्तः गन्धो येषान्ते आत्तगन्धाः। **महीध्राः**—मही+धृ+क, यण्, । शतशः—शत शब्दात् शस् प्रत्ययः। **शरण्यम्**—शरणे साधुः इस विग्रह में शरण शब्द से यत् प्रत्यय, यस्येति चेति अकारलोप। **उपप्लविनः**—उपप्लवः=भयम् सोऽस्ति येषान्ते "अत इनिठनौ" इति इनि प्रत्ययः प्रथमा बहुवचने उपप्लविनः। **नृपाः**—नॄन् पान्ति इति विग्रहे नृ+पा+क प्रत्ययः, आकार लोपः। **धर्मोत्तरम्**—धर्मः उत्तरो यस्य तम् धर्मोत्तरम्। **मध्यमम्**—मध्ये भव इत्यर्थे मध्यान्मः इति म प्रत्ययः। आश्रयन्ते=आ+श्रिञ् सेवायाम् लटि रूपम्।

विशेष—पौराणिक आख्यान के अनुसार पहले पर्वतों के पंख होते थे जिससे वे इधर-उधर उड़कर सूर्य के मार्ग में रुकावट डाल देते थे, और जन-सम्पत्ति का नाश करते थे, इस बाधा को दूर करने के लिए जब देवताओं ने इन्द्र से निवेदन किया तो क्रुद्ध होकर इन्द्र ने पर्वतों के पंख काटने शुरू कर दिये। अतः भयभीत अनेक पर्वत उस समय समुद्र में जाकर छिप गये। इस प्रकार समुद्र ने शरण में आये हुए उन मैनाक आदि पर्वतों की रक्षा की।

कवि ने यहाँ समुद्र की तटस्थ राजा से उपमा देकर इन्द्र विरोधी होने से बचा लिया है। यह कवि की सूक्ष्म दृष्टि है।

अलंकार—यहाँ उपमा अलंकार है जिसमें समुद्र उपमेय मध्यम राजा उपमान; पर्वत उपमेय पीड़ित राजा उपमान; इन्द्र उपमेय शत्रु राजा उपमान। शरण देना, भयातुर होना, अंग भंग करना आदि साधारण धर्म हैं तथा इव उपमा वाचक है। इन तीन उपमाओं में मुख्य उपमा समुद्र और मध्यम राजा की है। शेष दो उपमायें इसकी अंगभूत होने के कारण यहाँ अङ्गाङ्गि भावसंकर अलंकार भी है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—भगवान विष्णु के आदि वराह अवतार के समय भी समुद्र था इसकी शोभा का आलंकारिक वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं।

रसातलादादिभवेन पुंसा,
भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं
मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ॥८॥

अन्वय—आदिभवेन पुंसा रसातलात् प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः भुवः प्रलय-प्रवृद्धम् अस्य अच्छम् अम्भः मुहूर्त्तवक्त्राभरणम् बभूव।

शब्दार्थ—आदिभवेन=प्रथम अवतारधारी आदिवराह। पुंसा=पुरुष (विष्णु) के द्वारा। रसातलात्=पाताल से। प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः=जिसके ऊपर को उठाने का कार्य किया गया है। (अर्थात् पाताल से ऊपर लाई गयी)। भुवः=पृथ्वी का। प्रलयप्रवृद्धं=प्रलयकाल में बढ़ा हुआ। अस्य=इस समुद्र का। अच्छंम्=स्वच्छ। अम्भः=जल। मुहूर्त्तवक्त्राभरणं=क्षण भर के लिए मुख का आभूषण (घूंघट)। बभूव=हुआ।

हिन्दी अनुवाद—आदि वराहावतारधारी भगवान् विष्णु के द्वारा, ऊपर की ओर उठाकर लाई गई पृथिवी का, प्रलयकाल में बढ़ा हुआ इस समुद्र का जल, क्षण भर के लिए (उस पृथ्वी के) मुख का आभूषण बन गया था। इस श्लोक में "प्रयुक्तोदवहनक्रियायाः" शब्द में 'उद्वहन' शब्द से यह ध्वन्यर्थ भी निकलता है जब भगवान विष्णु ने पृथ्वी से उद्वाह अर्थात् विवाह किया अर्थात् उसे पत्नीत्वेन स्वीकार जब वे उसे ऊपर ले आये, उस समय समुद्र का जल ही उस नव वधू के मुख का आवरण अर्थात् घूंघट बन गया था।

भावार्थ—प्रस्तुत श्लोक में राम, सीता से कहते हैं कि जब दैत्याधिराज हिरण्याक्ष ने मदवश पृथिवी को रसातल में पहुँचा दिया था तब भगवान् विष्णु ने वाराह अवतार धारणकर इसका उद्धार किया था। रसातल से ऊपर लाते समय इस समुद्र का स्वच्छ जल उस पृथ्वी का आभूषण बन गया था।

संस्कृत टीका—आदौ भवः जन्म यस्य सः तेन आदिभवेन आदिवराहेण पुंसा=भगवता विष्णुना, रासायाः तलं रसातलं तस्मात् प्रयुक्तोदवहन क्रियायाः=प्रयुक्ता उदवहनक्रिया उद्धरण क्रिया पक्षे विवाहक्रिया यस्याः सा तस्याः कृतोद्धरणक्रियायाः भुवः=पृथिव्याः पक्षे भूनायिकायाः, प्रलये युगान्ते प्रवृद्धं वर्द्धितं प्रलयप्रवृद्धम्=युगान्तकालसमृद्धम् अस्य=समुद्रस्य, अच्छं=स्वच्छं निर्मलमित्यर्थः अम्भः=जलम्, मुहूर्तं=क्षणम् यावत्, वक्त्रस्य=पृथिव्याः मुखस्य आभरणं आभूषणं पक्षे अवगुण्ठनं=मुहूर्तवक्त्राभरणम्, बभूव जातम्।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति, यदादि वराहावतारधारिणा भगवता विष्णुना रसातलादुद्वाहितायाः भुवः समुद्रस्यास्य स्वच्छमम्भः क्षणं नववधूमुखावरणमिव तस्या मुखाभरणं जातम्।

व्याकरण—रसातलात्=रसायाः तलं तस्मात् (ष० तत्पु०) **आदिभवेन**—आदौ भवः यस्य तेन (बहु०)। प्रयुक्त=प्र+युज्+क्त।—प्रयुक्तोद्वहन क्रियायाः=प्रयुक्ता उद्वहनक्रिया यस्याः सा तस्याः (बहु०)। प्रलयप्रवृद्धम्—प्रलये प्रवृद्धम् (सप्त० तत्पु०) प्रवृद्ध—प्र+वृध्+क्त। मुहूर्तवक्त्राभरणं—मुहूर्तं यथा स्यात् तथा वक्त्रस्य आभरणम्—(षष्ठी तत्पु०)। आभरण—आ+भृ+ल्युट्। बभूव=भू+लिट्=प्र० पु० ए० व०।

विशेष—इस श्लोक में कवि ने आदि वाराह अवतार के रूप में विष्णु के द्वारा पृथ्वी का उद्धार करने का उल्लेख किया है। पौराणिक आख्यान के अनुसार हिरण्याक्ष के द्वारा पृथ्वी का अपहरण किया गया था और उसे पाताल में छिपा दिया गया था। पाताल ब्रह्माण्ड के चौदह भुवनों में सबसे नीचे का लोक है। वहाँ से भगवान् विष्णु ने वराह (सूकर) अवतार धारण कर उद्धार किया था जैसा कि उल्लेख है—

"उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।"

यहाँ पर उद्वहन शब्द श्लिष्ट है। जिसके अनुसार उद्धार ऊपर लाना एवं विवाह ये दो अर्थ वाच्य हैं। अतः विष्णु की पत्नी के रूप में पृथ्वी की

कल्पना करने पर भगवान विष्णु ने पृथ्वी से विवाह किया—यह अर्थ भी प्रतीत होता है – उसकी पुष्टि वक्त्राभरण शब्द के द्वारा होती है। मुख का आभूषण वस्त्र होता है, वह वस्त्र विवाह के समय घूंघट के रूप में होता है। समुद्र का नीला जल नीलवस्त्र के रूप में पृथ्वी के जो नीचे से समुद्र में होकर ऊपर निकल रही थी, के मुख पर सुशोभित हुआ। इस प्रकार कवि ने इस श्लोक में समुद्र का सुन्दर साहित्यिक स्वरूप चित्रित किया है, साथ ही दो मधुर अर्थों की मधुर अभिव्यक्ति भी की है।

अलंकार—इस श्लोक में श्लेष, लुप्तोपमा एवं रूपक अलंकारों का अंगांगि भावसंकर है और परिणामालंकार है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—कामासक्त नायक नायिका की भाँति, समुद्र अपनी प्रेयसी नदियों के साथ विविध शृङ्गार क्रीड़ायें करता हैं—इस भाव का वर्णन करते हुए राम सीता को समुद्र का परिचय दे रहे हैं—

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः,
स्वयं तरङ्गाधरदान दक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः,
पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः ॥९॥

अन्वय—अनन्य सामान्यकलत्रवृत्तिः तरङ्गाधरदानदक्षः असौ मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः सिन्धूः स्वयं पिबति पाययते च।

शब्दार्थ—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः=असाधारण पत्नी प्रेम करने वाला (स्त्रियों से भोग करने वाला कामी)। तरङ्गाधरदानदक्षः=तरङ्ग रूपी अधरोष्ठ का दान करने में चतुर अर्थात् अपने लहर रूपी अधरोष्ठ का अपनी स्त्री के द्वारा पान कराने में चतुर। असौ=यह समुद्र। मुखार्पणेषु=चुम्बन के लिये अपना अधरोष्ठ देने में, मुख दान करने में। प्रकृति प्रगल्भाः= स्वभावतः धृष्ट अर्थात् अपने मुख का चुम्बन आदि कराने के लिए पति के समक्ष निर्लज्ज हो जाने वाली। सिन्धूः=नदियों को (नदी रूपी अपनी प्रेयसियों को)। स्वयं=समुद्र। पिबति=पीता है (अधरोष्ठ पान करता है)। पाययते च=और पान कराता है (अपने अधरोष्ठ का स्त्रियों से पान कराता है)।

हिन्दी अनुवाद—विलक्षण रूप से पत्नी-रमण करने वाला (चुम्बनार्थं) लहर रूपी अपने अधरोष्ठ का दान करने में चतुर, यह समुद्र, मुखदान करने में स्वभावतः धृष्ट (निर्लज्ज) नदियों (रूपी स्त्रियों) को स्वयं पान करता है और (स्वयं के अधरोष्ठ का) पान कराता है।

भावार्थ—समुद्र का आलंकारिक वर्णन करते हुए राम, सीता से कहते हैं, कि विलक्षण रीति से पत्नीरमण में चतुर एवं अपने तरंग रूप अधरोष्ठ को चुम्बनार्थ देने में कुशल यह समुद्र चुम्बनार्थ अपना मुख देनें में स्वभावतः चञ्चल एवं लज्जारहित नदी रूपो अपनी पत्नियों का यह अधरपान करता हैं और स्वयं भी उन्हें अपना अधरपान कराता है।

संस्कृत टीका—अन्येषां सामान्या साधारणा न भवति इति अनन्य सामान्य कलत्रवृत्तिः=सामान्या सा चासौ कलत्रेषु पत्नीषु वृत्तिः भोगरूपो व्यापारो यस्य सः अनितरसामान्य पत्नीरमणव्यवहारशीलः तरङ्ग एव अधरः तस्य दाने दक्षः इति तरङ्गाधरदानदक्षः = वीचिरूपाधरोष्ठसमर्पणचतुरः, असौ=समुद्रः मुखार्पणेषु=चुम्बनार्थं आननसमर्पणेषु, प्रकृत्या स्वभावतः प्रगल्भाः धृष्टाः प्रकृतिप्रगल्भाः=सख्यादिप्रेरणां बिनैव पत्युः समक्षं मुखसमर्पणे लज्जारहिताः, सिन्धूः=नदीः (नदी रूपा स्त्रियः) "सिन्धुः समुद्रे नद्याञ्च" इति विश्वः। स्वयं समुद्रः पिबति=सिन्धूनामधरोष्ठपानं करोति पाययते च तरङ्गात्मकम् अधरं पाययते च=पानं करयति च।

संस्कृत सरलार्थ—समुद्रं निर्दिशन् रामः कथयति, वैदेहि। पश्य, समुद्रोऽयं विलक्षणपत्नीरमणप्रवीणोऽस्ति, अतएवायं चुम्बनार्थं स्वकीयतरङ्गाधरदाने नैपुण्यं दर्शयति। अस्य प्रेयस्यो नद्यश्चापि स्वभावत एव चञ्चला लज्जाविरहिता भूत्वा स्वकीयं मुखमस्मै समर्पयन्ति चुम्बनार्थम्। एवमसौ समुद्रस्तासामधरोष्ठपानं करोति कारयति च।

व्याकरण—**मुखार्पणेषु**—मुखस्यार्पणं मुखार्पणं तेषु (ष० तत्पु०) **प्रकृतिप्रगल्भाः**—प्रकृत्या प्रगल्भाः (तृ० तत्पु०) **तरङ्गाधरदानदक्षः** तरङ्ग एव अधरः तरङ्गाधरः तस्य दाने दक्षः (बहु०)। **अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः**—न अन्येषाम् सामान्या अनन्यसामान्या कलत्रेषु वृत्तिः कलत्रवृत्तिः, अनन्य सामान्या कलत्रवृत्तिः यस्य सः—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः। पाययते—पा पाने धातु से ण्यन्त प्रयोग में परस्मैपद का नित्य निषेध हो जाने के कारण ण्यन्त पा धातु

का आत्मनेपदी लट् लकार प्र० पु० ए० व०। सिन्धूः में गतिबुद्धि प्रत्यवसानार्थ० इत्यादि सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशेष—कामशास्त्र में रतिकाल में पति-पत्नी द्वारा परस्पर अधर पान का उल्लेख किया गया है तदनुसार ही कवि ने यहाँ समुद्र और नदियों में पत्नी पति के व्यवहार का आरोप कर उनमें अधरपान की क्रिया का वर्णन किया है उसकी सङ्गति के लिए समुद्र की तरङ्गों और नदियों की तरङ्गों में अधरोष्ठ का आरोप किया है।

नदियों को प्रकृति प्रगल्भ बताकर कवि ने प्रौढ़ा नायिका के रूप में उनका चित्रण किया है। साथ ही समुद्र का धीर ललित नायक के रूप में धृष्ट स्वरूप चित्रित किया है—क्योंकि वह अकेले ही अनेक नदी रूपी स्त्रियों का अधरपान करता है और उन्हें कराता है—यह अर्थ सिन्धूः में बहुवचन के प्रयोग से ध्वनित होता है।

कवि ने प्रकारान्तर से राम के हृदय में जो पुष्पक विमान के एकान्त-स्थल में सीता के साथ थे, काम भाव की अभिव्यक्ति या जागृति का सूक्ष्म रूप में संकेत किया है। क्योंकि वाणी मनः स्थिति की प्रकाशिका होती हैं।

इस श्लोक में सम्भोग शृंगार रस है।

अलंकार—यहाँ समासोक्ति अलंकार है जिसमें समुद्र और नदियों पर नायक नायिका के व्यवहार का आरोप किया गया है।

छन्द—उपेन्द्र वज्रा है।

प्रसंग—समद्र में रहने वाली विशालकाय मछलियों की आश्चर्यजनक जलयान्त्रिक क्रियाओं का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

ससत्वमादाय नदीमुखाम्भः
सम्मीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रै
रुर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान् ॥१०॥

अन्वयः—अमी तिमयः विवृताननत्वात् ससत्वं नदीमुखाम्भः आदाय सम्मीलयन्तः सरन्ध्रैः शिरोभिः जलप्रवाहान् ऊर्ध्वं वितन्वत्ति।

शब्दार्थ—अमी=ये (समुद्र में रहने वाली)। तिमयः=विशालकाय

मछलियाँ। विवृताननत्वात्=मुखों के खुले होने के कारण । ससत्वम्= जीवों से (जल जन्तुओं से) युक्त । नदीमुखाम्भः=नदियों के मुहानों के जल को। आदाय=पीकर (मुख में भरकर) । सम्मीलयन्तः=मुखों को बन्द करती हुई । सरन्ध्रैः=छिद्रयुक्त । शिरोभिः=मस्तकों से। जल प्रवाहान्= पानी की धाराओं को। ऊर्ध्वम्=ऊपर की ओर (फव्बारे के रूप में)। वितन्वन्ति=फैला रही है।

हिन्दी अनुवाद—ये तिमि नामक बड़ी-बड़ी मछलियाँ (अपने) मुखों के खुले होने के कारण, जल जन्तुओं सहित नदियों के मुहानों के पानी को (मुख में) भरकर (मुख) बन्द करते हुए छिद्र युक्त सिर (के ऊपरी भाग) से, जलधाराओं (के रूप में उन जलों) को छोड़ रही हैं।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि इस समुद्र में तिमि नामक विशाल-काय मछलियाँ रहती हैं जो कि अपने खुले हुये मुख में पहले तो छोटे-छोटे जल-जीवों सहित समुद्र के जल को भर लेती हैं, और फिर मुख बन्द करके, अपने मस्तक के छिद्रों द्वारा उस जल को फव्वारे के रूप में ऊपर की ओर फैलाती हैं, इस प्रकार ये बड़ा सुन्दर दृश्य उपस्थित कर रही हैं।

संस्कृत टीका—अमी तिमयः = समुद्रे समुपलभ्यमानाः एतन्नामका विशालाः मत्स्यविशेषाः "अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनमायतः" इति विवृत मनावृतम् आननं मुखं येषान्ते, तेषां भावः तस्मात् विवृताननत्वात् विस्तृत-मुखहेतोरित्यर्थः। ससत्वं सत्वैः जलजन्तुभिः सहितमिति ससत्वं, नदीनां सिन्धूनां मुखानि सम्मिलनस्थानानि तेषामम्भो जलमिति नदीमुखाम्भः, तत् आदाय=गृहीत्वा सम्मीलयन्तश्चञ्चु पुटानि संघट्टयन्तो मुखानि पिधायेत्यर्थः। रन्ध्रेण छिद्रेण सहितमिति सरन्ध्र तैः सरन्ध्रैः छिद्रान्वितैरित्यर्थः। शिरोभिः =मस्तकैः जलप्रवाहान्=जलधाराः ऊर्ध्वं=उपरिदेशे=वितन्वन्ति=प्रक्षि-पन्ति। तिमयो जलधारायन्त्रवदाचरन्तीति व्यज्यते।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति यदस्मिन् समुद्रजले निवासिन स्तिमि-नामका विशाला मत्स्यविशेषाः स्वमुखानि विवृत्य, प्रथमं मत्स्यादिजीव सहितं समुद्र जलं गृहीत्वा, तदनु स्वमुखानि पिधाय सरन्ध्रैः स्वकीयैः मस्त कैस्तज्जल-मुपरिदेशे धारायन्त्ररूपेण विस्तारयन्ति। एवं ते मनोहरं दृश्यं [illegible]यन्ति।

व्याकरण—ससत्वम्—सत्त्वैः सहित मिति ससत्वम् (अव्ययीभाव)। नदीमुखाम्भः—नदीनां मुखानि (ष० तत्पु०) नदीमुखानामम्भः (ष० तत्पु०) विवृतम् आननं येषान्ते विवृताननाः तेषाम् भावः विवृताननत्वं ('तस्यभावस्त्वतलौ सूत्र से) तस्मात् (पचमी ए० व०) सरन्ध्रैः—रन्ध्रेण सहितमिति सरन्ध्रं तैः (अव्ययी) जलप्रवाहान्—जलानां प्रवाहास्तान् (ष० तत्पु०)। अमी—अदस् शब्द का प्रथमा बहुवचन पुल्लिग का रूप है।

विशेष—कवि ने इस श्लोक में मछलियों की विशालता तथा उनकी जलधारायन्त्र अर्थात् फव्वारे की क्रिया युक्तता का वर्णन किया है। इससे कवि के व्यापक ज्ञान का आभास होता है। तिमि नामक मछली वर्तमान में ह्वेल मछली के रूप में प्रसिद्ध है। नदियाँ समुद्र में जिस स्थान पर मिलती हैं उस स्थान को मुहाना कहते हैं उसे संस्कृत में नदी मुख कहा गया है।

अलंकार—तिमि नामक मछलियों का स्वाभाविक वर्णन होने के कारण इसमें स्वभावोक्ति अर्थालंकार तथा अनुप्रास नामक शब्दालंकार है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—समुद्र फेन युक्त ग्राहों (नक्रों) का आलंकारिक दृश्य उपस्थित कर राम समुद्र की विविध रूपता का आख्यान करते हुए सीता से कह रहे हैं।

मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भि—
भिन्नान् द्विधा पश्य समुद्रफेनान्।
कपोल संसर्पितया य एषां
व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम् ॥११॥

अन्वय—सहसा उत्पतद्भिः मातङ्गनक्रैः द्विधा भिन्नान् समुद्रफेनान् पश्य ये एषां कपोलसंसर्पितया कर्णक्षणचामरत्वं व्रजन्ति।

शब्दार्थ—सहसोत्पतद्भिः=एकाएक उछलते हुये। मातङ्गनक्रैः=हाथियों के समान ग्राहों से। द्विधा=दो भागों में। भिन्नान्=विभक्त। समुद्रफेनान् =समुद्रफेन को। पश्य=देखो। ये=जो समुद्रफेन। एषां=नाकों के। कपोलसंसर्पितया=गण्ड स्थल के समीप स्थित होने से। कर्णक्षण चामरत्वं= कानों में क्षणभर के लिये चामरभाव को। व्रजन्ति=प्राप्त होते हैं।

हिन्दी अनुवाद—(इस समुद्र में) एकाएक उछलते हुए हाथियों के समान (विशाल) ग्राहों से दो भागों में बँटे हुए फेनों को देखो, जो (फेन) इन ग्राहों के गण्डस्थल (कपोल) को स्पर्श करने के कारण क्षणभर के लिये कानों मे चामर (चंवर) रूपता को प्राप्त हो रहे हैं।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि हे वैदेहि ! इन समुद्र के झागों को देखो जो कि सहसा उछलते हुये विशालकाय नक्रों के द्वारा द्विधा विभक्त हो गये हैं ये झाग जब नक्रों के कानों का स्पर्श करते हैं तो ये उनके कर्ण चामरों के समान जान पड़ते हैं।

संस्कृत टीका—सहसा=अकस्मादेव, उत्पतद्भिः उच्छलद्भिः मातङ्गा इव नक्रास्तैः मातङ्गनक्रैः=हस्तिसदृशग्राहैः द्विधा विभक्तान्=भागद्वयेन भिन्नान् समुद्र फेनान्=जलधि फेनान् पश्यावलोकय; ये=फेनाः, एषां=हस्ति सदृश जलनक्राणां कपोलसंसर्पितया=गण्डस्थलसंसर्पणेन कर्णक्षणचामरत्वम्= श्रवणेषु क्षणमात्रं चामरभावम्, व्रजन्ति=प्राप्नुवन्ति।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति—वैदेहि ! इमान् समुद्रफेनान् त्वमवलोकय, ये समुत्पतद्भिः विशालकायैः नक्रैः द्विधा विभक्ताः सन्ति। इमे फेना यदा नक्राणां गण्डस्थलस्पर्शं कुर्वन्ति तदेमे क्षणं तेषां नक्रणाम् कर्णचामरत्वं यान्ति।

व्याकरण—उत्पतद्भिः—उत्+पत्+शतृ (तृ० बहु० व०)। भिन्नान्—भिद्+क्त (द्वि० बहु० व०)। समुद्रफेनान्—समुद्रस्य फेना स्तान् (ष०तत्पु०) संसर्पितया—संसर्पन्तीति संसर्पिनः सम्+सृप्+णिनि। तेषां भावः संसर्पिता तया तृतीया एकवचन संसर्पितया यहाँ हेत्वर्थ में तृतीया विभक्ति है। कर्णक्षणचामरत्वम्—चामरस्य भावः चामरत्वम्, चामर+त्व; क्षणं चामरत्वमिति क्षणचामरत्वं कर्णेषु क्षणचामरत्वमिति कर्णक्षणचामरत्वम् (तत्पु०)।

विशेष—कवि ने यहाँ ग्राहों को हाथियों के समान वर्णित किया है। हाथी जब सजाया जाता है तो उसके कानों में चमरी गाय के बालों से बने चामर (चवंर) लटका दिये जाते हैं। यहाँ समुद्र का श्वेतफेन जो कि ग्राहों के ऊपर को उछलने पर दो भागों में बँट गया था उनके कानों के समीप कपोल को छू रहा था अतः वह श्वेत चामरों की शोभा प्राप्त कर रहा था।

अलंकार—यहाँ मातङ्गनक्रैः में लुप्तोपमा अलंकार है जिसमें उपमावाचक 'इव' का लोप है। इसी प्रकार फेन में चामर का अभेदारोप करने से रूपक अलकार है। ये दोनों अलंकार वर्णनीय समुद्र की शोभाभिवृद्धि करने के कारण उसकी अङ्गता को प्राप्त करते हैं। साथ ही नक्र की उपमा मातङ्ग से देने के कारण ही फेन में चामरारोप उचित प्रतीत होता है। अतः परस्पर अङ्गाङ्गिभाव संकरालंकार यहाँ है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—"सूर्य किरणों के सम्पर्क से चमकती हुई मणियों से समुद्री सर्पों को पहचामना सम्भव होता है", राम सीता से इसी भाव को व्यक्त करते हैं—

वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा
महोर्मि विस्फूर्जथुनिर्विशेषाः।
सूर्यांशु सम्पर्क समृद्धरागै—
र्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः ॥१२॥

अन्वय—वेलानिलाय प्रसृताः महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः एते भुजङ्गाः सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैः फणस्थैः मणिभिः व्यज्यन्ते।

शब्दार्थ—वेलानिलाय=तटवर्ती हवा खाने के लिए। प्रसृताः=बाहर निकले हुए। महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः=बड़ी बड़ी तरङ्गों की उफानसहित घरघराहट के समान। एते=ये। भुजङ्ग=सर्प। सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैः=सूर्यकिरणों के स्पर्श से अधिक चमकने वाली। फणस्थैः=फणों में विद्यमान। मणिभिः=मणियों से। व्यज्यन्ते=प्रतीत होते हैं (पहचाने जाते हैं)।

हिन्दी अनुवाद—समुद्र तट की वायु के पान के लिए (तीर पर) बाहर निकले हुए, बड़ी-बड़ी लहरों की उफानसहित घरघराहट के समान ये सर्प, सूर्य किरणों के सम्पर्क से अधिक चमकने वाली अपनी फणास्थित मणियों से पहचाने जाते हैं।

भावार्थ—राम कहते हैं कि हे सीते ! तट की वायु का पान करने के लिये बाहर निकले हुये ये समुद्री सर्प, विशाल लहरों की उफान भरी घरघराहट के समान होते हैं। समुद्र की विशाल लहरों और इन सर्पों में वैसे तो

कोई भिन्नता नहीं देखी जाती, किन्तु जब इनके फण की मणियाँ सूर्य की किरणों के सम्पर्क से और अधिक चमकने लगती हैं, तब इन्हें सर्प रूप में सरलता से पहचान लिया जाता है।

संस्कृत टीका—वेलाया: तटस्यानिलाय वायुपानाय=वेलानिलाय. प्रसृताः =बहिर्निर्गताः, महोर्मीणां विशालतरङ्गाणां विस्फूर्जथुरुद्रेको वृद्धिरित्यर्थः। तस्मात् निर्विशेषाः पृथगग्राह्या एकवर्णक्रियात्वाच्च। एते पुरो दृश्यमानाः भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजङ्गाः सर्पाः, सूर्यस्यांशवः सूर्यांशवः रविकिरणाः तेषाम् सम्पर्केण समृद्धो वर्द्धितो रागः कान्तिः येषान्तैः तादृशैः=प्रवृद्धदीप्तिभिः फणस्थैः शीर्षस्थैर्मणिभिः, व्यज्यन्ते=पृथक्तया गृह्यन्ते।

संस्कृत सरलार्थ—तटवर्तिवायुपानाय वहिरागताः विशालतरङ्गनिर्घोष-निर्विशेषाः समुद्रस्थाः सर्पाः केवलं सूर्यकिरणसम्पर्कदीप्तिमद्भिः फणस्थै र्मणिभि रेव व्यक्ति मायान्ति। यादृशस्तरङ्गनिर्घोषो भवति तादृश एव सर्पाणां सोद्रेकध्वनि र्जायते अतएव ते पूर्णतः तरङ्गाभिन्ना एव प्रतीयन्ते। एतेषां भेदकास्तु सूर्यकिरणसम्पर्कप्रकाशिता स्तेषां फणस्था मणय एव भवन्ति।

व्याकरण—वेलानिलाय—वेलाया अनिलः वेलनिलस्तस्मै (तत्पु०) प्रसृताः—प्र+सृ+क्त (प्र० ब० व०)। भुजङ्गाः—भुजाभ्यां गच्छन्तीति भुजङ्गाः। महोर्मीणां विस्फूर्जथुः इति (ष० तत्पु०) तस्मात् निर्विशेषाः (तत्पु०) विस्फूर्जथुः—विस्फूर्ज शब्द से अथुच् प्रत्यय। सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्ध रागैः—सूर्यस्यांशवः सूर्यांशवस्तेषां सम्पर्कः (ष० तत्पु०) तेन समृद्धः रागो येषां तैः (बहु)।

विशेष—सर्प वायुभक्षण करते हैं यह प्रसिद्धि है। अतः समुद्री सर्प भी तटवर्ती वायु का भक्षण करने के लिये किनारे निकल आये हैं किन्तु उनका रंग लहरों जैसा तथा उनकी लहराकर चलने की क्रिया भी लहरों की भाँति होने से उन्हें पृथक् पहचानना कठिन था किन्तु सर्पों के मस्तक में विद्यमान मणियों पर जब सूर्य की किरणें पड़ती थीं तो वे मणियाँ चमक उठती थीं जिससे ये सर्प हैं। इस प्रकार उन्हें पृथक् पहचाना जा सकता था।

अलंकार—यहाँ तरङ्गों और सर्पों को एकरूपता के कारण सन्देह रहता है किन्तु सूर्य किरणों के सम्पर्क से चमकती हुई मणियों से उनका निश्चयात्मक

ज्ञान होने से निश्चयान्त सन्देहालंकार व्यङ्ग्य है। किन्हीं आचार्यों ने यहाँ चन्द्रालोक में निर्दिष्ट पूर्वरूप अलंकार माना है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—राम सीता से समुद्रीजीव शङ्खों का वर्णन करते हुए कहते हैं—

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु
पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथञ्चित्
क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम् ॥१३॥

अन्वय—तव अधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु सहसा ऊर्मिवेगात् पर्यस्तम् ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं शङ्खयूथं कथञ्चित् क्लेशात् अपक्रामति।

शब्दार्थ—तव=तुम्हारे (सीता के)। अधरस्पर्धिषु=अधरोष्ठ से होड़ करने वाले अधरोष्ठ से समता करने वाले)। विद्रुमेषु=विद्रुम मणियों मूंगों के ऊपर। सहसा=एकाएक। ऊर्मिवेगात्=लहरों के वेग से। पर्यस्तम्=फैला हुआ (गिरा हुआ)। ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखम्=(विद्रमों के) ऊपर उठे हुए अंकुरों से फँसे हुये मुख वाला। शङ्खयूथम्=शङ्ख समूह। कथञ्चित्=किसी भी प्रकार। क्लेशात्—कठिनाई से। अपक्रामति=अलग हो रहा है।

हिन्दी अनुवाद—(हे सीते!) तुम्हारे अधरोष्ठ से होड़ करने वाला अर्थात् अधरोष्ठ के समान (लाल वर्ण वाले) मूंगों के ऊपर एकाएक लहरों के वेग से गिरा हुआ, (तथा) विद्रमों के) ऊपर को उठे हुये अङ्कुरों में बिद्ध मुखवाला (फँसा हुआ) शङ्ख समूह किसी भी प्रकार बड़ी कठिनाई से (उनसे) अलग हो पाता है।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि तुम्हारे अधरोष्ठ से समानता करने वाले विद्रुमों पर जब लहरों के वेग से फेंके गये शंख समूह, ऊपर उठे हुये विद्रुम लाल मणियों के अंकुरों में फंस जाते हैं, तब वे बड़ी कठिनाई से ही उनसे अलग हो पाते हैं। यह श्लोक कवि के सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण का परिचायक है।

संस्कृत टीका—(सीते!) तव अधरेण स्पर्धन्ते तच्छीलाः अधरस्पर्धिनः तेषु अधरस्पर्धिषु तवाधरोष्ठसदृशेषु विद्रुमेषु प्रवालेषु, सहसा ऊर्मिवेगात्=

अकस्मात् तरंगवेगात् पर्यस्तम् प्रक्षिप्तम् ऊर्ध्वाङ्कुरैः=ऊर्ध्वमुखप्ररोहैः प्रोतं विद्ध मुखं वदनं यस्य तत् तादृशं, शङ्खनामेतन्नामकानां जलजन्तूनां यूथं वृन्दम्=शंखयूथम्, कथञ्चिद्=येनकेन प्रकारेण, अपक्रामति=अपसरति, तेभ्योऽङ्कुरेभ्यः पृथग्भवतीत्यर्थः।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति, वैदेहि ! अत्रत्या विद्रुममणयः तवाधरोष्ठसमाना दृश्यन्ते, एतेषां विद्रुमाणाम् ऊर्ध्वमुखप्ररोहेषु समुद्रतरंगवेगवशात् सहसा प्रक्षिप्तः शंखसमूहः विद्धमुखो जायते, अत एवायं काठिन्येनैव तेभ्यो दूरं भवति।

व्याकरण—अधरस्पर्धिषु=अधर पूर्वात् स्पर्ध् धातोस्ताच्छील्ये णिनिः **ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखम्**=ऊर्ध्वं च तदङ्कुरमूर्ध्वाङ्कुरं (कर्मधा) ऊर्ध्वाङ्कुरेषु प्रोतं मुखं यस्य तत् (तत्पु० गर्भित बहु:)। शङ्खनां यूथम् (ष० तत्पु०)। **प्रोतम्**=प्र+वे+क्त, सम्प्रसारणेन वकारस्य उकारे, एकारस्य च पूर्वरूपे=प्रोतम्। **पर्यस्तम्**=परि+अस्+क्त प्रत्ययः।

विशेष—समुद्र में मूंगे की लतायें होती हैं जिनके अङ्कुर ऊपर की ओर रहते हैं। ऐसी कवि समय प्रसिद्धि है। उन अङ्कुरों पर जब शङ्ख नामक समुद्री कीड़े लहरों के वेग से गिर जाते हैं तो उनका मुख उन अंकुरों से विद्ध हो जाता है। क्योंकि शङ्ख नामक कीड़े के सम्पूर्ण शरीर पर कठोर परत होती किन्तु मुख खुला रहता है उसी के सहारे वह आगे बढ़ता चलता है। कवि की समुद्री जीव-जन्तुओं से अभिज्ञता का परिचय मिलता है।

अलङ्कार—यहाँ मूंगे को अधरोष्ठ के समान बतलाने के कारण प्रतीप नामक अलकार है क्योंकि यहाँ प्रसिद्ध अपमान विद्रुम को उपमेय और अधर को उपमान बना दिया गया है। जैसा कि लक्षण है—

"प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्"।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—'भंवर (जलावर्त) से युक्त यह समुद्र मन्थन क्रिया युक्त प्रतीत हो रहा है' इस प्रकार राम सीता से समुद्र का वर्णन कर रहे हैं—

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातु—
मावर्तवेगाद् भ्रमता घनेन।

आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः
प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥१४॥

अन्वय—पयांसि पातुं प्रवृत्तमात्रेण आवर्त वेगात् भ्रमता घनेन अयं समुद्रः भूयः गिरिणा प्रमथ्यमानः इव भूयिष्ठम् आभाति।

शब्दार्थ—पयांसि=जलों को। पातुं=पीने के लिए। प्रवृत्तमात्रेण=चेष्टा मात्र करने वाले। आवर्तवेगात्=भवरों के वेग से। भ्रमता=घूमते हुए। घनेन=मेघ से। अयं समुद्रः=यह सागर। भूयः=फिर से। गिरिणा=पर्वत से। प्रमथ्यमानः=मथा जाता हुआ। इव=सा (समान)। भूयिष्ठम्=अत्यन्त। आभाति=सुशोभित हो रहा है।

हिन्दी अनुवाद—(समुद्र के) जल को पीने के लिए चेष्टा मात्र करने वाले (अतएव) भंवरों के वेग से घूमते हुए मेघ से (युक्त) यह समुद्र फिर से पर्वत द्वारा मथा जाता हुआ-सा अत्यन्त सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि वैदेहि! जब मेघ समुद्र जल ग्रहण करने की चेष्टामात्र ही करता है, तभी वह समुद्र में उठने वाली भ्रमरियों से घूमने लगता है उस समय समुद्र में घूमते हुये मेघ को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, कि यह समुद्र पुनः मन्दराचल से मथा जा रहा हो।

संस्कृत टीका—पयांसि=समुद्र जलानि, पातुं=पानं कर्तुम्, प्रवृत्त मात्रेण=उद्यतेनैव सता नतु पीतवता, आवर्त वेगात्=जल भ्रमि प्रभावात्, भ्रमता=भ्रमणशीलेन, घनेन=मेघेन, अयम्=पुरो दृश्यमानः समुद्रः=सागरः, भूयः=पुनरपि गिरिणा मन्दरेणैतन्नामकेन पर्वत विशेषेण, प्रमथ्यमानः मन्थन क्रिया युक्तः इव, भूयिष्ठमत्यन्तम् आभाति=शोभते।

संस्कृत सरलार्थ—जलग्रहणसमुद्यतेनैव सता परमावर्त्तवशा च्चतुर्दिशम् भ्राम्यता मेघेन समुद्रोऽयं पुनरपि मन्दराचलेन प्रमथ्यमान इव प्रतीयते।

व्याकरण—**प्रवृत्तमात्रेण**=प्रवृत्त एव प्रवृत्तमात्रः तेन प्र+वृत्+क्त। **आवर्तवेगात्**=आवर्तस्य वेगः तस्मात् (ष० तत्पु०) भ्रमता=भ्रम्+शतृ (तृ० एक० व०) **भूयिष्ठम्**=अतिशयार्थ में बहु शब्द से इष्ठन् प्रत्यय, बहु को भू आदेश तथा यिट् का आगम कर भूयिष्ठ शब्द बना। **प्रमथ्यमानः**=प्र+मथ्+यक्+शानच्, मुक प्रमथ्यते इति प्रमथ्यमानः **आभाति**=आ+भा दीप्तौ लट्।

विशेष—कवि ने यहाँ समुद्र के पौराणिक आख्यान की ओर संकेत किया है। तदनुसार समुद्रमन्थन में जिस प्रकार मन्दराचल की भ्रमि से समुद्र का पानी घूमता था उसी प्रकार यहाँ समुद्र का पानी पीने लिए मेघ जब नीचे झुकता है तो भंवर के कारण जल घूमने लगता है जिससे मेघ को भी घूमना पड़ता है। इस प्रकार समुद्र का जल भी घूमता था और पर्वत के समान मेघ भी घूमता था। अतः समुद्र मन्थन की पुनरावृत्ति सी हो रही थी।

अलंकार—यहाँ समुद्र के भंवर में समुद्र मन्थन क्रिया की उत्प्रेक्षा की गई है। घन में गिरि का सादृश्य व्यङ्ग्य है। इस प्रकार उत्प्रेक्षालंकार वाच्य और उपमा व्यङ्ग्य है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—समुद्र की किनारे की भूमि का वर्णन करते हुए राम सीता से समुद्र वर्णन का उपसंहार करते हुए कहते हैं—

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी,
तमालतालीवन राजिनीला।
आभाति बेला लवणाम्बुराशे—
र्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा ॥१५॥

अन्वय—अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेः दूरात् तन्वी तमालताला वनराजिनीला वेला धारानिबद्धा कलङ्क रेखा इव आभाति।

शब्दार्थ—अयश्चक्रनिभस्य=लोह चक्र के समान। लवणाम्बुराशेः= क्षार समुद्र की। दूरात्=दूर से। तन्वी=पतली दीखने वाली। तमालताली वनराजिनीला=तमाल एवं ताड़ के वृक्षों की वन पंक्ति से श्याम रंग वाली। वेला=किनारे की भूमि। धारानिवद्धा=चक्र के किनारे लगी हुई। कलङ्क रेखा=जंग की काली रेखा के। इव=समान। आभाति=प्रतीत होती है।

हिन्दी अनुवाद—लोहचक्र के समान प्रतीत होने वाले खारे समुद्र की दूर से पतली प्रतीत होने वाली, तमाल और ताड़ वृक्षों वाली वन पंक्ति से श्याम रंग की, समुद्र तट भूमि, चक्र के किनारे लगी हुई काली जंग की रेखा के समान प्रतीत होती है।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि लोहचक्र के समान, क्षार समुद्र की, दूर होने के कारण सूक्ष्म एवं तमाल तथा ताड़ वनों की पंक्तियों से श्याम वर्ण वाली, समुद्र तीर भूमि, चक्रधारा पर लगी हुई जग की रेखा के समान प्रतीत होती है। अर्थात् समुद्र के तीर की भूमि ऐसी प्रतीत होती है कि मानो चक्रधार पर लगी हुई जंग की काली रेखा हो।

संस्कृत टीका—अयसो लौहस्य चक्रमयश्चक्रं तद्वन्निभाति प्रतीयते यः तस्य=लोहचक्रसदृशस्येत्यर्थः, तन्वी=सूक्ष्मा, लवणाम्बुराशेः=क्षार समुद्रस्य, दूरात्=विमानादतिदूरस्थितत्वात् ! तमालतालीवनराजिनीला तमालानां च तालीनां च वनानि तेषां राजिभिः पंक्तिभिर्नीला श्यामवर्णा=तमाल तालीवन श्रेणिश्यामलवर्णा, वेला = तटभूमिः, धारानिबद्धा = धाराचक्रप्रान्तभागः तस्मिन्निबद्धा आश्रिता=चक्रधाराश्रिता, कलङ्क रेखा=मालिन्य रेखा इव, आभाति=प्रतीयते।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति हे वैदेहि ! लौहचक्रतुलस्य क्षारसागरस्य दूरी भावात् तनु भावेन प्रतीयमाना अथ च तमाल तालीवन श्रेणिश्यामला तीरभूमिः चक्र धाराश्रिता कलङ्क रेखेव प्रतीयते।

व्याकरण—**अयश्चक्रनिभस्य**=अयसः चक्रम्, अयश्चक्रम् तेन निभस्य (ष० तत्पु०) तेन सदृशस्य इति। **तमालताली वनराजिनीला**=तमालाश्च ताल्यश्चेति तेषाम् वनानि तेषाम् राजभिर्नीला। लवणाम्बुराशेः=लवणं च तदम्बु लवणाम्बु (कर्मधा०) लवणाम्बूनां राशिः तस्य (ष० तत्पु०)। धारानिबद्धा=धारायां निबद्धा (सप्त० तत्पु०) कलङ्क रेखा=कलङ्कस्य रेखा कलङ्क रेखा कलङ्क शब्द मलिनार्थ वाची है 'मालिन्यरेखां तु कलङ्कमाहुः" इति दण्डी निभसंकाशनीकाशप्रतीका शोप मादयः। वीथ्यालिरावलिः पंक्तिश्रेणिरेखास्तु राजयः। इत्यमरः।

विशेष—पुष्पक विमान से नीचे अति दूर समुद्र तीर की भूमि तमाल ताड़ आदि वृक्षों से कृष्ण वर्ण की तथा दूर होने के कारण अत्यन्त पतली एक रेखा के समान वैसी ही प्रतीत हो रही थी जैसे किसी लोहे के चक्र के किनारे पर लगी हुई कोई श्याम वर्ण की रेखा हो।

अलंकार—उपमा व उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—समुद्र तट की शीतल व मादक पवन का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते,
सम्भावयत्याननमायताक्षि ।
मामक्षमं मण्डनकाल हाने—
र्वेत्तीव बिम्बाधरबद्ध तृष्णम् ।।१६।।

अन्वय—आयताक्षि ! वेलानिलः केतकरेणुभिः ते आननं सम्भावयति बिम्बाधरबद्धतृष्णं माम् मण्डनकालहानेः अक्षमं वेत्ति इव ।

शब्दार्थ—आयताक्षि=हे विशाल लोचने । वेलानिलः=समुद्र तट की वायु । केतक रेणुभिः=केतकी पुष्पों के पराग से । ते=तुम्हारे (सीता के) । आननम्=मुख को । सम्भावयति=अलंकृत कर रही है । बिम्बाधरबद्धतृष्णम्=बिम्ब फल के समान तुम्हारे अधरोष्ठ पान में लोलुप । माम्=मुझको । मण्डनकालहानेः=शृंगार में होने वाले विलम्ब को, अक्षमम्=सहने में असमर्थ, वेत्ति इव=जानती सी है ।

हिन्दी अनुवाद—हे विशाल लोचने सीते ! समुद्रतट की वायु केतकी पुष्पों के पराग से तुम्हारे मुख को अलंकृत कर रही है (मानो वह) तुम्हारे विम्बफल के सदृश अधरोष्ठ पान में लोलुप मुझको शृंगार में होने वाले विलम्ब को सहन करने में असमर्थ जानती सी है ।

भावार्थ—राम कहते है कि हे विशाल नेत्रों वाली सीते, यह समुद्र तट का वायु केतकी के पुष्पों के पराग से तुम्हारे मुख को अलंकृत कर रहा है, वह मानो इसीलिये कि वह मुझको, तुम्हारे द्वारा किये जाने वाली शृंगार क्रिया में होने वाले विलम्ब को सहन करने में असमर्थ जानता है, अर्थात् वायु यह जानता है कि तुम्हारे द्वारा शृंगारादि में होने वाला विलम्ब मुझे सहन न होगा अतः वह स्वयं तुम्हारा शृंगार कर रहा है ।

संस्कृत टीका—आयताक्षि—आयते विस्तृते अक्षिणी लोचने यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे आयताक्षि=विशाललोचने ! वेलानिलः—समुद्रतटवर्ती पवनः केतकस्यैतन्नामकस्य पुष्पस्य रेणुभिः=परागैः, ते=तव सीतायाः) (आननं=वदनम्. सम्भावयति = अलंकरोति । इत्थं प्रतीयते यथा अयं वायुः विम्बस्य एतन्नामकस्य-रक्तवर्णफलस्येव अधरे अधरोष्ठे बद्धा तृष्णा पिपासा येन तं विम्बाधरबद्धतृष्णम् = बिम्ब फलसदृश सीताऽधरोष्ठपान

BVBSSMV

लोलुपम्, माम्=रामम्, मण्डनस्य क्रियायां या कालहानिः तस्याः मण्डनकालहानेः=प्रसाधनजन्यविलम्बस्य, अक्षममसहमानं वेत्ति इव=जानातीव ।

संस्कृत सरलार्थ—विशाललोचने सीते ! अयं सागरतीर वायुः तव त्रिम्बाधरपानलोलुपं मां शृंगारप्रसाधनजन्यविलम्बासहमानमवगच्छन्निव स्वयमेव केतकीपुष्पपरागैस्त्वन्मुखमलंकरोति ।

व्याकरण—आयते अक्षिणी यस्याः इति विग्रहे बहुव्रीहि समासोत्तर समासान्तः षच् प्रत्ययः, ततः षित्त्वाद्ङीष् प्रत्यय । आयताक्षी, सम्बोधने अम्बार्थेतिह्रस्वे आयताक्षि । विम्बमिवाधरः इति विम्बाधरः (उपमान पूर्वपद् कर्मधारयः । कालहानेरित्यत्र कर्मणि षष्ठी, वेत्ति=विद् ज्ञाने लटि रूपम् ।

विशेष—कवि ने इस श्लोक में समुद्रतटवर्ती पवन का मानवीकरण कर उसमें राम के नर्मसचिव की स्थिति का आरोप किया है। क्योंकि वह पवन सीता के अधरोष्ठ के प्यासे और विलम्ब न सह सकने वाले राम के लिए स्वयं ही केतुकी पुष्प पराग से सीता के मुख को अलकृत कर देता है। इस प्रकार पवन का उद्दीपक रूप और दक्षिणी समुद्र तट पर केतकी पुष्पों की अधिकता भी विदित होती है ।

यहाँ राम की इच्छा को मानों पवन जान गया था। इस प्रकार की सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

विम्बाधर वद्धतृष्णम् में लुप्तोपमाऽलंकार है। दोनों के परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है ।

प्रसंग—समद्र को पारकर तटवर्ती सुपारी उद्यानों का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

एते वयं सैकतभिन्नशुक्ति-
पर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।
प्राप्ता मुहुर्तेन विमानवेगात्
कूलं फलावर्जितपूगमालम् ॥१७॥

अन्वय—एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं फलावर्जितपूगमालं पयोधेः कूलं विमानवेगात् मुहूर्तेन प्राप्ताः ।

शब्दार्थ—एते=ये। वयं = हम लोग। सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम्=वालुकामय तट पर फूटी हुई सीपियों के द्वारा चारों ओर बिखरे

BVBSSMV

हुए मोतियों के समूह वाले। फलावर्जित पूगमालम्=फलों से झुके हुए सुपारी वृक्षों की पंक्ति वाले। पयोधेः=समुद्र के। कूलं=किनारे पर। विमानवेगात् =वायुयान की तेज गति के कारण। मुहूर्तेन=थोड़ी ही देर में (दो घड़ी में) प्राप्ताः=पहुँच गए।

हिन्दी अनुवाद—ये हम लोग (राम, सीता, लक्ष्मण आदि) वालुकामय तट पर फूटी हुई सीपियों के द्वारा बिखरे हुए मुक्ताफलों अर्थात् मोतियों के समूह वाले एवं फलों के कारण नीचे को झुके हुए सुपारी वृक्षों के समूह वाले समुद्र के (उत्तरी) तट पर, वायुयान की तीव्रगति के कारण, थोड़ी ही देर में अर्थात् शीघ्र ही पहुँच गए हैं।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि हम लोग विमान की तीव्र गति के कारण थोड़ी ही देर में समुद्र के उस तट पर आ गये हैं जहाँ समुद्र सीपियों से निकले हुए मोती बिखरे हुये हैं और सुपारी के वृक्ष फलभार से नीचे झुके हुये हैं।

संस्कृत टीका—एते वयं रामसीतालक्ष्मणादयः, सैकतेषु वालुकामयतटे भिन्नाभ्यः स्फुटिताभ्यः शुक्तिभ्यः पर्यस्तानां परितो विकीर्णानां मुक्तानां मौक्तिकानां पटलानि समूहाः यस्मिंस्तत्—सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम्, फलैः पूगफलैरावर्जिताः आनमिताः पूगमाला पूगवृक्षसमूहो यस्मिंस्तत्, फलावर्जितपूगमालम्, पयोधेः=समद्रस्य कूलम्=तटम्, विमानस्य पुष्पक नाम वायुयानस्य, वेगात् तीव्रगतित्वात् मुहूर्तेनाल्पकालेनैव घटिकाद्वयेन वा प्राप्ताः समागताः।

संस्कृत सरलार्थ—सीते, एते वयं सर्वे, समुद्रस्य, स्फुटितशुक्तिभिः परितो विकीर्णमुक्ताफलोपेतं फलभारनमितपूगवृक्षोपेतं कूलं विमानस्य तीव्र गत्या शीघ्रमेव समागताः।

व्याकरण—**सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम्**—सिकताः सन्ति यत्र तत् सैकतम्—सिकता+तद्धित अण् प्रत्ययः, आदि वृद्धि। **भिन्नाः**—भिद्+क्त धातोः दकारस्य, प्रत्यय तकारस्य च नत्वे भिन्नम्, **पर्यस्त**—परि=अस्+क्त। **पयोधेः**—पयांसि धीयन्ते यस्मिन् तस्य—पयस्+धा धातोः अधिकरणे कि प्रत्ययः, आकार लोपः। **विमानवेगात्**—अत्र हेतौ पञ्चमी। **प्राप्ताः**—प्र+आप्+क्त। **मुहूर्तेन**—अत्र अपवर्गे तृतीया,

विशेष—भारत के दक्षिणी समुद्र तट पर आज भी सुपारियों के सुन्दर वन हैं।

छन्द—इन्द्रवज्रा है।

प्रसंग—आगे को तीव्रगति से बढ़ते हुये विमान के पीछे की ओर की वस्तुयें तेजी से दूर भागती हुई सी प्रतीत हो रही हैं, इसका वर्णन करते हुये राम कहते हैं—

कुरुष्व तावत्करभोरु पश्चा—
न्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम्।
एषा विदूरीभवतः समुद्रात्
सकानना निष्पततीव भूमिः ॥१८॥

अन्वय—करभोरु ! मृगप्रेक्षिणि ! तावत् पश्चात् मार्गे दृष्टिपातं कुरु। विदूरीभवतः समुद्रात् एषा सकानना भूमिः निष्पतति इव।

शब्दार्थ—करभोरु !=हे करभ के सदृश जंघाओं वाली। मृगप्रेक्षिणि= हे मृगनयनी। तावत्=तब तक अर्थात् कुछ। पश्चात्=पीछे की ओर। मार्गे=मार्ग पर। दृष्टिपातम्=दृष्टि का गिराना (देखना)। कुरु=करो। विदूरीभवतः=उत्तरोत्तर दूर होते जा रहे। समुद्रात्=सागर से। एषा= यह। सकानना=वन के सहित। भूमिः=पृथ्वी। निष्पतति इव—निकल सी रही है।

हिन्दी अनुवाद—हे करभोरु ! हे मृगनयनी (सीते) तनिक पीछे के रास्ते की ओर दृष्टिपात करो। उत्तरोत्तर दूर होते हुये समुद्र से, यह वन के सहित भूमि निकलती हुई सी प्रतीत हो रही है।

भावार्थ—करभ के समान सुन्दर जंघाओं वाली एवं मृग के समान सुन्दर चितवन वाली सीते ! आप तनिक पीछे की ओर दृष्टि डालिये; वन समेत यह भूमि, अधिकाधिक दूर होते हुये समुद्र से बाहर निकली हुई-सी प्रतीत होती है।

संस्कृत टीका—करभौ इव ऊरू यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे करभोरु। करभसमोरूसम्पन्ने, "मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः" इत्यमरः। हे मृगप्रेक्षिणि ! हे मृगनयने सीते ! तावत् मृगवत्प्रेक्षते या सा तत्सम्बुद्धौ हे मृगप्रेक्षिणि ! हे मृगनयने सीते ! तावत्

स्वल्पकालाय पश्चात् लङि्घते मार्गे अध्वनि दृष्टिपातं नयननिक्षेपणं कुरु, अवलोकयेत्यर्थः। विशेषेण दूरीभवतः उत्तरोत्तरं विमानवेगात् दूरीभवतः समुद्रात् पयोधेः एषा सकानना वनराजिसहिता भूमिः निष्पततीव निष्क्रामतीव बहिरागच्छतीव।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति सीते ! त्वं क्षणं लङि्घतमार्गे दृष्टि-निक्षेपं कुरुष्व। एषा वनसहिता भूमिः दूरं गच्छतः समुद्रात् निर्गच्छतीव प्रतीयते।

व्याकरण—करभोरु—अत्र उरूत्तरपदादिति ऊङ् प्रत्ययः। मृगप्रेक्षिणि। मृग+प्र+ईक्ष्+णिनि। विदूरीभवतः—अविदूरं विदूरं भवतीति विदूरीभवत् तस्मात् (उपपद तत्पु०)। यहाँ विदूर शब्द से च्वि प्रत्यय होकर र के अ को ई आदेश होकर शब्द बना है। सकानना—काननैः सहिता इति (अव्ययी०) सह को स आदेश।

विशेष—कवि ने इस श्लोक में तीव्रगति वाले वायुयान के द्वारा दिखाई देने वाले भूमि के दृश्य का चित्रवत् चित्रण किया है। एक ही पद्य में सीता के दो सम्बोधनों का औचित्य मात्र पादपूर्ति प्रतीत होता है। मृगप्रेक्षिणि सम्बोधन अवलोकन क्रिया में अनुकूल है।

इस श्लोक में भूमि के समुद्र से निकलने की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। करभोरु और मृगप्रेक्षिणि में लुप्तोपमा अलंकार तथा मार्गे मृगप्रेक्षिणि" में अनुप्रास अलंकार है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—आकाश के विभिन्न भागों से सञ्चरण करने वाले वायुयान की मनोऽनुकूल गति का वर्णन करते हुये राम कहते हैं—

क्वचित्पथा सञ्चरते सुराणां
क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः
प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥१९॥

अन्वय—विमानं मे मनसः यथाविधः अभिलाषः तथा प्रवर्तते इति त्वम् पश्य, क्वचित् सुराणां पथा क्वचित् घनानां क्वचित् च पततां (पथा) संचरते।

शब्दार्थ—विमानम्=वायुयान। मे मनसः=मेरे मन की (राम के मन की)। यथाविधः—जैसी। अभिलाषः=इच्छा होती है। तथा=उसी प्रकार (उधर से)। प्रवर्तते=चलता है। पश्य=देखो। क्वचित्=कहीं। सुराणाम्=देवताओं के। पथा=मार्ग से। क्वचित्=कहीं। घनानाम्=मेघों (के मार्ग से)। क्वचित्=कहीं। पतताम्=पक्षियों के मार्ग से। सञ्चरते=चलता है।

हिन्दी अनुवाद—(सीते! यह) विमान मेरे मन की इच्छा के अनुकूल (ही) चलता है देखो (यह) कहीं देव मार्ग से, कहीं मेघ मार्ग से और कहीं पक्षियों के मार्ग से चलता है।

भावार्थ—राम कहते हैं कि हे सीते! यह विमान मेरी इच्छा के अनुकूल ही, कहीं देवमार्ग से कहीं मेघमार्ग से और कहीं पक्षिमार्ग से, चलता है अर्थात् जैसी मैं इच्छा करता हूँ उसी प्रकार उसी मार्ग से चलता है।

संस्कृत टीका—(देवि सीते!) (इदम्) पुष्पकविमानम् मे मनसः=मम (रामस्य) चित्तस्य, यथाविधः=यादृशः, अभिलाषः=इच्छा भवति तथा तेनैव प्रकारेण, प्रवर्तते=गच्छति, पश्य अवलोकयेदम्। इदं विमानं क्वचित् कुत्रचित् सुराणां=देवानाम्, पथा=मार्गेण, सञ्चरते=याति, क्वचित् घनानां=मेघानाम् पथा, क्वचिच्च पततां पक्षिणां मार्गेण सञ्चरते। अतः इदम् मे मनसोऽनुकूल गच्छतीति।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति वैदेहि! पश्य, इदं मे विमानम् मे मनोऽनुकूलमेव प्रयाति, अतः एवेदं क्वचित् देवमार्गेण याति, क्वचिन्मेघमार्गेण क्वचिच्च पक्षिमार्गेण धावति। सर्वथैवेदं ममेच्छामनुसरति।

व्याकरण—**सञ्चरते**—सम् उपसर्गपूर्वक चर् धातु से समस्तृतीयायुक्तात्" सूत्र से आत्मने पद लट् का प्रयोग हुआ है। **अभिलाषः**—अभि+लष् कान्तौ घञ्। **यथाविधः**—यथा विधा (प्रकारः) यस्य सः। **पतताम्**—पतन्तीति पतन्तस्तेषाम्—पत्+शतृ।

विशेष—कवि ने इसमें कभी बहुत ऊँचाइ से कभी मध्य से और कभी बहुत नीचे से विमान के चलने का वर्णन करते हुये क्रमशः देव मार्ग, मेघ मार्ग और पक्षिमार्गों की कल्पना की है।

यहाँ तुल्ययोगिता अलंकार है क्योंकि सुराणां घनानां और पततां का एक ही पथा और सञ्चरते क्रिया से योग है।

लक्षण—नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्य योगिता ।
(काव्य प्रकाश)

छन्द—उपेन्द्रवज्रा ।

प्रसंग—आकाश की शीतल वायु का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धि—
स्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्था—
नाचामति स्वेदलवान्मुखे ते ॥२०॥

अन्वय—महेन्द्रद्विपदानगन्धिः त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः असौ आकाशवायुः ते मुखे दिनयौवनोत्थान् स्वेदलवान् आचामति ।

शब्दार्थ—महेन्द्रद्विपदानगन्धिः=इन्द्र के हाथी ऐरावत के मद से सुगन्धि युक्त । त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः=आकाश गंगा की लहरों के स्पर्श से शीतल । असौ=यह । आकाशवायुः=आकाश पवन । ते मुखे=तुम्हारे मुखं पर, दिनयौवनोत्थान्=मध्याह्न के कारण उत्पन्न । स्वेदलवान्=पसीने की बूंदों को । आचामति=पी रहा है (सुखा रहा है) ।

हिन्दी अनुवाद—इन्द्र के हाथी ऐरावत के मदजल से सुगन्धित आकाश गङ्गा की लहरों के स्पर्श से शीतल यह आकाश पवन तुम्हारे मुख पर मध्याह्न के कारण उत्पन्न पसीने की बूंदों को पी रहा है अर्थात् सुखा रहा है ।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि हे सीते ! तुम्हारे मुख पर मध्याह्न की गर्मी से उत्पन्न स्वेद कणों को यह वह आकाश वायु सुखा रहा है जो कि ऐरावत के मदजल से सुगन्धित एवं आकाश गंगा की तरंगों के सम्पर्क से शीतल हो गया है ।

संस्कृत टीका—महेन्द्रस्येन्द्रस्य यो द्विपः हस्ती ऐरावत स्तस्य दानस्य मदजलस्य इव गन्धः यस्य सः=महेन्द्रद्विपदानगन्धिः, त्रिभिर्मार्गैः गच्छतीति त्रिमार्गगा आकाशगङ्गा तस्याः आकाशगंगायाः वीचीनां तरंगाणां विमर्दन संस्पर्शेण शीतः शैत्ययुक्तः=त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः असौ आकाशवायुः नियत्पवनः, तव=ते, मुखे=आनने, दिनस्य यौवनं मध्याह्नः तस्मात् उत्थानुत्पन्नान् स्वेदलवान्=स्वेद बिन्दून्, आचामति=हरति शोषयतीत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते ! पश्य, मध्याह्न सूर्यतापेन तवानने समुत्पन्नान् स्वेदविन्दून् अयं स आकाशवायुः शौषयति यश्चास्ति ऐरावतमद जलगन्धिः एवञ्चाकाशगंगातरंगसम्पर्कशीतलः ।

व्याकरणादि—**द्विपः**=द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिबतीति द्विपः, द्वि+पा पाने धातोः क प्रत्ययः, धातोराकार लोपः । दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः इत्यमरः । महैन्द्रद्विपदानस्येव गन्धो यस्येति व्यधिकरणपदे बहुव्रीहौ 'उपमानाच्चेति समासान्तः इ प्रत्ययः—**गन्धिः** । **त्रिमार्गगा**=त्रिभिर्मार्गैः गच्छतीति त्रिमार्गगा अत्र तद्धितार्थेति उत्तर पदे समासः । त्रिमार्गगायाः वीचीनां विमर्दन शीतः । **आकाशवायुः** वातीति वायुः=वा गतिगन्धनयोः धातोः औणादिक उण् प्रत्ययः, आतो युक् चिण्कृतोः इति युगागमः, आकाशे वायुः आकाशवायुः । **दिनयौवनोत्थान्**=दिनस्य यौवनं यौवनकालः यौवनपदेनात्र दिनस्य मध्याह्नकालः लक्षणया लक्ष्यते । दिनयौवने उतिष्ठन्तीति दिनयौवनोत्थास्तान् दिनयौवनोत्थान्, अत्र दिनयौवन+उद्+स्था+क प्रत्ययः । **स्वेदलवान्**=स्वेदस्य लवास्तान् स्वेदलवान् । स्त्रियां मात्रा त्रुटिः पुंसि लव लेशकणार्णव इत्यमरः । **आचामति**=आङ्+चम्+लट् तिप्, अत्र आङि चम इति वक्तव्यम् इति वार्तिक नियमेन दीर्घः आचमतीत्यस्य लक्षणयात्र हरति, शोषयति वार्थः ।

विशेष—राम ने सीता के मुख के मध्याह्न जन्म पसीने की बूंदों को सुखाने वाले आकाश पवन का वर्णन कर यह स्पष्ट कर दिया है कि विमान देवमार्ग में चल रहा था ।

यहाँ आकाश पवन का पसीने की बूदों को सुखाकर श्रम हरण सामर्थ्य आकाश गंगा के स्पर्श से शीतल और ऐरावत के मद जल से सुगन्धित होने के कारण है । अतः साभिप्राय विशेषण होने के कारण परिकर अलंकार है ।

छन्द—उपजाति ।

प्रसंग—मेघों के बीच से निकलते समय विद्युत किस प्रकार सीता के हाथ में आभूषण की शोभा को प्राप्त करती है, इसका वर्णन करते हुये राम सीता से कहते हैं—

करेण वातायनलम्बितेन
स्पष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या ।

आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीय—
मुद्भिन्न विद्युद्वलयो घनस्ते ॥२१॥

अन्वय—चण्डि ! कुतूहलिन्या त्वया वातायनलम्बितेन करेण स्पृष्टः उद्भिन्नविद्युद्वलयः घनः ते द्वितीयम् आभरणम् आमुञ्चति इव ।

शब्दार्थ—चण्डि !=हे कोपनशीले-रूठ जाने वाली । कुतूहलिन्या= कौतुकवती । त्वया=तुम्हारे द्वारा (सीता द्वारा) । वातायनलम्बितेन= खिड़की से बाहर निकाले हुये । करेण=हाथ के द्वारा । स्पृष्टः=स्पर्श किया गया । उद्भिन्नविद्युद्वलयः=चमकती हुई बिजली रूपी कंगन वाला । घनः= मेघः । ते=तुम्हारे (सीता के लिये) । द्वितीयम्=दूसरा । आभरणम्— आभूषण (कंगन) आमुञ्चति=प्रदान करता है । इव=मानो ।

हिन्दी अनुवाद—हे कोपनशीले (सीते) कौतुकवती तुम्हारे द्वारा विमान के गवाक्ष से बाहर निकाले गये हाथ से स्पर्श क्रिया गया, अतएव चमकती हुई बिजली रूपी कंकण (कंगन) से युक्त, मेघ तुम्हें मानो दूसरा आभूषण प्रदान करता है ।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि हे देवि सीते ! कौतूहल वश जब तुमने विमान के गवाक्ष से निकालकर अपने हाथ से मेघ का स्पर्श किया तब चमकती हुई विजली रूप कंगन को धारण करने वाले मेघ ने मानों तुम्हारे हाथ में दूसरा कंगन ही पहना दिया हो । मेघ के साथ बिजली का होना स्वाभाविक ही है । कवि की कल्पना है कि यह बिजली ही उसका कंगन है । इस कंगन को उस मेघ ने सीता के द्वारा स्पर्श किये जाने पर उनके हाथ में मानो पहना दिया था । एक कंगन तो उनके हाथ में था ही, यह बिजलीरूपी दूसरा कंगन उनको मेघ ने अर्पित कर दिया था । अर्पण का कारण था सीता का कोपनशील होना, मानो मेघ जानता था कि सीता सहज ही रूठ जाने वाली है अतः उन्हें मनाने के लिये ही मानो उसने ऐसा किया था । जबकि सीता द्वारा समीपवर्ती मेघ का स्पर्श करना उनके कौतूहल वश ही था । हाथ के द्वारा मेघ के स्पर्श किये जाने पर, मेघ स्थित बिजली का हाथ के चारों ओर गोलाकार चमक जाना भी स्वाभाविक ही है । कवि की यह अत्युत्तम उत्प्रेक्षा है ।

संस्कृत टीका—चण्डि कोपनशीले ! कुतूहलमस्या अस्तीति कूतहलिनी तया कुतहलिन्या=कौतुकाविष्टया त्वया=सीतया, वातायने=विमानगवाक्षे,

लम्बितेन बहिरवस्रंसितेन, वातायनलम्बितेन करेण=हस्तेन, स्पृष्टः= परामृष्टः, उद्भिन्नं विद्युद्रूपं वलयं यस्य स उद्भिन्नविद्युद्वलयः=प्रकटितविद्युत्कंकणः, मेघः=पयोधरः ते=सीतायै द्वितीयं तवकरस्थकङ्कणातिरिक्तमाभरण माभूषणम् आमुञ्च तीवार्पयतीवेत्युत्प्रेक्षा ।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति हे कोपनशीले वैदेहि ! मनोविनोदार्थिन्या भवत्या विमानगवाक्षावसंस्रितेन हस्तेन स्पृष्टः अतः एवोद्भिद्याविर्भूतविद्युत्कंकणो मेघस्तव कोपनस्वभावभयभीतः सन्निव ते द्वितीयं वलय मर्पयति ।

व्याकरण—वातायनलम्बितेन—वातायने लम्बितः वातायनलम्बितः तेन, वातस्य अयनम् वातायनं गवाक्षः । स्पृष्टः—स्पृश्+क्त । **कुतूहलिन्या**—कुतूहलमस्या अस्तीति' विग्रहे कुतूहल शब्दात् "अतइनठनौ" सूत्रेण इनि प्रत्ययः स्त्रीत्वे ङीप् कुतूहलिनी तृ० एक० वचने कुतूहलिन्या । **उद्भिन्न विद्युद्-लयः**—विद्युद् एव वलयं विद्युद्वलयं उद्भिन्नं विद्युद्वलयं यस्यः सः (बहु०) **आभरणम्**—आ+भृ+ल्युट् । **चण्डि**—चण्डते इति चण्डी—चडि धातोः णिनि—ङीप् । **आमुञ्चति**—आ+मुच्लृ+लट्, शे मुचादीनामिति नुम् ।

विशेष—इस श्लोक में कवि ने सीता के लिए 'चण्डि' शब्द का प्रयोग किया है । "चण्डस्त्वत्यन्त कोपनः" इस अमर कोश के अनुसार चण्डि शब्द से अत्यन्त क्रुद्ध स्वभाववाली यह अर्थ विदित होता है। इस सम्बोधन की सार्थकता यह है कि मेघ सीता के क्रुद्ध स्वभाव के कारण ही मानो उसे विद्युद् वलय रूपी दूसरा आभूषण प्रदान कर उनके क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न करता है ।

स्थिति यह है कि मेघ के मध्य से निकलते हुए विमान की खिड़की से जब सीता अपना हाथ बाहर निकालती है तो उसी समय मेघ में इस प्रकार बिजली चमकती है कि वह सीता के हाथ में दूसरे कंगन सी प्रतीत होती है । इसीलिए कवि वे द्वितीय आभूषण की सम्भावना की है ।

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार मुख्य एवं उसका उपकारक विद्युद्वलय में रूपक है । इस प्रकार दोनों का अङ्गाङ्गिभाव संकर है ।

छन्द—उपजाति है ।

प्रसंग—रावण की मृत्यु के कारण निर्भय होकर ऋषिगण दण्डकारण्य में पुनः निवास का उपक्रम कर रहे हैं—

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं
मत्वा समारब्धनवोटजानि ।
अध्यासते चीरभृतो यथा स्वं
चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि ॥२२॥

अन्वय—अमी चीरभृतः जनस्थानम् अपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि चिरोज्झितानि आश्रममण्डलानि यथास्वम् अध्यासते ।

शब्दार्थ—अमी=ये। चीरभृतः=वल्कलवस्त्रधारी (तपस्वी)। जनस्थानम्=दण्डकारण्य का विशेष भूभाग। अपोढविघ्नम्=विघ्नरहित। मत्वा =मानकर। समारब्धनवोटजानि=बनायी जा रही हैं नवीन झोपड़ियाँ जिनमें ऐसे। चिरोज्झितानि=बहुत काल से त्यागे हुए (रावणादि राक्षसों के भय से छोड़े हुए) आश्रममण्डलानि=आश्रम समुदायों को। यथास्वं=अपने-अपने पूर्वाधिकार के अनुसार (जिस पर जिसका पहले अधिकार था उसी को) अध्यासते=निवास कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—ये वल्कलवस्त्रधारी तपस्वी दण्डकारण्य के विशेष भूभाग जन स्थान को (अब) विघ्नरहित मानकर बनायी जा रही हैं नवीन झोपड़ियाँ जिनमें ऐसे (रावणादि राक्षसों के भय से) बहुत काल से त्यागे गये आश्रमों में अपने-अपने पूर्व अधिकारानुसार (पुनः) निवास कर रहे हैं।

भावार्थ—राम कहते हैं कि हे सीते, देखो, अब पुनः ये वल्कलवस्त्रधारी तपस्वी, जन स्थान को राक्षसों के विघ्नों से रहित जानकर, चिरकाल से त्यागे गये, अपने-अपने आश्रमों में पुनः नवीन झोपड़ियाँ बनाकर रहने लगे हैं।

संस्कृत टीका—अमी पुरोदृश्यमानाः चीरभृतः = वल्कलधारिणः (तपस्विनः) जनस्थानं दण्डकारण्यस्य भूभागविशेषम् अपोढविघ्नम्=विघ्न-रहितम्। मत्वा=ज्ञात्वा। समारब्धाः प्रारब्धाः नवाः नूतनाः उटजाः पर्णशालाः येषु तानि—समारब्धनवोटजानि=निर्मीयमाणनूतनपर्णशालानि चिरोज्झितानि=रावणादिराक्षसभयाद् बहुकालात् परित्यक्तानि, आश्रम मण्डलानि तपोवनस्थानानि, यथास्वं स्वमनतिक्रम्य यथापूर्वाधिकारमध्यासतेऽधितिष्ठन्ति स्वस्वाश्रमेषु पर्णकुटीः निर्माय तत्र सम्प्रति निर्विघ्नं निवसन्ति ।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते ! इदानीं रावणादिराक्षसवधेन

जनस्थानं निर्विघ्नं जातम्, इति ज्ञात्वा अत्रत्यास्तपस्विनः स्वस्वाश्रमेषु पुनः पर्णशाला निर्माय निवासं कुर्वन्ति।

व्याकरण—अपोढविघ्नम्—अपोढाः विघ्नाः यस्मात् तत् अपोढ़विघ्नम् (बहु०) समारब्धनवोटजानि—समारब्धाः नवाः उटजाः येषु तानि (बहु०)। यथास्वं—स्वमनतिक्रम्य (अव्ययी०) चिरोज्झितानि—चिरेणोज्झितानि (तृ० तत्पु०) **अपोढ़**—अप+वह+क्त सम्प्रसारण। **चीरभृतः**—चीरं बिभ्रतीति चीरभृतः—चीर+भृ+क्विप्, तुक्। **मत्वा**—मन्+क्त्वा। **समारब्ध**—सम् +आ+रभ+क्त। उटजाः—पर्णशालाः पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम् इत्यमरः। **अध्यासते**—अधि+आस् लट्, अस्य योगे मण्डलानीत्यत्र द्वितीया।

विशेष—दण्डकारण्य का जनस्थान मुख्यतः तपस्वियों का तपोवन था किन्तु रावण मारीच आदि राक्षसों के भय से वहाँ के तपस्वी अपने आश्रमों को छोड़ छोड़ भाग गये थे, अब रावण के विनाश से निर्विघ्न होने के कारण वे तपस्वी पुनः आश्रम बना कर रहने लगे हैं।

यहाँ राम ने व्यङ्ग्य पद्धति से यह स्पष्ट कर दिया है कि हे सीते ! रावण को मारने का मेरा उद्देश्य केवल तुम्हारी प्राप्ति ही नहीं था अपितु इन हजारों ऋषियों के साथ किये गए उसके अत्याचार भी थे।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—रावण के द्वारा सीता का अपहरण कर लंका को ले जाते समय मार्ग में सीता के पैर का एक नूपुर गिर गया था उसी स्थान की ओर संकेत करते हुए राम सीता से कहते हैं—

सैषा स्थली यत्र विचिन्विता त्वां
भ्रष्टं मया नूपुरमेक मुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द—
विश्लेष दुःखादिव बद्धमौनम् ॥२३॥

अन्वय—सा एषा स्थली यत्र त्वां विचिन्विता मया त्वच्चरणारविन्द विश्लेषदुःखात् इव बद्धमौनम् उर्व्यां भ्रष्टम् एकं नुपुरम् अदृश्यत।

शब्दार्थ—सा एषा=यह वही। स्थली=वनभूमि है। यत्र=जहाँ। त्वाम्=तुमको (सीता को)। विचिन्विता=खोजते हुए। मया=मेरे द्वारा।

त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात्=तुम्हारे चरण कमल के वियोग जन्य दुःख के कारण। इव=मानों। बद्धमौनम्=मौन धारण करने वाले। उर्व्याम्=पृथ्वी पर। भ्रष्टम्=गिरे हुए। एक नूपुरम्=एक नूपुर को (बिछिया)। अदृश्यत=देखा गया था।

हिन्दी अनुवाद—(हे सीते !) यह वही वनभूमि है जहाँ तुमको खोजते हुए मेरे द्वारा, तुम्हारे चरण कमल के वियोग जन्य दुःख के कारण (ही) मानों मौन धारण करने वाला भूमि पर गिरा एक नूपुर (विछिया) देखा गया था (अर्थात् मुझे मिला था)।

भावार्थ—राम कहते हैं कि है सीते देखो, अब हमारा विमान उस स्थली पर आ गया है जहाँ पर कि तुमको खोजते हुये मैंने तुम्हारे पैर से गिरे हुये एक नूपुर को देखा था, वह उस समय चुपचाप भूमि पर पड़ा था, ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उसने तुम्हारे चरण कमल के वियोग के दुःख से ही मौन धारण कर लिया था।

संस्कृत टीका—सा=पूर्वानुभूता, एषा स्थली=इयम् वनभूमिः (अस्ति) यत्र त्वां सीतां विचिन्विताऽन्विष्यता मया रामेण, त्वत् सीतायाः चरणारविन्दात् पादपङ्कजात् यो विश्लेषः वियोगस्तस्माद्दुःखात् त्वच्चरणारविन्द विश्लेषदुःखात् इव, बद्धं मौनं येन तत् तादृशं निःशब्दम्, उर्व्याम्=पृथिव्याम् भ्रष्टम्=पतितम्, एकम् नूपुरम्=मञ्जीरम् 'मञ्जीरो नूपूरोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः अदृश्यत दृष्टम्। मया लब्धमिति सारार्थः।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति—वैदेहि ! इयं पुरोदृश्यमाना पूर्वानुभूता सैव स्थली (अकृत्रिमा भूमिः) दृश्यते, यत्र पूर्वं त्वा मन्विष्यता मया त्वच्चरणादधः पतित मेकं नूपुरं लब्धम्, इदं तदानीं बद्धमौन मासीत्, सम्भाव्यते यदिदं तदानीं त्वच्चरण कमल वियोगदुःखादेव निःशब्द मासीत्।

व्याकरण—**त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात्**—चरणमेव अरविन्दं चरणारविन्दम् तव चरणारविन्दमिति त्वच्चरणारविन्दं तस्मात् यो विश्लेषः त्वच्चरणारविन्दविश्लेषः तेन दुःखात् (तत्पु०) बद्धमौनम्—बद्धं मौनं येन तत् (बहु०)। **स्थली**—स्थल शब्दात् ङीप् प्रत्यये स्थली-अकृत्रिमा भूमिः, **विचिन्वता**—विचिनोतीति विचन्वन् तेन, वि+चिञ्+लट् शतृ। **विश्लेष**—वि+श्लिष्—घञ्। दुःखादित्यत्र हेतौ पञ्चमी। **मौनम्**—मुने भावः कर्म

वा मौनम्, मुनि + अण् । मौनमभाषणम् । **भ्रष्टम्**—भ्रंश् + क्त । **नूपुरम्**—पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् इत्यमरः । **अदृश्यत**—दृश् कर्मणि लङ् प्रथम पुरुषैक वचने ।

विशेष—यहाँ उत्प्रेक्षाऽलंकार के द्वारा कवि ने नूपुर की निःशब्दता का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। भूमि पर गिरा हुआ नूपुर इसलिए चुप है मानों वह दुःखी है कि सीताजी के चरण कमल से वह वियुक्त हो गया। इस प्रकार यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है। चरणारविन्द में रूपक अलंकार है।

छन्द—उपजाति ।

प्रसंग—सीतावियोगी राम के हृदय में प्रकृति का प्रत्येक उपादान सजीव और सक्रिय प्रतीत होता था। अतएव लताएँ राम को सीता गमन की दिशा का निर्देश कर रही थीं, इसी भाव का चित्रण करता हुआ कवि कहता है—

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता
यं मार्ग मेताः कृपया लता मे।
अदर्शयन्वक्तु मशक्नुवत्यः
शाखाभि रार्वाजतपल्लवाभिः ॥२४॥

अन्वय—भीरु ! त्वं रक्षसा यतः अपनीता तं मार्गं वक्तुमशक्नुवत्यः एताः लताः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः कृपया मे अदर्शयन् ।

शब्दार्थ—भीरु = हे डरने वाली सीते !। त्वम् = तुम । रक्षसा = राक्षस रावण के द्वारा । यतः = जिधर से (जिस मार्ग से) । अपनीता = ले जाई गई थीं । तं मार्गम् = उस मार्ग को । वक्तुमशक्नुवत्यः = बोल सकने में असमर्थ । एताः = इन । लताः = लताओं ने । आवर्जितपल्लवाभिः = झुके हुए पत्तों वाली । शाखाभिः = शाखाओं द्वारा अर्थात् शाखारूपी हाथों के द्वारा । कृपया = दयालुतापूर्वक । मे = मुझे (राम को) अदर्शयन् = दिखलाया था ।

हिन्दी अनुवाद—हे भयशीले (सीते !) तुम रावण के द्वारा जिस मार्ग से (अपहृत कर) ले जाई गईं थीं उस मार्ग को बोल सकने में असमर्थ इन लताओं ने (अपनी) झुके हुए पत्तों वाली शाखा रूपी भुजाओं के द्वारा कृपापूर्वक मुझे दिखलाया था ।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं, कि रावण जिस दिशा से तुम को हरण कर ले गया था, उस दिशा की ओर इन लताओं ने अपनी शाखा रूपी भुजाओं द्वारा संकेत करते हुये मुझे वह मार्ग बता दिया था, यद्यपि ये लतायें बोलने में असमर्थ थीं तथापि ये मेरी मनोव्यथा को जानती थीं अतएव इन्होंने संकेत द्वारा ही कृपापूर्वक मुझे वह मार्ग दिखला दिया था।

संस्कृत टीका—भीरु ! हे भयशीले ! त्वं=सीता, रक्षसा=राक्षसेन रावणेन, यतो=येन मार्गेण, अपनीता=अपहृत्य नीता, तं मार्गम्=वर्त्म, वक्तुम्=भाषितुम्, अशक्नुवत्यः=असमार्थाः सत्यः, वागिन्द्रियाभावात् एताः पुरो दृश्यमानाः लताः वीरुधयः, आवर्जिताः आनमिताः पल्लवाः पाणिसदृश-पत्राणि याभिस्ताभिः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः=भुजस्थानीयैः विटपैः, कृपया=दयालुतया, मे=मह्यम्, रामायादर्शयन् मार्गम् असूचयन् इत्यर्थः। "शाखा वृक्षान्तरे भुजे" इति विश्वः।

संस्कृत सरलार्थ=रामः कथयति, सीते ! त्वं रावणेन येन मार्गेण अपहृता, वागिन्द्रियाभावात्तं मार्गं वक्तु मसमर्थाः सत्यः एताः पुरो वर्तमाना लताः आनमितकिसलयैः स्वकीयैः विटपैरेवासूचयन्।

व्याकरण—भीरु—विभेतीति भीरुः ऊङ् तः से ऊङ् होकर भीरु बना नदी संज्ञा होकर सम्बोधन में ह्रस्व हो जाने से भीरु शब्द निष्पन्न होता है। यतः में तसि प्रत्यय है। **वक्तुम्**—वच्+तुमुन्। **अशक्नुवन्त्यः**—न शक्नुवन्त्यः इति अशक्नुवन्त्यः (नञ् तत्पुरुष)। **आवर्जितपल्लवाभिः**—आवर्जिताः पल्लवाः याभिस्ताभिः (बहु०) **अपनीता**—अप+नी+क्त+टाप्। **आदर्शयन्**—दृश णिच् लङ् प्रथम पुरुष बहुवचन्। **अशक्नुवन्त्यः**—नञ्+शक्+श्नु+शतृ+ ङीप्।

विशेष—इस श्लोक में कवि ने लताओं के द्वारा मार्ग निर्देशन का कार्य कराकर उनमें संजीवता का निर्देश किया है। वस्तुतः वृक्ष लतादिकों में वाक् पाणि, पाद आदि इन्द्रियाँ यद्यपि नहीं होतीं किन्तु सुखदुःखानुभूति उन्हें भी होती है क्योंकि अन्तः संज्ञा उनमें होती है। जैसाकि मनु ने कहा है—"अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुख दुःखसमविन्ताः" इसीलिए तो कालिदास की समस्त प्रकृति मानवीय व्यवहार और क्रिया कलापों से समन्वित रहती है।

कृपया शब्द के द्वारा राम ने अपनी असहाय दीन स्थिति की ओर संकेत

किया है कि इन लताओं ने मेरे ऊपर विशेष कृपा कर मार्ग का निर्देशन किया था अन्यथा सीते ! तुम्हारा पता लगना कठिन था ।

उपजाति नामक छन्द है ।

प्रसंग—हरिणियों ने भी सीता गमन का मार्ग राम को बतलाया था, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षा—
स्तवागतिज्ञं समबोधयन् माम् ।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्या—
मुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि ॥२५॥

अन्वय—दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः मृग्यः च उत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयन्त्यः तव अगतिज्ञं मां समबोधयन् ।

शब्दार्थ—दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः=कुशों के अङ्कुरों में इच्छा रहित (कुशों को अब न चरने वाली) । मृग्यः=हरिणियों ने । उत्पक्ष्मराजीनि=ऊपर उठी हुई बिरौनी या पलकों वाले । विलोचनानि=नेत्रों को । दक्षिणस्यां दिशि= दक्षिण दिशा में (दक्षिण दिशा की ओर) । व्यापारयन्त्यः=प्रवृत्त करती हुई अर्थात् दक्षिण की ओर चलाती हुईं) । तव=तुम्हारी (सीता की) । अगतिज्ञम् =गति को अर्थात् मार्ग को न जानने वाले । माम्=मुझको (राम को) । समबोधयन्=बतलाया था ।

हिन्दी अनुवाद—कुशों के अङ्कुरों में इच्छा रहित अर्थात् सीता हरण के दुःख से चरने का कार्य बन्द कर देने वाली हरिणियों ने भी ऊपर को उठी हुई पलकों वाले (अपने) नेत्रों को दक्षिण दिशा में (की ओर) प्रवृत्त कर तुम्हारे मार्ग को (तुम किधर गईं इसको) न जानने वाले मुझे (राम को मार्ग) बतलाया था ।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि न केवल लताओं ने ही, हरिणियों ने भी कुशाङ्कुरों का खाना छोड़कर, अपने ऊपर उठी बिरौनियों वाले नेत्रों को दक्षिण दिशा की ओर डालते हुए यह संकेत किया था कि रावण, सीता को इस ओर ले गया है ।

संस्कृत टीका—दर्भाणां कुशानामङ्कुरेषु अग्रभागेषु निर्व्यपेक्षाः निस्पृहाः

(सीतापहरणदुखिता: सत्य: भक्ष्यकर्मणि निस्पृहा:) मृग्य:–मृगाङ्गनाश्च, पक्ष्मणां राजय: पक्ष्मराजय: उत्–ऊर्ध्वीकृता: पक्ष्मराजय: येषान्तानि = उद्गत-पक्ष्मपङ्क्तीनि विलोचनानि = नेत्राणि, दक्षिणस्यां दक्षिणनामिकायां दिशि दिशायां, व्यापारयन्त्य: प्रवर्तयन्त्य: तव = सीताया:, गतिं मार्गं जनातीति गतिज्ञ: न गतिज्ञ: अगतिज्ञ: तमगंतिज्ञं मार्गानभिज्ञं मां राम समबोधयन् नेत्र चेष्टया सीतागमनमार्गमबोधयन्नित्यर्थ: ।

संस्कृत सरलार्थ—राम: कथयति, सीते ! न केवलं लता एव अपितु हरिण्योऽपि कुशाङ्कुरभक्षणपराङ्मुख्य: दक्षिण-स्यां दिशि स्वकीयानि समुन्नत-पक्ष्मपङ्क्तीनि नेत्राणि प्रवर्तयन्त्य: त्वद्गमनमार्गं समबोधयन् ।

व्याकरण—**दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षा:**—दर्भाणामङ्कुरास्तेषु निर्व्यपेक्षा: । अगतिज्ञम्—जानातीति ज्ञ:, गतिं जानातीति गतिज्ञ: न गतिज्ञ: अगतिज्ञ: तम् (नञ् तत्पु०) **निर्व्यपेक्षा**—विशिष्टा अपेक्षा व्यपेक्षा निर्गता व्यपेक्षा: यासां ता: । **विलोचनानि**—विशिष्टानि विशालानि लोचनानि, तानि । व्यापारयन्त्य: —वि + आ + पृ + णिच् + शतृ + ङीप् । **गतिज्ञ:**—ज्ञा धातो: क प्रत्यय: । **समबोधयन्**—सम् + बुध् + णिच् + लङ् ।

विशेष—लताओं से सीतागमन के मार्ग का संकेत मिलने के पश्चात् राम को हरिणियों से सीतागमन के मार्ग का संकेत मिला । इस प्रकार प्रकृति का प्रत्येक उपादान चेतन या अचेतन भी राम के लिए हितकारी सिद्ध हो रहा है ।

यहाँ गम्योत्प्रेक्षा है क्योंकि हरिणियों के देखने में मार्ग बतलाने (समबोधयन्) के रूप में सम्भावना व्यङ्ग्य है ।

छन्द—उपजाति है ।

प्रसंग—'माल्यवान् पर्वत पर मेघ को देख कर वियोग में राम रो पड़े थे अतएव यहाँ माल्यवान् शिखर को दिखाते हुये राम सीता से कहते हैं—

एतद्गिरे र्माल्यवत: पुरस्ता—
दाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च
त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥२६॥

अन्वय—माल्यवत: गिरे: अम्बरलेखि एतत् शृङ्गम् पुरस्तात् आविर्भवति यत्र घनै: नवं पय: मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु सम विसृष्टम् ।

शब्दार्थ—माल्यवतः=माल्यवान् नामक। गिरेः=पर्वत का। अम्बर-लेखि=आकाश को छूने वाला (अत्यन्त ऊँचा) एतत्=यह। शृङ्गम्=शिखर (चोटी)। पुरस्तात्=सामने। आविर्भवति=प्रकट हो रहा है (दीख रहा है)। यत्र=जहाँ। घनैः=मेघों ने। नवं पयः=नवीन जल (प्रथम वर्षा जल। मया च=और मैंने। त्वद्विप्रयोगाश्रु=तुम्हारे वियोग के आँसू। समं=साथ-साथ। विसृष्टम्=गिराये थे।

हिन्दी अनुवाद—माल्यवान् नामक पर्वत का आकाश को छूने वाला (अत्यन्त ऊँचा) यह शिखर सामने दिखलाई पड़ रहा है जहाँ मेघों ने प्रथम वर्षा का जल और मैंने तुम्हारे वियोग में आँसू एक साथ गिराये थे अर्थात् मेरे आँखों से अश्रु और मेघ से वर्षा की बूँदें एक साथ ही भूमि पर गिरी थीं।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि यह वही माल्यवान् नामक पर्वत का शिखर सामने दिखलाई पड़ रहा है जहाँ पर मेघों ने प्रथम वर्षा की बूँदें और मैंने तुम्हारे वियोग में आँसू गिराये थे।

संस्कृत टीका—माल्यवतः=एतन्नामकस्य गिरेः पर्वतस्य अम्बरलेखि=अभ्रंलिहम्, एतत् पुरोदृश्यमानं शृङ्गं शिखरं पुरस्तात् सम्मुखमाविर्भवति प्रकटीभवति, यत्र=शृङ्गे, घनैर्मेघैः नवं पयः प्रथमवर्षजिलम् मया रामेण च त्वद्विप्रयोगेण तव वियोगेन अश्रु=त्वद्वियोगाश्रु—समं युगपदेव, विसृष्टम्=विमुक्तम्।

अयमभिप्रायः सीतायाः वियोगानन्तरं प्रथमं घनं दृष्ट्वा रामोऽधैर्येणात्र माल्यवतः शृङ्गे प्रारोदीत् तदैव प्रावृड् ऋतौ प्रारम्भे प्रथमोद् विन्दवो न्यपतन्। इत्थं रामस्य नेत्राभ्यामश्रूणि मेघेभ्यश्च जलविन्दवः सहैवं पतिताः इति।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति, वैदेहि! पश्य, इदं तदेव माल्यवतो गिरेः शिखरं दृश्यते यत्र तव वियोगदुःखेन ममाश्रूणि मेघेभ्यश्च वर्षाग्रविन्दवो युगपदेव न्यपतन्।

व्याकरण—**अम्बरलेखि**—अम्बरं लिखति यत् तत् अम्बरलेखि—अम्बर+लिख्+णिनि, विसृष्टम्—वि+सृज्+क्त। **आविर्भवति**—आविस्+भू+लट्। **विप्रयोगः**—वि+प्र+युज्+घञ्। तव विप्रयोगेन अश्रु त्वद्विप्रयोगाश्रु।

विशेष—कवि ने यहाँ राम के हृदय में सीता वियोग जन्य करुणभाव का चित्रण करते हुए वियुक्तावस्था में मेघ को उद्दीपक रूप में वर्णित किया है।

यहाँ सहोक्ति नामक अलंकार है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—वर्षा ऋतु का उद्दीपक वातावरण वियोगी को पीड़ादायक हो हा जाता है। इसी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां,
कादम्बमर्धोद्गत केसरं च।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभुवु—
र्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे ॥२७॥

अन्वय—यस्मिन् धाराहतपल्वलानाम् गन्धः, अर्धोद्गतकेसरं कादम्बं च शिखिनां स्निग्धाः केकाश्च त्वया विना मे असह्यानि बभूवुः।

शब्दार्थ—यस्मिन्=जिस माल्यवान् पर्वत के शिखर पर। धाराहत पल्वलानाम्—वर्षा की धाराओं से ताड़ित अल्प जलाशयों का। गन्धः=सुगन्ध। अर्धोद्गतकेसरम्=आधे विकसित हुये किंजल्कों वाला। कादम्बं=कदम्ब पुष्प। शिखिनां=मयूरों के। स्निग्धाः=मनोहर। केकाः=मयूरध्वनि। त्वया विना=तुम्हारे बिना। मे=मुझ राम को। असह्यानि=असहनीय। बभूवः=हो गये थे।

हिन्दी अनुवाद—जिस (माल्यवान पर्वत के शिखरों) पर वर्षा की धाराओं से ताड़ित अल्पजलाशयों की सुगन्ध, आधे-आधे निकले हुये किञ्जल्क (केसर) वाले कदम्बपुष्प और मयूरों की मधुर ध्वनि (कूजन) (हे सीते!) तुम्हारे बिना मुझ राम को असह्य हो गई थीं।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं, कि इस माल्यवान् पर्वत के शिखर पर, प्रथम वर्षा की धाराओं से ताडित अर्थात् ग्रीष्मकाल से सूखे पड़े हुये और अब वर्षा के जल से सरस हुए अल्पजलाशयों की सुगन्ध, अर्धविकसित कदम्ब पुष्प, और मयूरों की मधुर कूजन, (ये सब) तुम्हारे वियोग के कारण मुझे असहनोय हो गई थीं।

संस्कृत टीका—यस्मिन्=माल्यवतः शिखरे, धाराभिः वर्षायाः धाराजलैः आहतानां ताडितानां पल्वलानाम्=अल्पजलाशयानाम् धाराहतपल्वलानाम्=वृष्टिधाराताडिताल्पजलाशयानाम्, गन्धः=सुगन्धिः, अर्धोद्गतकेसरम्, सुगन्धिः,

अर्धमुद्रताः प्रकटिताः केसराः किञ्जल्काः यस्मिन्तत-कदम्बस्येदं कादम्बं नीपकुसुमं च, शिखिणां = वर्हिणां स्निग्धा = मनोहराः केकाश्च ध्वनयश्च, त्वया सीतया विना मे रामायासह्यानि असहनीयानि बभूवु: समजायन्त ।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते ! त्वद्वियोगकाले माल्यवतः शिखरे वृष्टि जलजः पल्वलानां गन्धः, अधोद्भिन्नं नोपकुसुमं मधुराः मयूर केकाश्च मे असह्यानि जातानि ।

व्याकरण— धाराहतपल्लवानाम्—धाराभिः आहतानां पल्लवानाम् (तृ० ष० तत्पु०) हत—हन्+क्त । कादम्बम्—कदम्बस्य विकारः इस अर्थ में कदम्ब शब्द से "तस्य विकारः" सूत्र से अण् प्रत्यय होकर कादम्ब बना । फूल, फल वृक्ष के विकार ही होते हैं इसलिए 'कादम्ब' शब्द कदम्ब पुष्प वाची हुआ । अर्धोद्गतकेसरम्—अर्धमुद्गताः अर्धोद्गताः अर्धोद्गताः केसराः यस्य तत् । उद्गत—उद्+गम्+क्त । सोढुं योग्यानि सह्यानि (सह+यत्) न सह्यानि=असह्यानि (नञ् तत्पु०) । त्वया में 'विना' के योग के कारण "पृथग्विनानानाभिस्तृतीया ऽन्यतरस्याम्" से तृतीया विभक्ति हुई हैं । शिखिनाम्—शिखा अस्त्येषान्ते शिखिनस्तेषाम्, शिखा+इनि ।

विशेष—इस श्लोक में कवि ने प्रकति को वियोगोद्दीपक रूप में चित्रित किया है ।

यहाँ तुल्ययोगिता अलंकार है ।

छन्द—इन्द्रवजा है ।

प्रसंग—सीता वियोग में राम मेघगर्जना को बड़ी कठिनाई से सहते थे, इसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र
कम्पोत्तरं भीरु ! तवोपगूढम् ।
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि
मया कथाञ्चद्धनगर्जितानि ॥२८॥

अन्वय—भीरु ! यत्र पूर्वानुभूतं कम्पोत्तंर तव उपगूढम् स्मरता मया गुहाविसारीणि धनगर्जितानि कथञ्चित् अतिवाहितानि ।

शब्दार्थ—भीरु !=हे भयशीले सीते ! यत्र=जिस (पर्वत के शिखर) पर । पूर्वानुभूतं=पहले अनुभव किया गया । कम्पोत्त :=अधिक कंम्पनयुक्त ।

तवोपगूढम्=तुम्हारे (सीता के) आलिङ्गन को। स्मरता=स्मरण करते हुए। मया=मेरे (राम के) द्वारा। गुहाविसारीणि=गुफाओं से प्रतिध्वनित होने से विस्तार को प्राप्त। घनगर्जितानि=मेघगर्जनों को। कथञ्चित्=किसी प्रकार (जैसे तैसे अति कठिनाई से) अतिवाहितानि=दुःखपूर्वक सहे गये थे।

हिन्दी अनुवाद—हे भयशीले (सीते) जिस पर्वत शिखर पर पहले अनुभव किये गये, अधिक कम्पनयुक्त तुम्हारे आलिङ्गन को स्मरण करते हुए मेरे द्वारा (तुम्हारे वियोग में) गुफाओं में प्रतिध्वनित होकर वृद्धि को प्राप्त हुई मेघ की गर्जनायें जिस किसी तरह (अति कठिनाई से) सहन की गई थी।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि उस माल्यवान् पर्वत के शिखर पर पूर्वानुभूत कम्पन प्रधान तुम्हारे आलिङ्गन का स्मरण करने वाले मेरे द्वारा, वियोगकाल में वे मेघगर्जनायें, जो गुफाओं में प्रतिध्वनित होकर और अधिक बढ़ जाती थीं, बड़ी कठिनाई से ही सही गई थीं।

संस्कृत टीका—हे भीरु ! भयशीले सीते ! यत्र माल्यवतः शिखरे, पूर्वानभूतम्=संयोग समये परिचितम्, कम्पोत्तरम्=कम्पप्रधानम्, तव=सीतायाः, उपगूढमालिङ्गनम्, स्मरता=चिन्तयता मया रामेण, गुहायां विसारीणि कन्दरायां प्रतिध्वनिना प्रसारीणि घनानां मेघानां गर्जितानिघनगर्जितानि= मेघस्तनितानि, कथञ्चित्=येन केन प्रकारेणाति क्लेशेनातिवाहितानि= अतिगमितानि।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति—भयशीले सीते ! पुरा संयोगकाले तस्मिन् पर्वत शृङ्गे घनगर्जितमाकर्ण्य भयातुरया त्वयाकृतं कम्पप्रधान मालिङ्गनं चिन्तयता मया तत्रैव वियोगकाले तान्येव गुहाप्रसारीणि घनगर्जितानि काठिन्येनैव यापितानि।

व्याकरण—पूर्वम् अनुभूतम् पूर्वानुभूतम् सुप्सुपेतिसमासः। **कम्पोत्तरम्**—कम्पः उत्तरः यस्मिन् तत् कम्पोत्तरम्। स्मरता—स्मृ+लट् शतृ तृतीयैकवचन। उपगूढम्—उप+गुह+क्त। गुहाविसारीणि—गुहायां गुहासु वा विसारीणि। घनगर्जितानि—घनानां गर्जितानि घनगर्जितानि (ष० तत्पु०) **विसारिणि**—वि+सृ+णिनिः। अतिवाहितानि=अति+वह+णिच्+क्त।

विशेष—माल्यवान् पर्वत शिखर पर रहते हुए पहले राम ने मेघगर्जन से डरी हुई सीता के प्रगाढ़ आलिङ्गन के समय आनन्द का अनुभव किया था। बाद में सीता से वियुक्त होने पर मेघगर्जन के समय उन आलिङ्गनों को

स्मृति आ जाने से राम को असह्य वेदना हुई और वही मेघगर्जन जो पहले आनन्दायक था अव उन्हें अतिशय कष्टकर प्रतीत हो रहा था।

यहाँ सीता वियोग जन्य शोक में पूर्वानुभूत श्रृङ्गारात्मक आलिङ्गन का स्मरण करुण रस में किसी भी प्रकार बाधक नहीं है अपितु उद्दीपक ही है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—वर्षाकालिक कन्दली पुष्प को देख कर राम को विवाह काल का स्मरण हो आया था, इसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगा—
न्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते—
विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ॥२६॥

अन्वय—यत्र विभिन्नकोशै: नवकन्दलै: आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगात् विडम्ब्यमाना ते विवाहधूमारुणलोचनश्री: माम् अक्षिणोत्

शब्दार्थ—यत्र=जिस पर्वत शिखर पर। विभिन्नकोशै:=खिली हुई कलियों वाले। नवकन्दलै:=नवीन लाल वर्ण के कन्दली पुष्पों के साथ, आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगात्=मूसलाधार वर्षा से भीगी हुई पृथ्वी से उत्पन्न भाप के योग से। विडम्ब्यमाना=अलंकृत की जाने वाली। ते=तुम्हारे (सीता के)। विवाहधूमारुणलोचनश्री:=विवाहकालिक हवन के धुयें से लाल नेत्रों की शोभा ने। माम्=मुझ राम को। अक्षिणोत्=पीडित किया था।

हिन्दी अनुवाद—जिस पर्वत शिखर पर खिली हुई कलियों वाले नवीन (ताजे) लाल वर्ण के कन्दली पुष्पों के साथ मूसलाधार वर्षा से भीगी हुई पृथ्वी से उत्पन्न भाप के सम्बन्ध से तुम्हारे अनुकृत की जाने वाली तुम्हारे विवाह कालिक यज्ञ के धुयें से लाल नेत्रों की शोभा ने मुझ राम को (अत्यन्त) पीड़ित किया था।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि माल्यवान् पर्वत के उस शिखर पर तुम्हारे वियोग के समय वर्षाकाल में खिली हुई कलियों वाले लाल-लाल कन्दली पुष्पों के साथ धारा सम्पात वृष्टि से सिक्त पृथिवी से (उत्पन्न) वाष्प के सम्बन्ध से अनुकृत की जाने वाली, तुम्हारे विवाह काल में धुयें से

लाल वर्ण वाली नयन शोभा ने मुझे (विरह के कारण) अत्यधिक पीड़ित किया था।

तात्पर्य यह है कि विवाह के समय यज्ञाग्नि से उठने वाले धुयें से भगवती सीता के नेत्र लाल हो गये थे, ये नेत्र संयोगकाल में राम के लिए सुखद थे। वर्षाकाल में स्वभावतः लाल वर्ण के कन्दली पुष्प खिल जाते हैं, इन पुष्पों के साथ जब वर्षा जल से सिंचित पृथिवी से उत्पन्न वाष्प मिल जाता है तब वह उसी दृश्य को उपस्थित कर देता है जो कि विवाह काल में यज्ञाग्नि के धुयें से सीता के नेत्रों को अरुण कर देने वाला था। कन्दली पुष्पों के साथ वाष्प के सम्बन्ध से राम को विवाहकालीन सीता की नेत्र शोभा का स्मरण हो आया था, अतएव वे वियोगवश उस समय अधिक पीड़ित हुये थे। वियोग काल में वही नेत्रशोभा पीड़ित करने वाली बन गई थी।

वस्तुतः विडम्ब्यमाना पद से कवि का तात्पर्य यहाँ स्मर्यमाण ही है, पर स्मर्यमाण पद का प्रयोग न कर कवि ने यहाँ स्मरणालंकार को व्यङ्ग्य रखना ही उचित मान कर विडम्ब्यमाना का प्रयोग किया है।

संस्कृत टीका—यत्र-शृङ्गे, विभिन्नाः कोशाः येषान्ते तैः विभिन्नकोशैः—विकसितकुड्मलैः, नवकन्दलैः—नवानि च तानि कन्दलानि तैः=(अरुणवर्णैः) नवकन्दलीपुष्पैः, आसारः वर्षाजलधारासम्पातस्तेन सिक्तायाः उक्षितायाः क्षितेः पृथिव्याः वाष्पः तस्य योगात् सङ्गतेः—आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगात्, (हेतोः) विडम्ब्यमाना=अनुक्रियमाणा, सादृश्यवशात् स्मर्यमाणेत्यर्थः। ते=तव सीतायाः, विवाहे (कृतस्य) होमस्य धूमेन अरुणा रक्तवर्णा लोचनयोः नेत्रयोः श्रीः शोभा – विवाह धूमारुणलोचनश्रीः, माम् रामम् अक्षिणोत्—अपीडयत्।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते! यत्र पर्वत शृङ्गे विकसित मुकुलवन्ति नवकन्दलीपुष्पाणि, एवं धारासम्पातोक्षितक्षितिवाष्पञ्चावलोक्य, तव विवाहकालीनधूमारुणनेत्रशोभा संस्मृत्य तत्र वियोगकाले अहमति वियोगदुःखनन्वभवम्।

व्याकरण—आसारः—धारा सम्पात आसारः इत्यमरः। **सिक्ता**—सिच्+क्त+टाप्। **योगः**=युज्+घञ्। **अक्षिणोत्**—क्षिणु+लङ्। **विभिन्न**—वि+भिद्+क्त। **विडम्ब्यमाना**—वि+डम्ब्+यक्+मुक्+शानच्+टाप्। विवाह—वि+वह+घञ्।

स्मरणालंकार व्यङ्ग्य है, और उपमालंकार वाच्य है, उपजाति छन्द है।

प्रसंग—पम्पा सरोवर की सुन्दरता का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

> **उपान्तवानीरवनोपगूढा—**
> **न्यालक्ष्यपारिप्लव सारसानि।**
> **दूरावतीर्णा पिबतीव खेदा—**
> **दमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥३०॥**

अन्वय—उपान्तवानीरवनोपगूढानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि अमूनि पम्पासलिलानि दूरावतीर्णा दृष्टिः खेदात् पिबतीव।

शब्दार्थ—उपान्तवानीरवनोपगूढानि=समीप में ही विद्यमान बेतों के जंगलों से ढके हुए। आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि=कुछ कुछ दिखलाई पड़ने वाले चञ्चल सारसों से युक्त। अमूनि=इन। पम्पासलिलानि=पम्पा नामक सरोवर के जलों को। दूरावतीर्णा=दूर (आकाश) से उतरी हुई। दृष्टिः= दृष्टि (मुझ राम की दृष्टि)। खेदात्=खेदपूर्वक। पिबति इव=मानों पी रही है।

हिन्दी अनुवाद—(ही सीते!) पास में ही (विद्यमान) बेतों के जंगलों से ढके हुए (तथा) (दूर होने के कारण) कुछ-कुछ दिखलाई पड़ने वाले चञ्चल सारसों से युक्त इन पम्पा सरोवर के जलों को दूर (आकाश) से उतरी हुई (मेरी) दृष्टि खेदपूर्वक (कष्ट से) मानो पी रही है। अर्थात् दूर होने के कारण स्वल्प किन्तु सुन्दर दिखलाई पड़ने वाले जल को अत्युत्कण्ठा के साथ मेरी दृष्टि देख रही है और इसकी मनोहरता से मुग्ध होकर इसे छोड़ना नहीं चाहती है।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं, देवि! इन पम्पासरोवर के जलों को, जो पार्श्वस्थ वानीरबनों से आच्छादित एवं कुछ-कुछ दिखलाई पड़ने वाले चञ्चल सारस पक्षियों से युक्त हैं, मेरी दृष्टि बड़ी उत्कण्ठा के साथ देख रही है, मनोहरतावश वह इन्हें छोड़ना नहीं चाहती।

संस्कृत टीका—उपान्ते जलसमीपे तटप्रदेशे वा यानि वानीराणां वञ्जुलानां वनानि तैः पगूढानि आच्छन्नानि—उपान्तवानीरवनोपगढानि आ ईषद् लक्ष्या दृश्या, पारिप्लवाश्चञ्चलाः सारसाः एतन्नामकाः पक्षिणः येषु

तानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि अमूनि पुरोदृश्यमानानि पम्पायाः सलि- लानि जलनि पम्पासरोवरजलानि (मे रामस्य) दूरादवतीर्णा—दूरावतीर्णा— आकाशाद्भूतलं प्राप्ता दृष्टिः खेदात् अवसादात् पिवतीवात्युष्कण्ठयाऽवलोक यति न विहातु मुत्सहते इत्यर्थः।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति सीते, इमानि पम्पासरोवरजलानि अतिमनोहराणि सन्ति, इमानि पार्श्वस्थवानीरवनैराच्छादितानि अथ च ईषदालक्ष्यसारसपक्षिभि र्युक्तानि सन्ति, अतएव मनोहरतामुग्धा मे दृष्टि नेंदानीमिमानि परिहातु मिच्छति !

व्याकरण—**उपगूढानि**—उप+गुह+क्त। आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि —ईषल्लक्ष्या आलक्ष्याः (अव्ययी०) आलक्ष्याश्च पारिप्लवाश्च=आलक्ष्य- पारिप्लवाः (द्वन्द्व) आलक्ष्याश्च पारिप्लवाश्च सारसाः येषु तानि (बहु०)। दूरावतीर्णा—दूरात् अवतीर्णा (पञ्च० तत्पु०) अवतीर्णा अव+तॄ+क्त+ टाप्। दृष्टिः दृश्+क्तिन् खिद्+घञ्=खेदात् में हेत्वर्थ में पञ्चमी विभक्ति हुई है।

विशेष—यहाँ बेंत की लताओं से घिरे हुए एवं चञ्चल सारसों से युक्त पम्पासरोवर का जल इतना मनोहर प्रतीत होता है कि उससे दृष्टि हटती ही न थी। इसलिए यहाँ कवि ने एक टक उत्कण्ठापूर्वक देखने में पीने की सम्भावना की है और उसको तर्कसंगत बनाने के लिए दूर से भूमि पर उतरने के कारण उत्पन्न जो थकान उससे ही मानों राम नेत्रों से उस जल को पी रहे हैं।

लोक में प्रायः देखा जाता है कि जब कोई व्यक्ति लम्बा रास्ता चल कर आता है तो वह अत्यन्त प्यासा हो जाता है और दुःखी भी। अतः उस समय बड़ी तत्परता से पानी पोता है। उसी प्रकार दूर से उतरकर पम्पासरोवर तक दृष्टि को जाने में बड़ी थकान लग गई थी इसलिए मानो वह पानी को पी रही है।

इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—इस श्लोक में चकवा चकवी पक्षियों की प्रेम भावना का चित्रण है जिनको देखकर राम को सीता की स्मृति आ जाती थी—

अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्ना—
मन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि ।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते
मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ।।३१।।

अन्वय—प्रिये ! अत्र अन्योन्यदत्तोत्पल केसराणि अवियुक्तानि रथाङ्ग-नाम्नां द्वन्द्वानि ते दूरान्तरवर्तिना मया सस्पृहम् ईक्षितानि ।

शब्दार्थ—प्रिये !=हे प्रिये सीते । अत्र=इस पम्पासरोवर पर अन्योन्य-दत्तोत्पलकेसराणि=आपस में एक दूसरे को कमल केसर देने वाले । अवियुक्तानि=वियोग रहित । रथाङ्गनाम्नाम्=चकवा चकवी के । द्वन्द्वानि=जोड़े को । ते=तुम्हारे (सीता) से । दूरान्तवर्तिना=दूर विद्यमान । मया=मुझ राम के द्वारा । सस्पृहम्=अभिलाषा या स्नेहपूर्वक । ईक्षितानि देखे गये थे ।

हिन्दी अवनुाद—हे प्रिये सीते ! इस पम्पासरोवर पर आपस में एक दूसरे को कमल केसर देने वाले, वियोग रहित चकवा चकवी के जोड़े तुमसे दूर रहने वाले मेरे द्वारा (अत्यन्त) अभिलाषा या स्नेहपूर्वक देखे गये थे। (अर्थात् परस्पर संयुक्त चकवा चकवी को देखकर तुम्हारे साथ संयोग के क्षणों का स्मरण हो जाने के कारण उनको देखना बहुत प्रिय लगता था ।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि जब मैं तुमसे वियुक्त था, उस समय मैंने इस सरोवर पर परस्पर कमल केसर का आदान-प्रदान करने वाले चकई चकवों के संयुक्त जोड़े को बड़ी स्पृहा अर्थात् उत्कण्ठा से देखा था । तात्पर्य यह कि परस्परानुरक्त एवं अवियुक्त चक्रवाकों के जोड़ों को देखकर उस समय मुझे यह याद आ गई थी कि हम लोग भी इसी प्रकार एक दिन मिलकर प्रेम से रहते थे और अपने ग्रास का आदान-प्रदान किया करते थे, फलतः मैं उस समय उन्हें बड़ी उत्कण्ठा से देखता ही रह गया था ।

संस्कृत टीका—प्रिये ! प्रेयसि सीते अत्र पम्पासरोवरे अन्योन्यस्मै परस्पर दत्तानि समर्पितानि उत्पलानां कमलानां केसराणि किञ्जल्काः यैस्तानि अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि अवियुक्तानि परस्परं संयुक्तानि न तु वियुक्तानि रथस्याङ्गं रथाङ्गं, रथाङ्गं नाम येषां तेषां रथाङ्गनाम्नाम् चक्रवाकानां द्वन्द्वानि मिथुनानि चक्रवाकमिथुनानीत्यर्थः ते तव सीतायाः दूरान्तर्वर्तिना दूरदेशवर्तिना मया रामेण सस्पृहं साभिलाषं सस्नेहमित्यर्थः

ईक्षितान्यवलोकितानि । चक्रवाकद्वन्द्वदर्शनेन त्वामस्मार्षमिति भावार्थः ।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, प्रिये ! वियोगकालेऽत्र सरोवरे परस्परानुरक्तानि अवियुक्तानि चक्रवाकमिथुनानि पश्यन्नहं त्वामस्मार्षम्, अतएवाहमिमानि द्वन्द्वानि सस्पृहमपश्यम् ।

व्याकरण—अवियुक्तानि—न वियुक्तानि अवियुक्तानि (नञ् तत्पु०) वियुक्त—वि+युज्+क्त। रथाङ्गनाम्नाम्—रथस्य अङ्गं रथाङ्गं (ष० तत्पु०) रथाङ्गं नाम येषां तेषां (बहु०)। अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि—उत्पलानां केसराणि उत्पलकेसराणि (ष० तत्पु०) अन्योन्यस्मै दत्तानि उत्पलकेसराणि यैस्तानि (बहु०)। दूरान्तरवर्तिना—दूरम् अन्तरं दूरान्तरं (कर्म०) दूरान्तरे वर्तते यः सः दूरान्तर्वर्ती तेन। सस्पृहम्—स्पृहया सहितम् सस्पृहम् (अव्ययी०)। ईक्षितानि—ईक्ष धातु से कर्म अर्थ मे क्त प्रत्यय होकर प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंग का रूप है।

विशेष—इस श्लोक में अवियुक्तानि रथाङ्ग द्वन्द्वानि का विशेषण मात्र संयुक्तावस्था का व्यञ्जक नहीं है क्योंकि द्वन्द्व शब्द मिथुनवाची होकर स्वतः संयुक्तावस्था का बोधक है। अतः यहाँ इससे यह अर्थ प्रतीत होता है कि मेरे जैसे वियोगी नहीं अपितु सौभाग्यशाली संयोगी। इसी प्रकार सस्पृहं शब्द सीता के साथ संयुक्तावस्था का व्यञ्जक है। जिससे स्मरणालंकार व्यङ्ग्य होने के कारण अलंकार ध्वनि है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु' इस कालिदास की ही उक्ति के अनुसार वियोगी राम लताओं में सीता की भावन कर उनका आलिङ्गन करना ही चाहते थे किन्तु लक्ष्मण के द्वारा रोक दिये गये थे।" राम सीता वियोग के इन विषम क्षणों का वर्णन सीता से कर रहे हैं—

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं—
स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम् ।
त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः
सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः ॥३२॥

अन्वय—स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्रां तन्वीं च इमां तटाशोकलतां त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः साश्रुः अहं सौमित्रिणा निषिद्धः ।

शब्दार्थ—स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्=स्तनों के समान सुन्दर पुष्प गुच्छों से झुकी हुई। तन्वीं च=और पतली। इमाम्=इस। तटाशोकलताम्=किनारे की अशोक लता को। त्वत्प्राप्तिबुद्धया=तुम (सीता) मुझे मिल गई'' ऐसा समझ कर। परिरब्धुकामः=आलिङ्गन करने की इच्छा वाला। साश्रुः=आँसुओं से युक्त। अहं=मैं (राम)। सौमित्रिणा=लक्ष्मण के द्वारा। निषिद्धः=मना किया गया (रोका गया) था।

हिन्दी अनुवाद—स्तनों के समान सुन्दर पुष्प गुच्छों से झुकी हुई और पतली इस किनारे की अशोकलता को "तुम मुझे मिल गई" ऐसा समझ कर (उस लता को) आलिङ्गन करने की इच्छा वाला, आँसुओं से युक्त मैं लक्ष्मण के द्वारा मना किया गया था। अन्यथा सम्भव था कि मैं पागलों की भाँति उस अशोकलता का आलिङ्गन करता हुआ लोगों के उपहास की पात्र बनता)।

भावार्थ—अपनी वियोगस्थिति का वर्णन करते हुए, राम, सीता से कहते हैं, कि सीते! उस समय तुम्हारे वियोग में सन्तप्त हृदय मैंने, इस सरोवर तट पर खड़ी हुई और अपने मनोहर पुष्प गुच्छों से अवनत अशोकलता को, जो कि तुम्हारे ही समान तन्वीं एवं स्तोकनम्रा थी, साक्षात् तुम्हें ही समझ कर उसका आलिङ्गन करने ही वाला था किन्तु लक्ष्मण ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया था।

संस्कृत टीका—स्तनौ इवाभिरामाभ्यां पयोधरसादृशमनोहराभ्यां स्तवकाभ्यां पुष्पगुच्छाभ्यामभिनम्रामवनतां तन्वीं च दुर्बलां चेमां तटाशोकलतां तीरप्रान्ताशोकस्यलतां तव प्राप्तिरिति त्वत्प्राप्तिः तस्याः बुद्धया सीता समुपलब्धेतिधिया परिरब्धुकामः आलिङ्गितुमुत्सकः साश्रुरश्रुसहितः रुदन्नित्यर्थः अहं रामः सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिस्तेन सौमित्रिणा लक्ष्मणेन निषिद्धः निवारितः (नेयं सीता लतेति लक्ष्मणेन प्रतिबोधितः)।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते! त्वद्वियोगसन्तप्तहृदयो यदाहं पम्पासरोवरतटाशोकलतामेवातिसादृश्यात् त्वामेवाभिमन्यमानस्तामालिङ्गितुकामोऽभवम् तदा नेयं सीता अपितु लतैवेति कथयन् लक्ष्मणेनाहं प्रतिबोधितः।

व्याकरण–अशोकस्य लता अशोकलता तटे अशोकलता तटाशोकलता।

स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्—स्तनौ इवाभिरामौ स्तनाभिरामौ कर्मधारय तौ च तौ स्तवकौ ताभ्यामभिनम्रा ताम्। **त्वत्प्राप्तिबुद्धया** तव प्राप्तिस्त्वत्-प्राप्तिः तस्याः बुद्धया। **परिरब्धुकामः**—परिरब्धुं कामो यस्य सः (बहु०)। साश्रुः—अश्रुभिः सहितः इति साश्रुः। सौमित्रिणा—सुमित्रायाः अपत्य पुमान् सौमित्रिः—(सुमित्रा + इञ्) तेन। निषिद्धः—नि + सिध् + क्त।

विशेष—सीतावियोग में प्रकृति के उद्दीपक उपकरण लतादिक राम को अतिशय पीड़ित कर रहे हैं। कामभावना से चेतनाचेतन का भाव समाप्त हो जाता है, यह स्वयं मेघदूत में कालिदास ने लिखा है—

"कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु"

फलतः राम को पुष्प गुच्छ से अवनत और क्षीण लता में सीता की भ्रान्ति हो जाती है और वह आलिङ्गन के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं।

यहाँ लता में सीता की भ्रान्ति होने के कारण भ्रान्तिमान् अलंकार है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—उत्तरोत्तर उत्तर की ओर बढ़ने वाले विमान से गोदावरी के सारस समुदाय दृष्टिगत हो रहे हैं—

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां
श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो
गोदावरीसारसपंक्तयस्त्वाम् ॥३३॥

अन्वय—विमानान्तरलम्बिनीनां काञ्चनकिङ्किणीनां स्वनं श्रुत्वा खम् उत्पतन्त्य अमूः गोदावरीसारसपंक्तयः त्वां प्रत्युद्व्रजन्ति इव।

शब्दार्थ—विमानान्तरलम्बिनीनां=विमान के खुले भागों में स्थान-स्थान पर लटकने वालीं। काञ्चनकिंकिणीनाम्=स्वर्णमयी क्षुद्र घण्टियों के। स्वनम्=शब्द को। श्रुत्वा=सुन कर। खम् = आकाश की ओर। उत्पतन्त्यः=उड़ती हुई। अमूः=ये। गोदावरीसारसपंक्तयः=गोदावरी नदी के सारसों की पक्तियाँ। त्वां=तुम्हारी (सीता की)। प्रत्युद्व्रजन्ति इव= मानो अगवानी कर रही हैं।

हिन्दी अनुवाद—विमान के खुले भागों से स्थान-स्थान पर लटकने वाली स्वर्णमयी क्षुद्र घण्टियों के शब्द को सुनकर आकाश की ओर उड़ने

वाली ये गोदावरी नदी के सारसों की पंक्तियाँ (सीते !) मानो तुम्हारी अगवानी कर रही हैं।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि ये जो छोटी-छोटी स्वर्णघण्टियाँ विमान के खुले भागों से स्थान-स्थान पर लटक रही हैं, और विमान चलने से बजती हैं। इनके शब्द को सुनकर अपने समूह के कूजनध्वनि के भ्रम से, आकाश मार्ग में उड़ती हुईं ये गोदावरी तीर पर विचरण करने वालीं सारस पंक्तियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानो वे तुम्हारा स्वागत कर रही हों।

संस्कृत टीका—विमानस्य वायुयानस्यान्तरेषु अवकाशेषु लम्बिनीनां लम्बमानानां विमानान्तरलम्बिनीनाम्, काञ्चनकिंकिणीनां क्षुद्रस्वर्णघण्टिकानाम्, स्वनं शब्दं श्रुत्वा (अन्यसारसानां शब्दभ्रमात्) खमाकाशं प्रति उत्पतन्त्यः उड्डीयमानाः अमूः गोदावर्याः एतन्नाभिकायाः नद्याः सारसानां पंक्तयः सारससमूहः गोदावरीतीरविचरणशीलाः सारसराजयः त्वां—सीतां प्रत्युद् व्रजन्ति इव स्वागतार्थं पुरः आयान्तीवेत्युत्प्रेक्षा।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति यदाकाशयानावकाशेषु याः स्वर्ण क्षुद्रघण्टिका अवलम्बन्ते एवञ्च यानगत्या शब्दायन्ते एतासां ध्वनिं श्रुत्वा स्वयूथशब्दभ्रमादाकाश मुत्पतन्त्योऽमूः गोदावरीतीरविचरणशीलाः सारस-पंक्तयस्त्वां प्रत्युदगच्छन्तीव अर्थात् तव स्वागतार्थं समागच्छन्ति इव प्रतीयन्ते।

व्याकरण—**विमानान्तरलम्बिनाम्**—विमानस्यान्तरेषु लम्बन्ते यास्ता, तासाम् (तत्पु० गर्भित बहु०)। **काञ्चनकिङ्किणीनाम्**—कञ्चनस्येदं काञ्चनं—कञ्चन शब्द से अण् प्रत्यय, काञ्चनाः याः किङ्किण्यस्ताः काञ्चनकिङ्किण्यस्तासाम्। **गोदावरीसारसपंक्तयः**—गोदावर्याः सारसानां पंक्तयः (ष०-तत्पु०। **लम्बिनी**—लबि+णिनि+ङीप्। **किंकिणी**—किंकिणी क्षुद्रघण्टिका इत्यमरः। **स्वनम्**—स्वन शब्दे धातोः "स्वनहसो र्वेति अप् प्रत्ययः। **उत्पतन्त्यः** उत्+पत्+लट्+शतृ+ङीप्।

विशेष—यहाँ कवि ने विमान में स्वर्णकिङ्किणियों का उल्लेख कर जहाँ तत्कालीन समृद्धि का संकेत किया है वहीं आजकल के वायुयानों की मधुर संगीत ध्वनि का परिचय देकर यह स्पष्ट कर दिया है कि कालिदास के काल में भी भारत में वायुयान आदि वैज्ञानिक साधनों का प्रचलन था।

यहाँ किङ्किणियों के स्वर में सारसों के स्वर की भ्रान्ति होने से भ्रान्तिमान अलंकार है और क्रियोत्प्रेक्षालंकार भी है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—विमान से राम पञ्चवटी के ऊपर पहुँच गये हैं वहाँ के वृक्ष वनस्पति उन्हें पूर्व की स्मृति दिला रहे हैं—

एषा त्वया पेशलमध्ययापि
घटाम्बुसंवर्धित बाल चूता।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा
दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे ॥३४॥

अन्वय—पेशलमध्ययापि त्वया घटाम्बुसंवर्धितवालचूता उन्मुखकृष्णसारा चिरात् दृष्टा एषा पञ्चवटी मे मनः आनन्दयति।

शब्दार्थ—पेशलमध्ययापि=क्षीणकटि प्रदेश वाली होने पर भी। त्वया= तुम्हारे (सीता के) द्वारा। घटाम्बुसम्वर्द्धितबालचूता=घड़ों के जल से जिसमें छोटे-छोटे आम के पौधे बड़े किये गये थे। उन्मुखकृष्णसारा=जहाँ पर हमें देखने के लिए मृग ऊपर को मुख किये हुए हैं। चिरात्=बहुत काल के बाद। दृष्टा=देखी गई। एषा पञ्चवटी=यह पञ्चवटी। मे=मुझ राम के। मनः=मन को। आनन्दयति=आनन्द दे रही है। (अतिशय प्रिय प्रतीत होती है।

हिन्दी अनुवाद—क्षीण कटिप्रदेशवाली होने पर भी (भार ढो सकने में असमर्थ भी) तुम्हारे द्वारा घड़ों के जल से बड़े किए गये छोटे छोटे आम के पौधों वाली (तथा) (हमें देखने के लिए) ऊपर को मुख किये हुए कृष्णसार मृगों वाली, बहुत काल के बाद देखी गई यह पञ्चवटी मेरे (राम के) मन को (अब) आनन्द दे रही है। अर्थात् इस पञ्चवटी को देखकर मन आनन्द से भर रहा है।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि यह वही पञ्चवटी है जहाँ पर तुमने कृशोदरी होकर भी घड़ों से जल देकर आम्र के पौधों को सम्वर्धित किया था, यहाँ के ये कृष्णसार मृग हमारे विमान के शब्द को सुनकर हमें देखने के लिए ऊपर की ओर मुख किए खड़े हैं, इस पञ्चवटी को आज मैं बहुत दिनों के बाद देख रहा हूँ, अतः यह मेरे मन को अति प्रसन्न कर रही है।

संस्कृत टीका—पेशलमध्ययापि=क्षीणकटिप्रदेशयाऽपि त्वया=सीतया, घटाम्बुभिः संवर्धिता घटोदकैः=पोषिताः बालचूताः आम्रबालपादपाः यस्यां

सा—घटाम्बुसम्वर्धितवालचूता। उन्मुखकृष्णसारा, उन्मुखाः ऊर्ध्वाननाः कृष्णसाराः कृष्णमृगाः यस्यां सा, चिरात् बहुकालानन्तरं दृष्टाऽवलोकितैषा पञ्चवटी एतन्नामकं वनम् मे रामस्य मनः आनन्दयति आह्लादयति।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते, इयं तैव पञ्चवटी दृश्यते यत्र कृशोदरी अपि त्वं घटजलैः आम्रवालपादपान् पोषितवती। अत्रत्याः कृष्णसार-मृगा विमानध्वनिमाकर्ण्य आवयी दर्शनाय ऊर्ध्वानना भूत्वा अवलोकयन्ति, चिरादहमद्येमां पञ्चवटी मवलोकयामि, अतएवेयं मम मनः आनन्दयति।

व्याकरण—पेशलं क्षीणत्वात् सुन्दर, मध्यं कटिभागः यस्याः सा तथा **पेशलमध्यया** (बहु०) **घटाम्बुसंवर्धितबालचूताः**—घटानामम्बूनि तैः संवर्धिनाः बालचूताः यस्यां सा। संवर्धित—संम्+वृध्—णिच्+क्त। **उन्मुखकृष्ण-सारा**—उन्मुखाः कृष्णसाराः यस्यां सा (बहु०)।

विशेष—यहाँ कवि ने पेशलमध्ययापि कहकर सीता की कोमलता का तथा घटाम्वुसम्वर्द्धितवालचूता कहकर सीता के प्रकृति प्रेम का परिचय दिया है। पञ्चवटी के ये आम्रपादप जो पहले सीता के द्वारा सींचे गये थे, अतः आज वे उनके पुत्र से प्रतीत हो रहे थे इसी लिए बहुत दिनों के बाद देखी गई पञ्चवटी राम को आनन्द दे रही है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—पञ्चवटी में अनुभूत पूर्व क्षणों का स्मरण करते हुए राम सीता से कहते हैं—

अत्रानुगोदं मृगया निवृत्त—
स्तरङ्गवातेन विनीतखेदः।
रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा
स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः॥३५॥

अन्वय—अत्र अनुगोदं मृगयानिवृत्तः तरङ्गवातेन विनीत खेदः रहः त्वदु-सङ्गनिषण्णमूर्धा वानीरगृहेषु सुप्तः स्मरामि।

शब्दार्थ—अत्र=यहाँ पञ्चवटी में, अनुगोदम्=गोदावरी के समीप। मृगयानिवृत्तः=शिकार से लौटा हुआ। तरङ्गवातेन=(गोदावरी नदी की) तरङ्गों की हवा से। विनीतखेदः=परिश्रम रहित। रहः एकान्त में। त्वदु-

त्सङ्गनिषण्णमूर्धा=तुम्हारी गोद में सिर रखे हुए। वानीरगृहेषु=बेंतों के कुञ्जों में। सुप्तः=सोया हुआ। स्मरामि=स्मरण करता हूँ।

हिन्दी अनुवाद—मुझे यह स्मरण है कि यहाँ (पञ्चवटी में) गोदावरी के समीप शिकार से लौटने के बाद (नदी की) तरङ्गों की (शीतल) हवा से परिश्रम (थकान) रहित होकर मैं एकान्त में तुम्हारी गोद में सिर रखे हुए बेतों के कुञ्जों में सोया था।

भावार्थ—राम कहते हैं, सीते! पञ्चवटी को देखकर मुझे यह बात याद आ रही है कि यहीं पर एक बार मैं गोदावरी नदी के समीप, शिकार से लौटकर, तथा नदी की जलतरंगों से थकान रहित होकर, वानीर कुञ्जों में तुम्हारी गोद में सिर रखकर सोया था।

संस्कृत टीका—अत्र पञ्चवट्याम् अनुगोदम् गोदायाः गोदावरीनद्याः समीपे, मृगयायाः आखेटात् निवृत्तः परावृत्तः तरङ्गाणां गोदावर्याः वीचीनां सम्पर्केण शीतलेन वातेन वायुना, तरंगवातेन, विनीतः दूरीकृतः खेदः परिश्रमो ऽध्वश्रमः यस्य सः तादृशोऽहं रहः एकान्ते त्वदुत्सङ्गे तव क्रोडे निषण्णो मूर्धा त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा = त्वदुत्सङ्गनिहितमस्तकः वानीराणां वञ्जुलानां गृहेषु कुञ्जेषु—सुप्तः वानीरगृहेषु शयानः, इति पूर्वावस्थां स्मरामि।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते! पञ्चवटीमवलोक्य अद्याहं स्मरामि यदेकदाहमत्र मृगयातो निवृत्तः गोदावरीजलतरङ्गविनीताध्वश्रमः वानीरकुञ्जेषु त्वदुत्सङ्गे शिरो निधाय सुप्त आसम्।

व्याकरण—अनुगोदम्—गोदायाः समीपे इस विग्रह में "अनुर्यत्समया" इस सूत्र से अव्ययी भाव समास। मृगयानिवृत्तः—मृगयायाः निवृत्तः (पं० तत्पु०) नि+वृत+क्त=निवृत्तः। तरङ्गवातेन—तरङ्गाणां वातेन (ष० तत्पु०) विनीतखेदः—विनीतो खेदो यस्य सः (बहु०) विनीत—वि+नी+क्त। रहः—रह+असुन्। त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा—तव उत्सङ्गः त्वदुत्सङ्ग (ष० तत्पु०) त्वदुत्सङ्गे निषण्णो मूर्धा येन सः (बहु०) निषण्ण—नि सद्+क्त "रदाभ्यां निष्ठातोनः" से द् को भी न होकर स् को ष होने पर 'ष्टुना ष्टु' से ष्टुत्व हुआ। सुप्तः—स्वप्+क्त व को उ सम्प्रसारण होकर सुप्त बना।

विशेष—यहाँ भी राम को पञ्चवटी के अतीत के क्षण याद आ रहे हैं जहाँ रहकर उन्होंने शूर्पणखा का अङ्गभग कराया था, खरदूषण और त्रिशरा की विशाल राक्षस सेना का संहार किया था।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—अगस्त्य मुनि के आश्रम का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः
प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धिहेतो
र्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ॥३६॥

अन्वय—यो भ्रूभेदमात्रेण नहुषम् मघोनः पदात् प्रभ्रंशयाञ्चकार, आविलाम्भः परिशुद्धि हेतोः तस्य मुनेः अयं भौमः स्थानपरिग्रहः (अस्ति)।

शब्दार्थ—यः=जिसने (अगस्त ऋषि ने) भ्रूभेदमात्रेण=भ्रकुटी को टेढ़ा करने मात्र से ही। नहुषम्=नहुष नामक राजा को। मघोनः=इन्द्र के। पदात्=पदवी से। प्रभ्रंशयाञ्चकार=नीचे (पृथ्वी पर) गिरा दिया। आविलाम्भः परिशुद्धि हेतोः=मलिन जल की विशुद्धि करने वाले। तस्य मुनेः =उस अगस्त मुनि का। अयं=यह सामने दिखलाई पड़ने वाला। भौमः= भूमि पर होने वाला, स्थानपरिग्रहः=आश्रम है।

हिन्दी अनुवाद—जिस (अगस्त्य ऋषि) ने अपनी भौहों के टेढ़ी करने से ही नहुष (राजा) को इन्द्र की पदवी से (देवाधिपतित्व से)। नीचे गिरा दिया था। मालिन जल की (वर्षा ऋतु के गन्दे पानी की) शुद्धि के कारण-भूत उन मुनि (अगस्त ऋषि) का यह भूमि पर स्थित आश्रम है। (अर्थात् स्वर्ग में तो उनका आश्रम है ही भूमि पर भी है।

भावार्थ—अगस्त्य मुनि के महत्व को बतलाते हुये राम सीता से कहते हैं कि जिस मुनि ने केवल अपनी भ्रकुटी को टेढ़ा करने मात्र से ही नहुष् नाम के राजा (ययाति के पिता) को इन्द्र पदवी से भ्रष्ट कर दिया था, मलिन जल के विशुद्धि कारक उन मुनि अगस्त्य का यह भूलोकगत आश्रम है अर्थात् यह सामने दिखलाई पड़ने वाला आश्रम अगस्त्य मुनि का है।

संस्कृत टीका—यः अगस्त्यमुनिः भ्रवोर्भेदः भ्रूभेदः=भ्रूभेद एव भ्रूभेद मात्रं तेन भ्रूभेदं मात्रेण=भ्रकुटिभेदेनैव न तु केनाप्यन्येनोपायेन, नहुषम् एतन्नामक (ययाति पितरम्) राजानं नहुषं, मघोनः इन्द्रस्य पदात् स्थानात्=

इन्द्रत्वात्, प्रभ्रंशयाञ्चकार=भ्रंशयामास। **आविलं च** तदम्भः आविलाम्भः मलिनं जलं वर्षाकालिकमित्यर्थः तस्य परिशुद्धेः स्वच्छताया हेतोः कारणभूतस्य आविलम्भः परिशुद्धि हेतोः तस्य मुनेरगस्त्यस्य अयं पुरोदृश्यमानः भौमः=भूम सम्बन्धी स्थानपरिग्रहः=आश्रमः। अस्ति इति शेषः।

संस्कृत सरलार्थ—योऽगस्त्यमुनिः स्वतपोमहिम्ना केवलं भ्रूभेदनैव इन्द्रपदवी मारुढं नहुष नामक राजानं देवाधिराजपदात् भ्रंशयामास, यश्चागस्त्य मुनिः वर्षाकालिकमलिनजलविशुद्धिकारकोऽपि विख्यातः अस्ति, तस्यैव मुनेरयं भौमः आश्रमः परिदृश्यते।

व्याकरण—भ्रूभेदमात्रेण=भ्रुवोः भेदः भ्रूभेदः भ्रूभेद एवेति भ्रूभेदमात्रम् तेन **भ्रूभेदमात्रेण**=भ्रूभेद शब्द से मात्रच् प्रत्यय। **परिशुद्धिहेतोः**=परिशुद्धेः हेतुः तस्य। (ष० तत्पु०)। **भौमः**=भूमौ भवः भौमः=भूमि शब्द से भावार्थक अण् प्रत्यय। स्थान परिग्रहः=परिगृह्यते इति परिग्रहः स्थानमेव परिग्रह इति **स्थानपरिग्रहः**। आविलञ्च तदम्भः आविलाम्भः, कलुषोऽनच्छआविल इत्यमरः। परिशुद्धि—परि+शुध्+क्तिन्, **परिग्रहः**=परि+ग्रह्+अप्।

विशेष—ब्राह्मण वृत्रासुर के हत्या के पाप से इन्द्रदेव अपने पद से च्युत हो गये थे, अतः देवताओं की प्रार्थना पर राजा नहुष को इन्द्र के पद पर आरूढ़ करा दिया गया था, अतः प्रभुता के मद में आकर जब राजा नहुष सप्तर्षियों द्वारा उठाई गई पालकी में चढ़ कर इन्द्राणी के पास जा रहे थे तब उन्होंने अपने पैर से सकेत करते हुये अगस्त्य मुनि से कहा सर्प सर्प अर्थात् जल्दी चलो इस पर क्रुद्ध होकर मुनि ने उन्हें सर्प होने का शाप दिया था फलतः राजा स्वर्ग से गिर कर अजगर साँप बन गये थे, इसी पौराणिक कथा की ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है।

वर्षा काल का मलिन जल, शरद् ऋतु में अगस्त्य तारा के उदय होने पर निर्मल हो जाता है अतएव यहाँ अगस्त्य मुनि को आविलाम्भः परिशुद्धि हेतु कहा गया है। श्लोक में 'भौम' शब्द के प्रयोग से यह सूचित होता है कि अगस्त्य मुनि का एक आश्रम स्वर्ग में भी हैं और यहाँ यह भूलोक का आश्रम भी था। श्लोक में प्रभ्रंशयाञ्चकार वस्तुतः एक ही पद है इसे विभक्त करके दिखाना जैसा कि श्लोक में है, व्याकरण नियम विरुद्ध है।

इन्द्रवज्रा छन्द है।

प्रसङ्ग—अगस्त्य ऋषि के आश्रम में होने वाले यज्ञों की ओर संकेत करते हुए राम सीता से कहते हैं—

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्य कोर्ते—
स्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः
समश्नुते मे लघिमानमात्मा ॥३७॥

अन्वय—अनिन्द्यकीर्तेः तस्य आक्रान्तविमानमार्गं हविर्गन्धि, इदं त्रेताग्नि-धूमाग्रं घ्रात्वा रजोविमुक्तः में आत्मा लघिमानम् समश्नुते ।

शब्दार्थ—अनिन्द्यकीर्तेः=प्रशंसनीय यश वाले । तस्य=उन अगस्त्य ऋषि के । आक्रान्तविमानमार्गम्=विमान के मार्ग अर्थात् आकाश में व्याप्त । हविर्गन्धि=हवन सामग्री (हव्य) की सुगन्धि वाले । इदं=इस । त्रेताग्निधूमाग्रम्=तीन अग्नियों (प्राजापत्य, आहवनीय और गार्हपत्य) के अग्रभाग को । घ्रात्वा=सूँघ कर, रजोविमुक्तः=रजोगुण से रहित । मे=मुझ राम की । आत्मा=अन्तः करण । लघिमानम्=लघुता को (शुद्धभाव को) । समश्नुते=प्राप्त कर रही है ।

हिन्दी अनुवाद—प्रशंसनीय यश वाले उन अगस्त्य ऋषि के विमान के मार्ग अर्थात् आकाश में व्याप्त हवन सामग्री की सुगन्धि से युक्त, इस त्रेताग्नि (प्राजापत्य, गार्हपत्य और आहवनीय अग्नियों) के धुयें के अग्रभाग को सूँघ कर, रजोगुण से रहित मेरी आत्मा लघुता (शुद्धता) को प्राप्त कर रही है ।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि अगस्त्य मुनि के आश्रम में होने वाले यज्ञ के धुंये को, जो कि आकाश तक व्याप्त है तथा हवनीय पदार्थों की सुगन्धि से सुगन्धित हैं, सूंघकर रजोगुण से रहित होकर मेरा अन्तःकरण हल्केपन का अनुभव कर रहा है, अर्थात् सत्वगुणाधिक्य के कारण परम शान्ति का अनुभव कर रहा है ।

संस्कृत व्याख्या—अनिन्द्या कीर्ति र्यशो यस्य तस्य अनिन्द्यकीर्तेः= प्रशंसनीययशसः, तस्यागस्त्यमुनेः, आक्रान्तः विमानस्य मार्गः येन तत् आक्रान्त-विमानमार्गम्=गगनपर्यन्तप्रसृत मित्यर्थः, हवेर्गन्धः अस्ति यस्मिन् तत् हवि-र्गन्धि=हव्यगन्धियुक्तम्, इदं त्रेता त्रयोऽग्नयः प्राजापत्यगार्हपत्याहवनीया अग्नयः तस्य त्रेताग्नेः धूमाग्रं धूमस्याग्रभागं, घ्रात्वा=आघ्राय रजसो गुणात्

रजोगुणप्रभावात् विमुक्तः विशेषेण मुक्तः, मे रामस्यात्मा ऽन्तःकरणं लघिमानं लघुत्वगुणत्वं शुद्धतामित्यर्थः समश्नुते=प्राप्नोति ।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति, देवि ! अगस्त्यमुनियज्ञोत्थमाकाशव्याप्तं हविर्गन्धि त्रेताग्निधूमाग्रं घ्रात्वा रजोगुणरहितं मेऽन्तःकरणमिदानीं सत्वगुणाधिक्यात् परमशान्ति मनुभवति ।

व्याकरण—**त्रेताग्निधूमाग्रम्**—त्रेता चासौ अग्निः त्रेताग्निः, त्रेताग्नेः धूमस्य अग्रम् । **अनिन्द्यकीर्तेः**—निन्दितुं योग्या निन्द्या न निन्द्या अनिन्द्या (नञ् तत्पु०) अनिन्द्या कीर्तिर्यस्य तस्य (बहु०) । **आक्रान्तविमानमार्गम्**—विमानस्य मार्गः विमानमार्गः आक्रान्तः विमानमार्गः येन तत् (तत्पु० गर्भित बहु०) **हविर्गन्धि**—हविषः गन्धः हविर्गन्धः हविर्गन्धः अस्यास्तीति हविर्गन्धि हविर्गन्ध+इनि । **रजोविमुक्तः**—रजसो विमुक्तः । विमुक्तः—वि+मुच्+क्त लघिमानम्—लघु+इमनिच् ।

विशेष—प्राचीन काल में भारत में यज्ञों का वैज्ञानिक महत्व था । "यज्ञाद्भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभवः" इस कथन के अनुसार यज्ञ से मेघ की उत्पत्ति और उस मेघ द्वारा जलवृष्टि से अन्नोत्पत्ति होती थी जिससे प्रजा का पालन होता था ।

यज्ञ की सामग्री में नाना प्रकार के कीटाणु विनाशक द्रव्यों का मिश्रण होता था जिससे वातावरण में शुद्धता आती है । यज्ञ के सुगन्धित पवित्र धूम से मन के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं ।

राक्षसों की नगरी लङ्का से लौटते हुए राम का अन्तःकरण अगस्त्य ऋषि के आश्रम में हो रहे यज्ञ के धूम्र को सूँघने से काम विकार से दूर हो रहा है । इस प्रकार उनकी आत्मा में शुद्धि का उद्रेक सतोगुण की उत्पत्ति का परिचायक है । क्योंकि सतोगुण का स्वरूप सांख्य शास्त्र में इस प्रकार बताया गया है ।

"सत्वं लघु प्रकाशक मिष्टम्"

छन्द—उपजाति

प्रसंग—शातकर्णि ऋषि के तपोवन में सरोवर का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

एतन्मुने र्मानिनि शातकर्णेः
पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ।

आभाति पर्यन्तवनं विदूरा—
न्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुविम्बम् ॥३८॥

अन्वय—मानिनि। शातकर्णेः मुनेः पञ्चाप्सरो नाम पर्यन्तवनं एतत् विहारवारि विदूरात् मेघान्तरालक्ष्यं इन्दुविम्बम् इव आभाति।

शब्दार्थ—मानिनि != हे मान करने वाली (सीते)। शातकर्णेः =शात-कर्णि नाम वाले। मुनेः =ऋषि का। पञ्चाप्सरः=पञ्चाप्सरस नाम वाला। पर्यन्तवनं=चारों ओर वन से घिरा हुआ। एतत्=यह। विहारवारि= क्रीड़ा सरोवर। विदूरात्=दूर होने के कारण। मेधान्तरालक्ष्यम्=बादलों के बीच में कुछ कुछ दिखलाई पड़ने वाले। इन्दुविम्बम्=चन्द्र बिम्ब के। इव=समान। आभाति=शोभित हो रहा हैं।

हिन्दी अनुवाद—हे मान करने वाली सीते। शातकर्णि नामक ऋषि का "पञ्चाप्सर" नाम वाला चारों ओर वन से घिरा हुआ यह क्रीड़ा सरोवर, दूर होने के कारण (दूर से) बादलों के बीच कुछ-कुछ दिखलाई पड़ने वाले चन्द्र बिम्ब के समान शोभित हो रहा है।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि सीते ! यह शातकर्णि नामक मुनि का पञ्चाप्सरस् नाम क्रीडासरोवर है जो कि चारों ओर से वनों से घिरा हुआ है, दूर से देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मेघों के बीच चन्द्रबिम्ब दृष्टिगत हो रहा है।

संस्कृत टीका—मानिनि ! हे मानवति सीते। शातकर्णे रेतन्नामकस्य मुनेः ऋषेः पञ्चाप्सरं नाम='पञ्चाप्सर नाम्ना प्रसिद्धम्, पर्यन्तेषु चतुर्दिक्षु वनानि यस्य तत् पर्यन्तवनं वनावृतमित्यर्थः एतत् पुरोदृश्यमानं विहारवारि क्रीडासरः, विदूरात्=दूराद्, मेघानां वारिवाहानामन्तरे मध्ये आ ईषत् लक्ष्यं दृश्यमानमिति मेघान्तरालक्ष्यं मेघमध्ये ईषद्दृश्यम् इन्दोः चन्द्रस्य बिम्बमिति इन्दुबिम्बं चन्द्रबिम्बमिवाभाति शोभते।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति हे मानवति सीते, पुरोदृश्यमानमिदं शातकर्णिमुनेः पञ्चाप्सरो नाम्ना विख्यातं क्रीडासरः अस्ति, इदमस्ति पर्यन्तेषु वनैरूपगूढम् ? अत एवेदं मेघमध्यगत मत एवेषदालक्ष्यचन्द्रमण्डलमिव शोभते।

व्याकरण—पञ्चाप्सरः=पञ्च अप्सरसः यस्मिन् तत् (बहु)। विहारि-वारि—विहाराय वारि (तत्पु०)। पर्यन्तवनम्—पर्यन्तेषु वनानि यस्य

तत् (तत्पु० गर्भित बहु०) । मेघान्तरालक्ष्यम्—मेघानामन्तरं मेघान्तरम् (ष० तत्पु) ईषद् लक्ष्यम् आलक्ष्यं, मेघानामन्तरे आलक्ष्यमिति मेघान्तरालक्ष्यम् "आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ" इस अमर कोश की उक्ति के अनुसार 'आ' ईषत् (किञ्चित्) अर्थवाची है। इन्दु विम्बम्—इन्दोः विम्बम् (ष० तत्पु०)।

विशेष—पौराणिक मान्यतानुसार शातकर्णि ऋषि के आश्रम में एक ऐसा तालाब था जिसमें पाँच अप्सरायें नित्य विहार किया करती थीं जो इन्द्र के द्वारा शातकर्णि ऋषि के तप को भंग करने के लिए भेजी गई थीं। इसी लिए उस तालाब का नाम पञ्चाप्सर प्रसिद्ध हो गया था।

इस श्लोक में उपमा अलंकार है।

छन्द—इन्द्रवज्रा।

प्रसंग—इस शातकर्णि ऋषि के तप को भंग करने के लिए इन्द्र ने पाँच अप्सराओं को भेजा था इसका वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्ति—
श्चरन्मृगः सार्धमृषिर्मघोना।
समाधिभीतेन किलोपनीतः
पञ्चाप्सरो यौवनकूटबन्धम् ॥३९॥

अन्वय—पुरा दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिः मृगैः सार्धं चरन् स ऋषिः समाधिभीतेन मघोना पञ्चासरो यौवनकूटबन्धम् उपनीतः किल।

शब्दार्थ—पुरा = पहले। दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिः=केवल कुशों के अङ्कुरों का आहार करने वाले। मृगैः=हरिणों के। सार्धम्=साथ। चरन्—चरते हुए। स ऋषिः=वह मुनि शातकर्णि। समाधिभीतेन=तपः समाधि से डरे हुए। मघोना=इन्द्र के द्वारा। पञ्चाप्सरः=पाँच अप्सराओं के। यौवनकूटबन्धम्=यौवन रूपी कपट बन्धन (कपट जाल) में। उपनीतः=(फंसा) दिया। किल =यह प्रसिद्ध है।

हिन्दी अनुवाद—पूर्वकाल में केवल कुशों के अङ्कुरों को खाने वाले, हरिणों के साथ चरते हुए उन शातकर्णि ऋषि को (उनकी) समाधि से डरे हुए इन्द्र ने पाँच अप्सराओं के यौवन रूपी मायावी जाल में फँसा दिया ऐसा प्रसिद्ध है (अर्थात् इन्द्र ने पाँच अप्सराओं के द्वारा ऋषि को तपोभ्रष्ट कर दिया)।

भावार्थ—राम कहते हैं सीते ! शातकर्णि उत्कृष्ट तपस्वी थे, वे केवल दर्भाङ्कुरों को खाकर जीवित रहते थे और मृगों के साथ विचरण करते थे, उनके इस तप से भयभीत होकर इन्द्र ने पाँच अप्सराओं को भेज कर उन्हें तपोभ्रष्ट कर दिया था।

संस्कृत टीका—पुरा=पूर्वकाले, दर्भाणां कुशानामङ्कुराणि एव वृत्तिः आहारो यस्य सः दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिः=कुशाङ्कुरमात्राहारः, मृगैः हरिणैः सार्धं सह चरन् कुशाङ्कुराणि भक्षयन् इत्यर्थः स प्रसिद्धः ऋषिः शातकर्णिः समाधिभीतेन तश्चरणभीतेन मघोना इन्द्रेण पञ्चानामप्सरसां यौवनमिति पञ्चाप्सरोयौवनम् तदेव कूटवन्धः तम् पञ्चाप्सरोयौवनकूटवन्धम्=पञ्चाप्सरस्तारुण्यकपटयन्त्वम् प्रापितः किल। यथा कश्चित् स्वच्छन्दचारी मृगो व्याधकल्पिते कपटयन्त्रे, आवद्धो भवति तथैवायम् ऋषिः मघोना प्रेषितानां पञ्चाप्सरसां तारुण्यात्मके कूटयन्त्रे, आवद्धो वभूवेति सरलार्थः।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति सीते ! अयं शातकर्णि नामा मुनिरत्युत्कृष्ट तपस्वी आसीत्, मृगैःसह विचरन्नयं केवलं दर्भाङ्कुरभक्षणेनैव जीवतिस्म, परं यस्य तपः समाधिभयभीत इन्द्रः पञ्च अप्सरसः संप्रेष्य एनं मुनिं तपोभ्रष्टं कृतवान्।

व्याकरण—दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिः—दर्भाणाम् अङ्कुराणि दर्भाङ्कुराणि तन्मात्रं वृत्तिः यस्य सः (तत्पु० बहु०) चरन्—चर्+शतृ। मृगैः में सार्धं के योग में "साकं सार्धं समं योगेऽपि" नियमानुसार 'सहयुक्तेऽप्रधाने' से तृतीया विभक्ति हुई है। समाधिभीतेन—समाधेः भीतः समाधिभीतः तेन (तत्पु०) समाधेः में—"भीतार्थानां भयहेतुः" से पञ्चमी विभक्ति हुई है। उपनीतः—उप+नी क्त। पञ्चाप्सरोयौवनकूटवन्धम्—पञ्चानाम् अप्सरसां यौवनं पञ्चाप्सरोयौवनम् "तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च" सूत्र से उत्तरपद समास।

विशेष—ऋषि शातकर्णि ने मृगों की भांति केवल कुश के अङ्कुरों को खाकर उग्रतप किया था जिससे इन्द्र भयभीत हो गया और उसने ऋषि को तप से भ्रष्ट करने के लिए पाँच अप्सराओं को भेजकर उन्हें तपोभ्रष्ट कर दिया था।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—शातकर्णि आश्रम के जलमहलों का सङ्गीत पुष्पक विमान के ऊपरी कक्षों में प्रतिध्वनि होता था इसका वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः
प्रसक्तसंगीतमृदङ्गघोषः ।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः
क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥४०॥

अन्वय—अन्तर्हितसौधभाजः तस्य अयं प्रसक्तसंगीत मृदङ्गघोषः वियद्गतः (सन्) पुष्पक चन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ।

शब्दार्थ—अन्तर्हितसौधभाजः=पञ्चाप्सर के जल के मध्य (बने हुए) महलों में निवास करने वाले। तस्य=उन शातकर्णि ऋषि का। अयं=यह। प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः=सङ्गीत में प्रयुक्त मृदङ्ग का निरन्तर होने वाला शब्द। वियद्गतः=आकाश तक पहुँचकर। पुष्पकचन्द्रशालाः=पुष्पक विमान के चन्द्रभवनों (शिरोग्रहों) को। क्षणं=क्षण भर के लिए। प्रतिश्रुन्मुखरा=: प्रतिध्वनियों से शब्दायमान। करोति=कर रहा है।

हिन्दी अनुवाद—(पञ्चाप्सर के जल के) मध्य में (बने हुए) महलों में निवास करने वाले शातकर्णि ऋषि का सङ्गीत में प्रयुक्त मृदङ्ग का निरन्तर होने वाला शब्द आकाश तक पहुँच कर (इस) पुष्पक विमान के चन्द्रभवनों को क्षण भर के लिए शब्दायमान कर रहा है।

भावार्थ—राम, सीता से कहते हैं कि देवि ! यह शातकर्णि नामक मुनि पञ्चाप्सर के जल के मध्य स्थित प्रासाद में रहता है। इसके निरन्तर चलने वाले सङ्गीत में प्रयुक्त मृदङ्ग का शब्द आकाशगामी होकर, मेरे पुष्पक विमान के ऊपरी भाग के शिरोगृहों को भी प्रतिध्वनियों से मुखरित कर रहा है।

संस्कृत व्याकरण—अन्तर्हितं सौधं भजति तस्यान्तर्हितसौधभाजः पञ्चाप्सरसो जलान्तर्वर्तिहर्म्याश्रितस्य तस्य शातकर्णिमुनेः अयम् प्रसक्त सङ्गीतमृदङ्गघोषः= सन्ततसङ्गीतमुरजशब्दः, वियद्गतः=वियति आकाशे गतः प्राप्तः सन् पुष्पकस्य पुष्पकनाम्नो विमानस्य चन्द्रशालाः शीर्षप्रकोष्ठान्, क्षणं स्वल्पकालम् प्रतिश्रुद्भिः प्रतिध्वानैर्मुखराः ध्वनन्तीः करोति विधत्ते ।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति देवि पञ्चाप्सरोजलान्तर्गत-प्रासादनिवासिनस्तस्य शातकर्णेः निरन्तरं श्रूयमाणः प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः आकाशगामी सन् पुष्पकविमानस्य शिरोगृहाणि अपि प्रतिध्वनिभिः मुखराणि करोति।

व्याकरण—अन्तर्हितसौधभाजः—अन्तर्हितं सौध भजति तस्य (बहु०) प्रसक्तसङ्गीतमृदङ्गघोषः—प्रसक्तं सङ्गीतमिति प्रसक्तसङ्गीतम् मृदङ्गस्य-घोषः मृदङ्गघोषः प्रसक्तसङ्गीते मृदङ्गघोषः (सप्त० तत्पु०) वियद्गतः—वियति गतः (सप्त० तत्पु०)। पुष्पकचन्द्रशालाः—पुष्पकस्य चन्द्रशालाः ताः, (ष० तत्पु०) चन्द्र शाला ऊपरी प्रकोष्ठ को कहा जाता है—"चन्द्रशाला शिरोगृहम्" अमरकोश के अनुसार। सुधा अस्यास्तीति सौधः, सौधोऽस्त्री राजसदनम्।

विशेष—शातकर्णि ऋषि के आश्रम में अप्सराओं के निवास करने के कारण विलासितामय जलमहलों में निरन्तर सङ्गीत होता रहता था। सङ्गीत मे मृदङ्ग उस समय का सर्वप्रिय वाद्य था।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—सुतीक्ष्ण की कठिन तपस्या का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

> **हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां**
> **मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः।**
> **असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी,**
> **नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः॥४१॥**

अन्वय—नाम्ना सुतीक्ष्णः चरितेन दान्तः असौ अपरः तपस्वी एधवतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः (सन्) तपति।

शब्दार्थ—नाम्ना सुतीक्ष्णः=सुतीक्ष्ण नाम वाले। चरितेन=चरित्र (जीवनचर्या) से। दान्तः=जितेन्द्रिय। असौ=यह। अपरः=दूसरा। तपस्वी =ऋषि। एधवताम्=इन्धन से युक्त। चतुर्णां हविर्भुजाम=चारों अग्नियों के (चार दिशाओं में जलती हुई अग्नियों के)। मध्ये=बीच में। ललाटन्तप-सप्तसप्तिः=मस्तक को तप्त करने वाले सूर्य से युक्त होकर। तपति=तपस्या कर रहा है।

हिन्दी अनुवाद—सुतीक्ष्ण नाम वाले (या स्वभाव से तीक्ष्ण होने पर भी) चरित्र में इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किए हुए ये दूसरे मुनि (सुतीक्ष्ण) ईंधन वाली चार अग्नियों (चारों दिशाओं में जलने वाली अग्नियों) के मध्य में (तथा) मस्तक को तप्त कर देने वाले सूर्य से युक्त हो (पञ्चाग्नि) तप कर रहे हैं।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि सुतीक्ष्ण नामक जितेन्द्रिय तथा तपः क्लेश को सहन करने वाले यह दूसरे तपस्वी पंचाग्नि तप कर रहे हैं। चारों दिशाओं में ईधन से प्रदीप्त चार पवित्र अग्नियों को स्थापित कर उनके बीच में बैठ कर तथा मध्याह्न काल में सूर्य की ओर अभिमुख होकर तप करते हैं।

संस्कृत टीका—नाम्नाऽभिधानेन सुतीक्ष्णः सुतीक्ष्णनामकः चरितेनाचरणेन, दान्तः=जितेन्द्रियः न तु यथार्थनामा सुष्ठु तीक्ष्णः कोपनः अपितु सौम्यः स्वभावेन, असौ पुरोदृश्यमानः अपरस्तपस्वी द्वितीयः तापसः, एधवताम्= इन्धनवतां, चतुर्णां=चतुःसंख्याकानाम् हवींषि भुञ्जन्तीति=हविर्भुजः तेषाम् हविर्भुजामग्नीनां मध्ये चतुर्दिक्षु प्रज्ज्वलितानामग्नीनां मध्ये स्थितः इति शेषः। ललाटं तपतीति ललाटन्तपः पञ्चमोऽग्निरूपः ललाटन्तपः सप्तसप्तिः सूर्यः यस्यासौ ललाटन्तपसप्तसप्तिः सन् तपति पञ्चाग्नितपश्चरतीति सारार्थः।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति, सीते! सुतीक्ष्णनामकः तपः क्लेशसहोऽयमन्यस्तपस्वी चतुर्षु दिक्षु ईन्धनप्रदीप्तान् चतुरोऽग्नीन् संस्थाप्य तन्मध्यगतः मध्याह्न सूर्याभिमुखो भूत्वा पंचाग्नितपस्तपति।

व्याकरण—हवींषि भुञ्जन्तीति हविर्भुजः तेषां हविर्भुजाम् (तत्पु०)। एधवताम्—एध शब्द लकड़ी के लिए संस्कृत में प्रयुक्त हुआ है जैसी कि अमरकोश की उक्ति है—"काष्ठं दार्विन्धनं एधः"। ललाटन्तपसप्तसप्तिः= ललाटं तपति (द्वितीया तत्पु०) मस्तक को तपाने वाला अर्थात् सूर्य। सप्तसप्तयः यस्य सः सप्तसप्तिः (बहु०) (सात घोड़ों वाले अर्थात् सूर्य)। ललाटन्तपः सप्तसप्तिः यस्य सः (बहु०)। यहाँ यद्यपि आपाततः ललाटन्तपः भी सूर्यवाची और सप्तसप्तिः भी सूर्यवाची प्रतीत होता है किन्तु यथार्थतया ललाटन्तप शब्द "मस्तक को तपाने वाला" इस अन्वर्थमात्र का बोधक है। इस प्रकार ललाटन्तप शब्द पंचम अग्नि रूप अर्थ का व्यंजक है।

नाम्ना सुतीक्ष्णः=अत्र 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्, इति तृतीया। **दान्तः**=दमु+क्त, **तपस्वी**=तपस् शब्दात् विनि प्रत्ययः। **एधवताम्**=एधाः सन्ति येषु ते तेषाम्। अत्र मादुपधायाश्चेत्यादिना मतुपो मकारस्य वकारः। **ललाटन्तपः**=ललाटं तपतीति विग्रहे खश् प्रत्यये मुमागमे च कृते ललाटन्तपः। **तपस्यति**=अत्र तपस् शब्दात् क्यङ् प्रत्ययः, तपस्येति समुदायस्य धातुत्वे, तपः 'परस्मैपदं चेति परस्मैपदे लटि रूपम्।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में सुतीक्ष्ण के पंचाग्नितप का वर्णन किया गया है। पंचाग्नि तप में चार दिशाओं में चार अग्नियाँ जलाई जाती हैं और पाँचवीं अग्नि के रूप में सूर्य माना जाता है। "पंचमस्तपनो यथा" शिशुपाल वध का यह वाक्य प्रमाणभूत है। कवि ने ललाटन्तप शब्द में ताप रूप अग्नि-धर्म को सूर्य के साथ युक्त कर स्पष्टतः सूर्य की पंचम अग्नि के रूप में स्थापना की है अन्यथा ललाटन्तप और सप्तसप्ति दोनों ही पद सूर्य अर्थ व्यंजक होने के कारण पुनरुक्ति दोषाधायक बन जायेंगे।

"नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः" में जो सुतीक्ष्ण (शीघ्र कुपित होने वाला) है वह दान्त (सौम्य) कैसे हो सकता है यह आपाततः विरोध आभासित होता है किन्तु सुतीक्ष्ण नाम होने पर भी चरित्र से सौम्य या इन्द्रियजयी थे इस प्रकार अर्थ करने पर परिहार हो जाता है अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है। जो मुनि की उत्कृष्टता में श्रीवृद्धि करता है।

छन्द—उपजाति।

प्रसङ्ग—देवाङ्गनायें अपने हाव भावों से सुतीक्ष्ण को तपोभ्रष्ट नहीं कर सकीं इसका वर्णन राम सीता से करते हैं—

अमुं सहासप्रहितेक्षणानि
व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं
सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि ॥४२॥

अन्वय—सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि सुराङ्गनाविभ्रम-चेष्टितानि जनितेन्द्रशंकं अमुं विकर्तुं अलं न (बभूवुः इति शेषः)

शब्दार्थ—सहासप्रहितेक्षणानि=मुस्कराहट के साथ डाले गये कटाक्षों

वाली। व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि=जिनमें किसी बहाने से करधनी के कुछ भाग (कटि) को (खोलकर) दिखलाया गया था। सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि= देवस्त्रियों (अप्सराओं) की विलासयुक्त चेष्टायें (हावभाव)। जनितेन्द्र-शङ्कम्=इन्द्र को शंकालु (भययुक्त) बनाने वाले। अमुं=इन ऋषि सुतीक्ष्ण को। विकर्तुम्=खण्डित(तपोभ्रष्ट) करने में। अलं न=समर्थ नहीं हो सकीं।

हिन्दी अनुवाद—सहास किए गए कटाक्षों वालीं किसी बहाने से करधनी के बन्धन स्थल को कुछ-कुछ दिखाने वालीं, देवस्त्रियों की विलासयुक्त चेष्टायें (हावभाव) इन्द्र को (भी) भयभीत करने वाले इन ऋषि सुतीक्ष्ण को तपो-भ्रष्ट करने में समर्थ न हो सकीं।

भावार्थ—राम, भगवती सीता से कहते हैं कि इन सुतीक्ष्ण नामक तपस्वी ने अपनी तपस्या से इन्द्र को भी सशङ्कित कर दिया था, फलतः इन्द्र के द्वारा भेजी गईं अप्सराओं ने, इन मुनि को तपोभ्रष्ट करने के लिये, यद्यपि सहास कटाक्षों द्वारा एवं सव्याज कटिस्थल प्रदर्शन आदि के द्वारा चेष्टायें कीं पर उनके ये हावभाव इन मुनि को तपोभ्रष्ट न कर सके।

संस्कृत टीका—हसनं हासः हासेन सहितं सहासं, सहासं यथा स्यात्तथा प्रहितानि ईक्षणानि येषु तानि सहासप्रहितेक्षणानि, हास्यपूर्वकं प्रेरितलोच-नानि, व्याजेन अपदेशेन अर्धसंदर्शिताः ईषत्प्रकटीकृताः मेखलाः रशनाः येषु तानि=व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि, सुराणा मङ्गनाः सुरांगनाः देवांगनाः तासां विभ्रमा एव चेष्टितानि सुरांगनाविभ्रमचेष्टितानि—अप्सरोविलासचेष्टि-तानि, जनिता इन्द्रस्य शङ्का येन तम् —जनितेन्द्रशङ्कम्=समुत्पादितेन्द्रभयम्, अमुम्=सुतीक्ष्णनामकं तपस्विनम्, विकर्तुम्=तपोभ्रष्टं कर्तुम्=न अलम्= न समर्थानि बभूवुः।

संस्कृत सरलार्थ—राम. कथयति, सीते ! अस्य तपस्विनस्तपसा भय-भीतेन देवेन्द्रेण प्रेरिता अप्सरसोऽपि स्वविलासचेष्टाभि रेनं तापस स्खलयितुं न समर्थाः बभूवुः।

व्याकरण—सहासप्रहितेक्षणानि—हासेन सहितमिति सहासं (अव्ययी०) सहासं प्रहितानि ईक्षणानि येषु तानि (बहु०)। व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि— व्याजेन अर्द्ध सन्दर्शिता मेखला येषु तानि (तत्पु० गर्भित बहु०)। ये दोनों ही शब्द विभ्रमचेष्टितानि के विशेषण है। 'अर्ध' शब्द आधे और अंशमात्र के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है जैसा कि विश्वकोष में कहा गया है—"पुंस्यर्धोऽर्ध

समेंऽशके" । यहाँ अंश (ईषत्) अर्थ में अर्ध शब्द का प्रयोग ही अभीष्ट है। विकर्तुम्—वि + कृ + तुमुन् । जनितेन्द्रशंकम्—जनिता इन्द्रस्य शङ्का येन तम् (बहु०)। सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि—सुराणामङ्गनाः सुराङ्गनाः (ष० तत्पु०) सुराङ्गनानां विभ्रमा एव चेष्टितानि (उपपद तत्पु०)।

विशेष—सुतीक्ष्ण मुनि की उग्र तपस्या से भयभीत इन्द्र के द्वारा प्रेषित अप्सराएँ कामोद्दीपक अनेक चेष्टाएँ करके एवं अपने अङ्गों को अर्द्धनग्न दिखाकर भी सुतीक्ष्ण को तपोभ्रष्ट न कर सकीं।

यहाँ प्रथम और द्वितीय चरण में तुकान्तता होने के कारण चन्द्रालोककार के अनुसार स्फुटानुप्रास अलंकार है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—'सुतीक्ष्ण ऋषि ने अपनी दाहिनी भुजा उठाकर नभगामी राम का स्वागत (अभिवादन) किया' इस बात का वर्णन सीता से करते हुए राम कह रहे हैं—

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां
कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः
सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते ॥४३॥

अन्वय—ऊर्ध्वबाहुः एषः अक्षमालावलयं मृगाणां कण्डयितारं कुशसूचिलाव सव्येतरं भुजं मे सभाजने इतः प्राध्वं प्रयुङ्क्ते।

शब्दार्थ—ऊर्ध्वबाहुः=ऊपर को उठी हुई भुजा वाले। एषः=ये सुतीक्ष्ण ऋषि। अक्षमालावलयम्=अक्षमाला (जपमाला) रूपी कङ्कन वाली। मृगाणां=हरिणों को। कण्डूयितारं=खुजलाने वाली। कुशसूचिलावम्=कुशों के अग्रभाग को तोड़ने वाली। सव्येतरं=दाहिनी। भुजम्=भुजा को। मे=मेरे (राम के)। सभाजने=स्वागत में। इतः प्राध्वम्=इस ओर (मेरे निमित्त)। प्रयुङ्क्ते=उठा रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—ऊपर को उठी हुई भुजा वाले ये सुतीक्ष्ण ऋषि अक्षमाला रूपी कङ्कण से युक्त, हरिणों को खुजली करने वाली (एवम्) कुशों की नोक (अग्रभाग) को तोड़ने वाली (अपनी) दाहिनी भुजा को मेरे स्वागतार्थ इस ओर उठा रहे हैं। अर्थात् दाहिना हाथ ऊपर उठाकर मेरा स्वागत कर रहे हैं।

भावार्थ—सुतीक्ष्ण ऋषि अपनी भुजायें ऊपर उठाये हुए तप कर रहे थे। वे इन्हीं हाथों से वन्य मृगों को खुजलाया करते थे, वे अपने इन्हीं हाथों से कुशों को भी तोड़ते थे, राम इस तपस्वी ऋषि को देखकर सीता से कहते हैं, देवि ! यह ऋषि अपनी दाहिनो भुजा को ऊपर उठाकर हमारा स्वागत कर रहे हैं।

संस्कृत टीका—ऊर्ध्वं बाहुः यस्य सः ऊर्ध्वबाहुः=उपरिभुजः, एषः सुतीक्ष्णो मुनिः, अक्षमाला जपमाला सा एव वलयं कङ्कणं यस्य तमक्षमाला-वलयम् अक्षमाल्यकङ्कणम्, मृगाणां हरिणानां कण्डूयितारं कण्डूविनोदकम्, कुशानां दर्भाणां सूचयः तीक्ष्णाग्रभागास्ताः लुनातीति तम् कुशसूचिलावं, दर्भाग्रभागच्छेदकम्, सव्यादितरं सव्येतरं दक्षिणं भुजं बाहुं मे मम रामस्य सभाजने सम्माननिमित्ते इतः इतोमुखं प्राध्वं प्रकृतानुकूलबन्धं प्रयुङ्क्ते प्रकुरुते।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते ! ऊर्ध्ववाहुरयं पुरोवर्तमानः सुतीक्ष्ण नामको मुनिः अक्षमालाधारकं मृगाणां कण्डूयितारं कुशच्छेदकं स्वकीयं दक्षिणं वाहुं मम सम्माननिमित्तं मदभिमुखं प्रयुङ्ते।

व्याकरण—**अक्षमालावलयम्**—अक्षाणां माला (ष० तत्पु०) सा एव वलयं यस्य तम् (बहु०) अक्षमाला 'जपमाला' अर्थवाची है। **कण्डूयितारम्**—'कण्डञ्' गात्रविघर्षणे धातु से "ण्वुलतृचौ" सूत्र से तृच् प्रत्यय हुआ है। जिससे कण्डूयितृ रूप वना द्वितीया एकवचन में कण्डूयितारं बनता है। **कुश सूचिलावम्**—कुशानाम् सूचयः कुशसूचयस्ताः लुनातीति कुशसूचिलावः तम् (उपपद तत्पु०) यहाँ 'लूञ्' छेदने धातु से 'कर्मण्यण' सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है। **ऊर्ध्वबाहुः**—ऊर्ध्वं बाहुः यस्य सः वहु०) **सव्येतरम्**—सव्यादितरम् (पञ्चमी तत्पु०) **सभाजने**—सभाज+ल्युट् (अन्) सप्त० एकवचन। **प्राध्वम्**—यह एक अव्यय शब्द है जो अनुकूलार्थवाचो है—"आनुकूल्यार्थकं प्राध्वम्" इत्यमरः। **इतः**—इदम् शब्द से तसि प्रत्यय।

विशेष—यहाँ सुतीक्ष्ण मुनि को अनेक विशेषताओं का एकत्र संक्षेपेण कथन है जैसे—अक्षमालावलय से जप तप की प्रधानता, मृगो के कण्डूयन से प्राणियों में दयाभाव, कुशों को या कुशाग्र को काटने से कार्यक्षमता तथा दक्षिण भुजा को उठाकर राम का स्वागत करने में लोक व्यवहार पटुता आदि गुणों का दर्शन होता है।

अक्षमालावलय एवं कुशसूचि में रूपकालंकार है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—सुतीक्ष्ण ऋषि राम द्वारा किये गये प्रणाम को शिर हिलाकर स्वीकार करते है इसी भाव का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष
कम्पेन किञ्चित् प्रतिगृह्य मूर्ध्नः।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां
पुनः सहस्रार्चिषि सन्निधत्ते ॥४४॥

अन्वय—एष वाचंयमत्वात् मम प्रणतिं किञ्चित् मूर्ध्नः कम्पेन प्रतिगृह्य विमानव्यवधानमुक्तां दृष्टिं पुनः सहस्रार्चिषि सन्निधत्ते।

शब्दार्थ—एषः=यह सुतीक्ष्ण मुनि। वाचंयमत्वात्=मौन व्रत धारण करने के कारण। मम=राम के। प्रणतिम्=प्रणाम को। किञ्चित्=कुछ। मूर्ध्नः=शिर के। कम्पेन=हिलाने से। प्रतिगृह्य=स्वीकार कर। विमान व्यवधानमुक्तां=पुष्पक विमान के मध्य में आ जाने से उत्पन्न व्यवधान से मुक्त हुई। दृष्टिम्=दृष्टि को। पुनः=फिर से। सहस्रार्चिषि=सूर्य में। सन्निधत्ते=लगा रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—यह सुतीक्ष्ण मुनि मौन व्रत धारण करने के कारण मेरे (राम के) प्रणाम को कुछ शिर हिलाने से स्वीकार कर पुष्पक विमान जन्य व्यवधान से मुक्त हुई दृष्टि को फिर से सूर्य में लगा रहे हैं।

भावार्थ—राम कहते हे कि हे वैदेहि ! यह सुतीक्ष्ण नामक मुनि, मौन व्रत धारण कर तप करते हैं, अतएव मेरे द्वारा किये गये प्रणाम को, कुछ शिर हिलाकर स्वीकार करके, विमान के बीच में आ जाने के कारण उत्पन्न हुये व्यवधान से मुक्त हुई अपनी दृष्टि को पुनः सूर्य में लगा रहे हैं।

संस्कृत टीका—एष, सुतीक्ष्णो मुनिः वाचंयमत्वात्=मौनव्रतधारणात्, मम रामस्य प्रणतिं प्रणामं किञ्चित् ईषत्, मूर्ध्नः शिरसः कम्पेन धूननेन प्रतिगृह्य स्वीकृत्य विमानेन पुष्पकविमानेन व्यवधानमन्तरायः तस्मात् मुक्तामन्तरायरहितां बाधारहितामित्यर्थः दृष्टिं नेत्रं पुनः, भूयः सहस्रार्चिषि सूर्ये सन्निधत्ते=सम्यक् प्रवर्तयति।

संस्कृत सरलार्थ —सुतीक्ष्णनामकं मुनिं निर्दिशन् रामः सीतां कथयति, वैदेहि ! ऋषिरयं मौन मवलम्ब्य तपस्तपति, अत एव मत्कृतप्रणामं किञ्चित् शिरः कम्पेनैव स्वीकृत्य, विमानागमनसंजातव्यवधानमुक्ता स्वकीयां दृष्टिम् पुनरपि भगवति सूर्ये प्रतियति ।

व्याकरण —वाचंयमत्वात्—वाचं यच्छतीति वाचंयमः । वाच् उपपद यमु उपरमे धातु से "वाचियमो व्रते" सूत्र से खच् प्रत्यय हुआ एवं मुम् का निपात होकर वाचंयमः बना भाव अर्थ में त्व प्रत्यय (तस्य भावस्त्वतलौ सूत्र से) पञ्च० एकवचन का रूप है । प्रणतिम् --प्र+नम्+क्तिन् । प्रतिगृह्य —प्रति+ग्रह+क्त्वा—ल्यप् । विमानव्यवधानमुक्ताम्—विमानेन व्यवधानं (तृ० तत्पु०) तस्मात् मुक्ता ताम् (ष० तत्पु) । सहस्रार्चिषि—सहस्रम् अर्चींषि यस्य स तस्मिन् (बहु०) सन्निधत्ते —सम्+नि+धा+लट् (आत्मनेपदी) त ।

विशेष --सुतीक्ष्ण ऋषि निरन्तर सूर्य में दृष्टि स्थिर कर तपश्चरण करते थे। राम के पुष्पक विमान के आकाश में आ जाने से उनके दृष्टिमार्ग में व्यवधान हो गया था किन्तु उस विमान के आगे चले जाने पर पुनः दृष्टि के सूर्य मार्ग में विघ्नरहित हो जाने से वे फिर से उस सूर्य में अपनी दृष्टि को स्थिर कर तपस्या करने लगे, यह भाव यहाँ प्रतिपाद्य है ।

छन्द —उपजाति ।

प्रसंग—राम सीता से शरभङ्ग ऋषि के आगे आने वाले तपोवन के सम्बन्ध में बतलाते हुए कहते हैं—

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्न
स्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः ।
चिराय सन्तर्प्य समिद्भिरग्निं
यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ॥४५॥

अन्वय—शरण्यं पावनं अदः तपोवनं आहिताग्नेः शरभङ्गनाम्नः (अस्ति) यः चिराय समिद्भिः अग्निं सन्तर्प्य मन्त्रपूतां तनुम् अपि अहौषीत् ।

शब्दार्थ—शरण्यं=शरण देने वाला। पावनं=पवित्र। अदः=यह । तपोवनम्=तपोवन । आहिताग्नेः=अग्निहोत्र करने वाले। शरभङ्गनाम्नः= शरभङ्ग नामक ऋषि का (अस्ति=है) यः=जिन शरभङ्ग ऋषि ने। चिराय=

बहुत काल तक। समिद्भिः=समिधाओं (लकड़ियों) से। अग्निम्=अग्निहोत्र की आग को। सन्तर्प्य=सन्तुष्ट कर। मन्त्रपूताम्=मन्त्रों से पवित्र हुए अपने। तनुम् अपि=शरीर को भी। अहौषीत्=हवन कर दिया था।

हिन्दी अनुवाद—शरण देने वाला पवित्र यह तपोवन अग्निहोत्र व्रत का पालन करने वाले शरभङ्ग नामक ऋषि का है, जिन्होंने बहुत समय तक समिधाओं से अग्नि को सन्तुष्ट कर (यज्ञ करके) मन्त्रों से पवित्र हुए अपने शरीर को भी (बाद में) हवन कर दिया था।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं, देवि! यह आगे आने वाला शरणद एवं पवित्र तपोवन शरभङ्ग नामक ऋषि का है, जो कि नित्य अग्नि होत्र करने वाले थे। इन्होंने बहुत समय तक समिधाओं से अग्नि को सन्तृप्त कर अन्त में अपने पवित्र शरीर को भी अग्नि को समर्पित कर दिया था।

संस्कृत टीका—शरण्यं=रक्षणे समर्थं, पावनं=पवित्रमदः पुरोदृश्यमानं इदं तपोवनं तपःस्थानम् आहिता अग्नयो येन तस्याहिताग्नेः गृहीताग्निहोत्र व्रतिनः शरभङ्गोनाम यस्य तस्य शरभङ्ग एतन्नाम्नः ऋषेः अस्ति। यः ऋषिः चिराय बहुकालं यावत्, अग्निं वह्निम् समिद्भिरिन्धनैः सन्तर्प्य तर्पयित्वा मन्त्रैः पूतामिति मन्त्रपूतां ऋग्वेदादीनां मन्त्रैः पवित्रां शुद्धां वा तनुमपि स्व-शरीरमपि अहौषीत् अग्नौ हुतवान्।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति, देवि। इद पुरोवर्तमानं परम-पवित्रं शरणदं तपोवनं शरभङ्गनामकस्याग्निहोत्रिणः अस्ति। यो हि बहुकालं यावत् हवनीयकाष्ठैरग्निं तर्पयित्वा अन्ते स्वकीयं पवित्रं शरीरमप्यग्नौ हुतवान्।

व्याकरण—शरण्यम्—शरणे साधु इस अर्थ में शरण शब्द से "तत्र साधुः" सूत्र से यत् प्रत्यय। तपोवनम्—तपसो वनं तपोवनम् (ष० तत्पु०)। आहिताग्नेः—आहिताः अग्नयः येन सः तस्य (बहु०)। शरभङ्गनाम्नः—शरभङ्गो नाम यस्य तस्य (बहु०)। सन्तर्प्य—सं+तृप्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्)। मन्त्रपूतां—मन्त्रैः पूताम् (तृ० तत्पु०)। अहौषीत्—हु धातु से लुङ् लकार प्र०/पु० एक व०।

विशेष—शरभङ्ग ऋषि ने अग्निहोत्र व्रत धारण किया था। अग्निहोत्र व्रत धारण करने वाला व्यक्ति नियमित रूप से तीनों काल की सन्ध्याओं में हवन करता है।

तीन अग्नियाँ होती हैं—१. दक्षिणाग्नि, २. गार्हपत्याग्नि एवं ३.

आहवनीयाग्नि। शरभङ्ग ऋषि ने अग्निहोत्र करते हुए ही अपने शरीर का त्याग कर दिया था इसलिए यह प्रसिद्धि हुई कि उन्होंने अपने शरीर का भी हवन कर दिया था।

यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

छन्द—उपजाति।

प्रसंग—शरभङ्ग ऋषि के आश्रम की प्रशंसा करते हुए राम सीता से कहते हैं—

छाया विनीताध्वपरिश्रमेषु
भूयिष्ठसम्भाव्य फलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या
स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ॥४६॥

अन्वय—अधुना तस्य अतिथीनां सपर्या छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसम्भाव्यफलेषु अमीषु सुपुत्रेषु इव पादपेषु स्थिता।

शब्दार्थ—अधुना=इस समय (शरभंग ऋषि के अभाव में भी) तस्य= उन ऋषि के। अतिथीनां=अभ्यागतों की। सपर्या=पूजा अतिथि सत्कार। छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु=छाया के द्वारा मार्ग के परिश्रम को दूर करने वाले। भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु=बहुत श्लाघनीय फलों वाले। अमीषु=इन (दिखाई पड़ने वाले)। सुपुत्रेषु इव=सुपुत्रों के समान। पादपेषु=वृक्षों पर। स्थिता=निर्भर है।

हिन्दी अनुवाद—इस समय उन शरभंग ऋषि के अतिथियों का अतिथि सत्कार (का भार) छाया से मार्ग के श्रम का हरण करने वाले, अत्यन्त श्लाघनीय फलों वाले इन सुपुत्रों के समान वृक्षों पर निर्भर है अर्थात् पिता के उत्तरदायित्व को जिस प्रकार सुपुत्र वहन करते हैं उसी प्रकार ये वृक्ष अतिथि सत्कार का उत्तरदायित्व निभा रहे हैं।

भावार्थ—शरभङ्ग ऋषि के तपोवन का महत्त्व बतलाते हुए राम सीता से कहते हैं कि आज भी भरभङ्ग ऋषि के अभाव में भी, इस तपोवन के वृक्ष, जिनको उन्होंने आरोपित एवं सम्वर्धित किया था, अतिथि सत्कार का भार उसी प्रकार वहन करते हैं जैसे सुपुत्र अपने पिता के उत्तरदायित्व को वहन करते हैं।

संस्कृत टीका—अधुना साम्प्रतं शरभङ्गनामकस्य ऋषेरभावे तस्य ऋषेः, अतिथीनामभ्यागतानां सपर्या पूजाऽतिथिसत्कारः छायाभिरपनीतो दूरीकृतोऽध्वपरिश्रमः मार्गश्रमो यैस्तेषु छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु, भूयिष्ठानि संभाव्यानि फलानि येषान्तेषु भूयिष्ठसम्भाव्यफलेषु प्रचुरश्लाघ्यफलेषु, अमीषु पुरोदृश्यमानेषु सुपुत्रेष्विव सुतनेयष्विव पादपेषु वृक्षेषु स्थिता विद्यमानाऽस्ति ।

संस्कृत सरलार्थ—शरभङ्गतपोवनमहत्त्वं निर्दिशन् रामः सीतां कथयति, देवि ! साम्प्रतमपि तस्य मुनेरभावेऽपि, तस्य तपोवनेऽस्मिन् अतिथिसत्कारोऽत्रत्यैस्तैः पादपैः ये तेनारोपिताः सम्बर्द्धिताश्चासन्, पूर्ववदेव छायादानेन प्रचुरफलदानेन च तथैव विधीयते, यथा सुपुत्राः स्वपितुरुत्तरदायित्वं निर्वाहयन्ति ।

व्याकरण—**छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु**=छायाभिः विनीतः (तृ० तत्पु०) अध्वनः परिश्रमः (ष० तत्पु०) यैस्तेषु (बहु०) । विनीतः—वि+नी+क्त । **भूयिष्ठसम्भाव्यफलेषु**—भूयिष्ठानि सम्भाव्यानि फलानि येषान्तेषु (बहु०) । अतिथीनाम्—अविद्यमाना तिथिर्येषान्ते अतिथयः तेषाम् (नञ् बहु०) सपर्या —अमरकोष के—"पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्याऽर्चार्हणाः समाः" इस उक्ति के अनुसार पूजा अर्थवाची है । सुपुत्रेषु—शोभनाः पुत्राः सुपुत्राः तेषु (प्रादि समास) । स्थिता—स्था+क्त+टाप् ।

विशेष—शरभंग ऋषि के आश्रम वृक्ष अपनी छाया मधुर फलों के द्वारा अतिथियों का सत्कार कर सुपुत्रवत् आचरण कर रहे हैं । अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति के अनुसार एक यज्ञ है जो नित्यकर्म के रूप में गृहस्थों को करना धर्म के रूप में माना गया है । मनुस्मृति में पंचमहायज्ञों के अन्तर्गत इसकी गणना करते हुए लिखा गया है—

> **अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।**
> **होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥** (मनु० ३/७६)

इस श्लोक में उपमालंकार एवं उपजाति छन्द है ।

प्रसंग—उन्मत्त सांड़ के समान चित्रकूट का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

> **धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ**
> **शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः ।**

बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षु—
र्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ॥४७॥

अन्वय—बन्धुरगात्रि धारास्वनोद्‌गारिदरीमुखः शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः असौ चित्रकूटः दृप्तः ककुद्मान् इव मे चक्षुः बध्नाति।

शब्दार्थ—बन्धुरगात्रि ! हे नतोन्नत अङ्गावयवों वाली सीते ! धारास्वनोद्‌गारिदरीमुखः=झरनों की (कलकल) ध्वनियों से मुखरित गुफाओं के अग्रभाग वाला। पक्ष में—निरन्तर गुफा के समान मुख से शब्द करने वाला। शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः=शिखरों के अग्रभाग में मेघरूपी प्रवक्रीडा जन्य कीचड़ से युक्त, पक्ष में सींगों के अग्रभाग में आसक्त मेघसदृश कीचड़ वाला। असौ=यह। चित्रकूटः=चित्रकूट पर्वत। दृप्तः=उन्मत्त। ककुद्मान्=सांड़। इव=समान। मे=राम के। चक्षुः=नेत्र को। बध्नाति=आकृष्ट कर रहा है।

हिन्दी अनुवाद—हे नतोन्नत अङ्गों वाली सीते ! निर्झर धाराओं की (कलकल) ध्वनियों से मुखरित गुफा रूपी मुख वाला और भूमि के खोदने से बैल के सींग पर लग जाने वाली कीचड़ के समान, अपने शिखर पर लगे हुए बादल से युक्त यह चित्रकूट पर्वत, निरन्तर गुफा के समान मुख से डकारता हुआ, सींगों के अग्रभाग में लगी मेघसदृश कीचड़ से युक्त उन्मत्त सांड़ के समान मुझ राम की दृष्टि को (अपनी ओर) आकृष्ट कर रहा है।

भावार्थ—प्रस्तुत श्लोक में चित्रकूट उपमेय और बैल उपमान है। चित्रकूट के शिखर पर लगा हुआ बादल बैल के सींग पर लगी हुई उस कीचड़ के समान है जो कि उसके द्वारा भूमि को सींग से उखाड़ने में उसके सींग पर लग गई है। चित्रकूट की गुफाओं से निर्झर धाराओं के शब्द निकलते हैं और यह बैल भी गुफा सदृश अपने मुख से निरन्तर डंकारता रहता है, अतः यहाँ चित्रकूट की उन्मत्त सांड़ से उपमा दी गई है। राम कहते हैं कि यह चित्रकूट मदोद्धत सांड़ के समान मेरी दृष्टि को आकृष्ट कर रहा है।

संस्कृत टीका—धारास्वनोद्‌गारिदरीमुखः—निर्झरधाराशब्दोद्‌गारिकन्दरमुखः नैरन्तर्यशब्दोद्‌गारिकन्दरवदनो वा, शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः—पर्वतशिखराग्रसंसक्तमेघवप्रक्रीडासंलग्नपङ्कः विषाणाग्रसंसक्तमेघवप्रक्रीडासंलग्नपङ्को वा, असौ चित्रकूटः चित्रकूट नामकः पर्वत विशेषः हे बन्धुरगात्रि—

नतोन्नताङ्गि सीते दृप्तः दर्पान्वितः ककुद्मान् इव वृषभ इव मे—मम, चक्षुः =लोचनम्, वध्नाति, स्वाभिमुख माकर्षति।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति नतोन्नताङ्गि मनोहरगात्रि सीते ! चित्रकूटोऽयं, यत्र शिखराग्रे वप्रपङ्क इव मेघः संसक्तोऽस्ति, यत्र च दर्यः निर्झरधाराशब्देन प्रतिध्वनिताः वर्तन्ते, दर्पान्वितः वृषभ इव मम लोचने स्वाभिमुख माकर्षति।

व्याकरण—बन्धुरगात्रि !—बन्धुराणि गात्राणि यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, बन्धुर शब्द आनुपातिक औचित्यानुसार उन्नताऽऽनत अर्थवाची है जैसा कि अमर कोश में लिखा है—"बन्धुरं तन्नताऽऽनतम्"। धारास्वनोद्गारिदरीमुखः—धाराणां स्वनः तं धारास्वनमुद्गिरतीति धारास्वनोद्गारि दरी एव मुखं दरीमुखं अथवा दरीणां मुखं अग्रभाग एव मुखं धारास्वानोद्गारिदरीमुखं यस्य सः (बहु०) चित्रकूट पक्ष में। ककुद्मान् पक्ष में—धारया नैरन्तर्येण स्वनमुद्गिरतीति धारास्वनोद्गारि (तृ० तत्पु०) दरी इव मुखं यस्य सः दरीमुखः (बहु०) धारास्वनोद्गारिदरीमुखं यस्य सः (वहु))। उद्गारि—उद् +गॄ (निगरणार्थक)+णिनि। श्रृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः—श्रृङ्गस्य अग्रम् श्रृङ्गाग्रम् (ष० तत्पु०) तस्मिन लग्नः (सप्त० तत्पु०) अम्बु ददातीति अम्बुदः (उपपद समास) श्रृङ्गाग्रलग्नः अम्बुद एव वप्रपङ्को यस्य सः (बहु०) (चित्रकूट पक्ष में)। अम्बुदः अम्बु+दा+कः। ककुद्मान् पक्ष में—श्रृङ्गस्याग्रे लग्नः अम्बुद इव वप्रस्य पङ्को यस्य सः (तत्पु० गर्भित बहु० समास) चित्रकूट—चित्राणि कूटानि यस्य सः (बहु०) ककुद्मान—ककुद् +मतुप्। ककुद् शब्द बैल या सांड़ के स्कन्ध पर विद्यमान ठिठौरी को कहते हैं, वह साड़ के स्कन्ध पर विशाल रूप में होने के कारण उसे ककुद्मान् कहा जाता है।

विशेष - कवि ने यहाँ चित्रकूट को सांड़ के समान वर्णित किया है। वप्र शब्द हाथियों और सांड़ों की उत्खात क्रीड़ा अर्थ में प्रसिद्ध है। स्वयं कालिदास ने मेघ को हाथी के समान बताते हुए लिखा है—

"वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श"

(पूर्वमेघ)

इस श्लोक में चित्रकूट के पक्ष में रूपक एवं ककुद्मान् के पक्ष में उपमालंकार है। इस प्रकार दोनो (उपमा व रूपक) अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है।

छन्द—इन्द्रवज्रा ।

प्रसंग—चित्रकूट की मन्दाकिनी नदी का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा
सरिद् विदूरान्तरभावतन्वी ।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे
मुक्तावलीकण्ठगतेव भूमिः ॥४८॥

अन्वय—प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा विदूरान्तरभावतन्वी एषा मन्दाकिनी सरित् नगोपकण्ठे भूमेः कण्ठगता मुक्तावली इव भाति ।

शब्दार्थ—प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा=निर्मल और मन्द प्रवाह वाली। विदूरान्तरभावतन्वी=दूर होने के कारण पतली-सी दीखने वाली । एषा=यह । मन्दाकिनी=मन्दाकिनी नामिका । सरित्=नदी । नगोपकण्ठे=पर्वत के समीप (निचले भाग में) वहने वाली । भूमे.=पृथ्वी के । कण्ठगता=गले में विद्यमान । मुक्तावली इव =मौक्तिक माला के समान । भाति=सुशोभित हो रही है ।

हिन्दी अनुवाद—निर्मल और मन्द प्रवाह वाली, दूर होने के कारण पतली सी दिखाई पड़ने वाली यह मन्दाकिनी पर्वत के समीप (निचले भाग में बहने के कारण) पृथ्वी के गले में मोतियों की माला-सी शोभित हो रही है ।

भावार्थ—चित्रकूट पर प्रवहमाना मन्दाकिनी नदो की ओर संकेत करते हुए राम सीता से कहते हैं, देवि ! यह सरित्, जिसका प्रवाह निर्मल जल पूर्ण एवं मन्दगतिशील है, तथा जो कि दूर होने के कारण एक पतली रेखा-सी जान पड़ती है, चित्रकूट पर्वत के समीप पृथिवी नायिका के गले में पड़ी मौक्तिक माला के समान प्रतीत होती है।

संस्कृत टीका—प्रसन्नः स्तिमितश्च प्रवाहो यस्याः सा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा निर्मलमन्दप्रवाहशीला, विदूरं च तदन्तरं विदूरान्तरं तस्य भावः तस्मात् तन्वीति विदूरान्तरभावतन्वी विप्रकृष्टावकाशभावात्सूक्ष्मा, एषा पुरो दृश्यमानेयं मन्दाकिनी एतन्नामधेया सरित्-नदी मन्दाकिनीनदीत्यर्थः नगस्य चित्रकूटपर्वस्योपकण्ठेऽधोभागे निम्नभागे वा समीपे वा सत्वात् भूमेः पृथिव्याः कण्ठे गता कण्ठगता, ग्रीवास्थिता, मुक्तावली मौक्तिकस्रक् इव भाति सुशोभते ।

संस्कृत सरलार्थ—चित्रकूटगतां मन्दाकिनीं नदीं निर्दिशन् रामः सीतां कथयति, देवि ! मन्दाकिनीयं यस्याः प्रवाहः निर्मलः मन्दगतिशीलश्चास्ति तथा च विप्रकृष्टावकाशवशाद् या सूक्ष्मजलरेखेव प्रतिभाति, नगोपकण्ठगता सती भूमेः मौक्तिकस्रगिवाभाति ।

व्याकरण—प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा—प्रसन्नः स्तिमितश्च प्रवाहो यस्याः सा (बहु०) । प्रसन्नः—प+सद्+क्त । विदूरान्तर भावतन्वी विशेषेण दूरं विदूरं, विदूरं च तदन्तरमिति विदूरान्तरं (कर्म०) विदूरान्तरस्य भावः तस्मात् (ष० तत्पु०) विदूरान्तरभावात् तन्वी इति (पञ्च० तत्पु०) । नगोपकण्ठे—न गच्छती तिनगः (नञ् समास) नगस्य उपकण्ठे इति नगोपकण्ठे । कण्ठं गता इति (द्विती० तत्पु०) कण्ठगता ।

विशेष—चित्रकूट में मन्दाकिनी नामक नदी अत्यन्त पवित्र मानी गई है । चित्रकूट पर्वत के निचले भाग में बहने के कारण कवि ने इसमें पृथ्वी के कण्ठ में विद्यमान मोतियों की माला के रूप में सम्भावना की है, इसीलिए यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है । चित्रकूट में पृथ्वी के शिर और उसके निम्न भाग में कण्ठ का आरोप व्यङ्ग्य है । यहाँ उपजाति छन्द है ।

प्रसंग—चित्रकूट के समीपस्थ तमालवृक्ष के पत्ते से पहले राम ने सीता का कर्णाभूषण बनाया था, इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः
प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य ।
यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी,
मयावतंसः परिकल्पितस्ते ॥४९॥

अन्वय—अनुगिरं सुजात अयं तमालः यस्य सुगन्धि प्रवालम् आदाय मया ते युवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी अवतंसः परिकल्पितः ।

शब्दार्थ—अनुगिरम्=चित्रकूट पर्वत के समीप । सुजातः=सुन्दरता के साथ उत्पन्न । अयं तमालः=यह तमाल वृक्ष (है) । यस्य=जिस तमाल वृक्ष के । सुगन्धि=सुगन्धित । पल्लवं=कोपल को । आदाय=लेकर । मया=मेरे (राम के) द्वारा । ते=तुम्हारे (सीता के) यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी=यव (जौ) के अंकुर के समान पीले कपोल में शोभित होने वाला । अवतंसः =कर्ण का आभूषण । परिकल्पितः=बनाया गया था ।

हिन्दी अनुवाद—चित्रकूट पर्वत के समीप उत्पन्न यह सुन्दर तमाल वृक्ष (है) जिसके सुगन्धित पल्लव (कोपल) के लेकर मैंने तुम्हारे (सीता के) जौ के अङ्कुर के समान पीले कपोल में शोभित होने वाला कान का आभूषण बनाया था।

भावार्थ—चित्रकूट पर्वत के समीप ही उगे हुए एक सुन्दर तमाल वृक्ष की ओर संकेत करते हुये राम सीता से कहते हैं कि यह वही तमाल वृक्ष है, जिसके सुगन्धित पल्लव को लेकर मैंने तुम्हारे यवाङ्कुर (सदृश ईषत् पाण्डुवर्ण कपोल पर शोभित होने वाला कर्णभूषण बनाया था।

संस्कृत टीका—गिरेः समीपे इति अनुगिरम्, चित्रकूटपर्वतसमीपे सुजातः =शोभनजन्मसम्पन्नः, अयं पुरो दृश्यमानः तमालः तापिच्छतरुरस्ति, यस्य तमालस्य सुगन्धि शोभनगन्धसम्पन्नं प्रवालम् पल्लवम् (नवजातदलं) आदाय गृहीत्वा मया रामेण ते सीतायाः यवाङ्कुराः यवधान्यविशेषप्ररोहाः तदवत् आपाण्डुः समन्तात् पीतवर्णः यः कपोलः तस्मिन् शोभते तच्छीलः यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी अवतंसः=कर्णालंकारः परिकल्पितः रचितः।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति देवि ! अयं स एव तमालवृक्षः शोभते यस्य सुगन्धिमत् पल्लव मादाय मया ते यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभि कर्णभूषणं पूर्वं विरचितम्।

व्याकरण—**अनुगिरं**—'गिरेः समीपे' इस अर्थ में 'अव्ययं विभक्ति समीपसमृद्धि०" आदि सूत्र के द्वारा अनु के साथ अव्ययीभाव समास। **सुजातः**—शोभनं जात जन्म यस्य सः (बहु०) **सुगन्धि**—शोभनो गन्धो यस्य तत् (बहु०)। **आदाय**--आङ्+दा+क्त्वा (ल्यप्)। **यवाङ्कुराऽपाण्डुकपोलशोभि**—यवानाम् अङ्कुराः यवाङ्कुराः (ष० तत्पु०) आ (समन्तात्) पाण्डुः आपाण्डु (अव्ययी) आपाण्डुश्चासौ कपोलः आपाण्डुकपोलः (कर्मधा०) यवाङ्कुराः इवापाण्डु कपोलः (उपमानानि सामान्य वचनैः) सूत्र से कर्मधारय समास, आपाण्डुकपोले शोभते तच्छीलः। कपोलशोभी में "ताच्छील्ये णिनिः सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ है। उपपद समास। परिकल्पितः—परि+क्लृप्+क्तः।

विशेष—वनवास के दिनों में राम सीता का प्राकृतिक लता पुष्प आदि से शृंगार किया करते थे, इससे कालिदास के काल में स्त्रियों की शृङ्गारप्रियता का ज्ञान प्राप्त होता है। अथवा जंगल में रहने के कारण अत्यन्त क्षीणकाय होने से मुख पीतवर्ण था। यह भी आभासित होता है।

यहाँ उपमालंकार है। एवं उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

प्रसंग—अत्रिमुनि के तपोवन की विशेषता बतलाते हुए राम सीता से कहते हैं—

अनिग्रहत्रासविनीतसत्व—
मपुष्पलिङ्गात्फलबन्धि वृक्षम्।
वनं तपःसाधनमेतदत्रे—
राविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् ॥५०॥

अन्वय—अनिग्रहत्रासविनीतसत्वम् अपुष्पलिङ्गात् फलबन्धि वृक्षम् आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् अत्रेः तपसः साधनम् एतत् वनं (दृश्यते)।

शब्दार्थ—अनिग्रहत्रासविनीतसत्वम्=दण्डभय के बिना भी विनयशील जन्तुओं वाला। अपुष्पलिङ्गात्फलबन्धि वृक्षम्=पुष्परूप चिन्ह (निमित्त) के बिना भी, फल देने वाले वृक्षों से सम्पन्न। आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्= उन्नततर प्रभाव को प्रकट करने वाला। अत्रेः=अत्रि नामक ऋषि के। तपसः =तपस्या का। साधनम्=साधन भूत। एतत् वनम्=यह वन दिखाई पड़ता पड़ता है।

हिन्दी अनुवाद—दण्ड का भय न होने पर भी विनयपूर्ण हिंसक प्राणियों वाला, पुष्परूपी कारण (चिन्ह) के बिना भी फल देने वाले वृक्षों से सम्पन्न (अतएव) उन्नततर प्रभाव को प्रकट करने वाला, अत्रि ऋषि की तपस्या का साधनभूत यह वन (है या दिखाई पड़ता है)।

भावार्थ—राम कहते हैं, सीते! यह अत्रि मुनि की तपस्या का साधनभूत वन है, यहाँ वन्य जीव बिना किसी दण्ड के भय के ही विनम्रता पूर्वक रहते हैं, और पुष्प रूप कारण के अभाव में भी यहाँ के वृक्ष फलते हैं, अत एव इस वन का बहुत बड़ा प्रभाव माना जाता है।

संस्कृत टीका—न निग्रहात् त्रासो येषान्ते अनिग्रहत्रासाः दण्डभयरहिताः, अपि विनीताः साध्वाचाराः सत्त्वाः हिंसकजन्तवो यस्मिंस्तत् (वनमित्यस्य विशेषणम्) अनिग्रहत्रासविनीतसत्वम् पुष्पमेव लिङ्गं पुष्पलिङ्गं न पुष्पलिलिङ्गम् तस्मात् अपुष्पलिङ्गात्-पुष्परूपनिमित्ताभावात्, फलवन्धिनः फलदायिनः वृक्षाः यस्मिन् तत् फलवन्धिवृक्षम् सफलवृक्षान्वितम् अतएव आविष्कृतः प्रकटीकृतः उदग्रतरः प्रभावः उन्नततरं सामर्थ्यं यस्मिंस्तत् आविष्कृतोद

ग्रतर प्रभावम् अत्रेः अत्रिनामकस्य ऋषेस्तपसस्तपश्चरणस्य साधनं सहायकं तपः साधनम् कारणभूतमित्यर्थः एतत् वनमरण्यमस्तीति ।

संस्कृत सरलार्थ--रामः कथयति देवि ! एतत्पुरोदृश्यमानम् अत्रि मुनेस्तपः साधनं वन मस्ति, वनस्यास्य महान् प्रभावो वर्तते, यतोऽत्रत्या वन्यजन्तवो दण्डत्रासरहिता अपि परस्परं विनयेन वर्तन्ते, नात्र दुर्वलो जन्तु विंहन्यते वलशालिभि र्जन्तुभिः । एव मेवात्र पुष्परूपनिभित्तकारणाभावेऽपि वृक्षाः समये समये फलन्ति ।

व्याकरण—**अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम्**=त्रसनं त्रासः, निग्रहात् त्रासो निग्रहत्रासः (पञ्च तत्पु०) न निग्रहत्रासो येपान्ते अनिग्रहत्रासा: (नञ् बहु० समास) अनिग्रहत्रासाश्च अपि विनीताश्च सत्वाः यस्मिंस्तन् (बहु०) **त्रास्**= त्रस्+घञ् । **अपुष्पलिंगात्फलबन्धिवृक्षम्**=पुष्पमेव लिङ्गं पुष्पलिङ्गं न पुष्पलिङ्गमित्यपुष्पलिङ्गम् (नञ० समास) फलानि बध्नन्तीति फलबन्धिनः (उपपद समास) अपुष्पलिङ्गात्फलबन्धिनो वृक्षाः यस्मिंस्तत् (बहु०) । आविष्कृतोदग्रतर प्रभावम्=अतिशयेनोदग्रः उदग्रतरः, आविष्कृत उदग्रतरः प्रभावो यस्मिंस्तत् (बहु०) । आविष्कृत—आविः+कृ+क्त । यहाँ आविः के विसर्गों का "इदुपधस्य वाऽऽ प्रत्ययस्य" सूत्र से षकार हो गया है। तपः साधनम्= तपसः साधनम् (ष० तत्पु०) साधनम्—साध्+ल्युट्=ल्युट् के यु को युवो-रनाकौ ।" से अन होकर साधन शब्द बना है ।

विशेष—अत्रि ऋषि के तपोवन में समस्त हिंसक पशु विनीत थे और वृक्ष निरन्तर पुष्पादि के विना भी फल देते थे। यह सव ऋषि की उग्रतर तपस्या का प्रभाव था । अत्रि ऋषि की गणना सप्तर्षियों में की गई है—

काश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रो ऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्वशिष्ठश्च साध्वी चैवाप्यरुन्धती ॥"

कुछ विद्वानों ने सप्तर्षियों का दूसरे रूप में उल्लेख किया है—

"मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरगिराः ।
वसिशठश्च महाभागः सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ।"

कुछ भी हो दोनों प्रकार की गणना में अत्रि ऋषि की गणना सप्तर्षियों में द्वितीय स्थान पर की गई है इसलिए उनकी उग्र तपस्या और प्रभाव से सब कुछ अर्थात् असम्भव को भी सम्भव कर देने की सामर्थ्य थी। चन्द्रमा भी अत्रि ऋषि के नेत्र से उत्पन्न हुआ था इसीलिए उसे अत्रेर्नयनसंमुत्थज्योतिः

कहा गया है।

इस श्लोक में दण्डभय रूपी कारण के विना भी विनीतत्व रूप कार्य एवं पुण्य रूप कारण के बिना फलोत्पत्ति रूप कार्य के होने के कारण विभावना अलंकार है। विभावना का लक्षण—"विभावना विना हेतोः कार्योत्पत्ति-र्यदुच्यते" (का० प्रकाश)

"विभावना विनाऽपि स्यात्कारणं कार्य जन्म चेत्।
पश्य लाक्षारसासिक्तं रक्तं तच्चरणद्वयम्॥"

(चन्द्रालोक ५/७७)

इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

प्रसंग—'अत्रि ऋषि के आश्रम में तपस्वियों के स्नानार्थ सती अनुसूया ने गङ्गा को प्रवाहित किया था" इसका वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं—

अत्राभिषेकाय तपोधनानां,
सप्तर्षि हस्तोद्धृत हेमपद्माम्।
प्रवर्तयामास किलानुसूया
त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम्॥५१॥

अन्वय—अत्र अनुसूया सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम् त्र्यम्बकमौलिमालां त्रिस्रोतसं तपोधनानाम् अभिषेकाय प्रवर्तयामास किल।

शब्दार्थ—अत्र=इस वन में। अनुसूया=अत्रिऋषि की पत्नी अनुसूया ने। सप्तर्षिहस्तोद्धृतपद्माम्=सप्तर्षियों के हाथों से तोड़े गये स्वर्णकमलों वाली। त्र्यम्बकमौलिमालाम्=शिव जी के सिर की माला के समान। त्रिस्रोतसम्=गंगा को। तपोधनानाम्=तपस्वियों के। अभिषेकाय=स्नान के लिए। प्रवर्तयामास=प्रवाहित कराया। किल=निश्चयार्थक अव्यय।

हिन्दी अनुवाद—इस तपोवन में अनुसूया ने सप्तर्षियों के हाथों से तोड़े गये स्वर्णकमलों वाली, भगवान् शङ्कर के शिर की माला (रूप) गंगा को तपस्वियों के स्नानार्थ प्रवाहित कराया था, ऐसी प्रसिद्धि है।

भावार्थ—राम कहते हैं देवि सीते! यह वही अत्रि मुनि का तपोवन हैं जहाँ पर सती अनुसूया ने तपस्विजनों के नित्य स्नान के लिये, भगवान् शकर के शिर की पुष्प मालाभूत गंगा को प्रवाहित कराया था, इसी गंगा

के सुनहले कमल पुष्पों को सप्तर्षि अपने हाथों से चयन किया करते थे।

रामायण कथा के अनुसार एक बार अनावृष्टि के समय अत्रि पत्नी सती अनुसूया अपने तपोबल से मन्दाकिनी को इस अत्रि तपोवन में ले आई थीं।

संस्कृत टीका—अत्राश्रमे अनुसूया अत्रिपत्नी, सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम् सप्तर्षिकरकलितस्वर्णकमलाम्, त्र्यम्बकस्य भगवतः शङ्करस्य मौलेः शिरसः मालाम् माल्याम् त्र्यम्बकमौलिमालाम्। त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा ताम् त्रिस्रोतसं गङ्गाम्, तप एव धनं येषान्ते तपोधनास्तेषां, तपोधनानाम्, तपस्विनाम् अभिषेकाय स्नानाय प्रवर्तयामास =प्रवाहयामास किल इति ऐतिह्ये।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति देवि सीते! अस्मिन्नेव अत्रितपोवने, एकदा अनावृष्टिकाले, अत्रत्यानाम् तपस्विनां नित्यस्नानाय, अत्रिपत्नी सती अनुसूया, शंकरशिरोमौलिमालां गङ्गा मानीय प्रवर्तयामास। सप्तर्षयोऽस्याः स्वर्णकमलानि स्वहस्तैश्चिन्वन्ति स्म।

व्याकरण—**सप्तर्षिहस्तोद्धृत हेमपद्माम्**=सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः ("दिक् संख्ये संज्ञायाम्" सूत्र से समास, सप्तर्षीणां हस्ताः (ष० तत्पु०) सप्तर्षि हस्ताः तैः उद्धृतानि हेम्नः पद्मानि यस्याः सा ताम् (बहु०)। **त्र्यम्बकमौलिमालाम्**=त्रीणि अम्बकानि यस्य सः त्र्यम्बकः (बहु०) त्र्यम्बकस्य मौलिः (ष० तत्पु०) तस्य मालां (ष० तत्पु०)। **त्रिस्रोतसम्**=त्रीणि स्रोतांसि यस्याः सा ताम् (बहु०)। तपोधनानाम्=तप एव धनं येषान्तेषां (बहु०)। अभिषेकाय=अभि+सिञ्च+घञ् (चतु० एक० वचन)। प्रवर्तयामास=प्र+वृतु+णिच्+लिट्।

विशेष—वाल्मीकि रामायण के अनुसार दस वर्षों तक निरन्तर अनावृष्टि होने के कारण ऋषियों मुनियों को स्नानादि का महान् सङ्कट आ गया था। तब अत्रि पत्नी अनुसूया ने तपस्वियों के स्नानादि के लिए अपने आश्रम के समीप से गङ्गा को प्रवाहित होने के लिए विवश किया था अर्थात् स्वयं अनुसूया ने वहाँ से गङ्गा को बहाया था।

"यहाँ 'त्र्यम्बकमौलिमालाम्' में उपमा अलंकार व्यङ्ग्य है। छन्द उपजाति है।

प्रसंग—अत्रि के आश्रमस्थ वृक्ष भी समाधिस्थ योगियों की भाँति प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार राम सीता से कहते हैं—

वीरासनै र्ध्यानजुषामृषीणा—
ममी समध्यासितवेदिमध्याः ।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति
योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ।।५२।।

अन्वय—वीरासनैः ध्यानजुषां ऋषीणां समध्यासितवेदिमध्याः अमी शाखिनः अपि निवातनिष्कम्पतया योगाधिरूढा इव विभान्ति ।

शब्दार्थ—वीरासनैः=वीरासन नामक विशेष प्रकार के आसनों से ध्यानजुषाम्=ध्यान लगाने वाले (समाधिस्थ)। ऋषीणाम्=ऋषियों के। समध्यासितवेदिमध्याः=वेदि (समाधिस्थल) के मध्य में स्थित। अमी=ये। शाखिनः=वृक्ष। अपि=भी। निवातनिष्कम्पतया=वायु रहित काल में कम्पन रहित होने से। योगाधिरूढा इव=योगाभ्यास निरत से। विभान्ति =प्रतीत हो रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—वीरासन से बैठे हुए ध्यान लगाने वाले (समाधिस्थ) ऋषियों की वेदी के (साधना स्थल के) मध्य में स्थित ये वृक्ष भी वायुरहित काल में कम्पन रहित होने के कारण योगाभ्यास करते हुए से प्रतीत हो रहे हैं।

भावार्थ—राम कहते हैं सीते ! इस अत्रितपोवन में भी वीरासनस्थित ध्यानमग्न ऋषिजनों की समाधिस्थली के मध्य स्थित अर्थात् आसनवेदी के चारों ओर खड़े हुये यहाँ के वृक्ष, वायु विहीन काल में कम्प रहित होने के कारण, ऋषियों जैसे ही योगाभ्यास निरत प्रतीत होते हैं।

संस्कृत टीका—वीराणामासनानि वीरासनानि तैः वीरासनैः, ध्यानासन-विशेषैः ध्यानजुषां साधनारतानामृषीणां तपस्विनां समध्यासितं वेदिमध्यं यैस्ते समध्यासितवेदिमध्याः साधनास्थल (वेदी) मध्ये स्थिताः अमी इमे शाखिनः वृक्षाः अपि निवाते वायुरहिते काले निष्कम्पतया कम्परहितत्वेन योगमधिरूढा इव ध्यानभाज इव विभान्ति विशेषेण शोभन्ते।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, देवि ! अत्रापि तपोवने ध्यानमग्न-मुनिजनसमाधिस्थलीं परितो-विद्यमानाः पादपाः निवातकाले कम्पाभावात् समाधिस्थिता योगाभ्यासरता योगिन इव विभान्ति।

व्याकरण— वीराणामासनानि तैः(ष० तत्पु०)। ध्यानं जुषन्ति थे ते ध्यान-जूषस्तेषां ध्यानजूषाम् (उपपद समास) ऋषि शब्द अमरकोश के अनुसार

सत्यवक्ता अर्थवाची है—"ऋषयः सत्यवचसः" इत्यमरः। यहाँ "ऋषयो मन्त्र-द्रष्टारः" इसके अनुसार मुनि अर्थवाची ऋषि शब्द है। समध्यासितवेदिमध्याः =वेदेः मध्ये वेदिमध्यम् (प० तत्पु०) समध्यासितं वेदिमध्यं यैस्ते (बहु०)। निवातनिष्कम्पतया=निर्गतः कम्पः येभ्यस्ते (बहु०) निष्कम्पाः तेषां भावो निष्कम्पता, निवाते निष्कम्पता (तृ० तत्पु०) तया। योगाधिरूढाः—योगमधि-रूढाः (द्वि० तत्पु०)।

विशेष—योगशास्त्र में योगसन के ८४ भेद (प्रकार) बताए गए हैं उनमें वीरासन भी एक है जिसका लक्षण वशिष्ठ के अनुसार है—

"एक पादम थैकस्मिन् विन्यस्योरुणि संस्थितम्।
इतरस्मिंरतथा चान्यं वीरासन मुदाहृतम्।"

अर्थात् एक पैर को दूसरे पैर की उरु (जङ्घा) पर और दूसरे पैर को पहले पैर की उरु पर रख कर सीधे बैठना वीरासन कहलाता है। इसे पर्यङ्क बन्ध भी कहते हैं। हेमाद्रि के अनुसार दिन भर खड़े रहना और रात को बैठे रहना वीरासन कहलाता है—

"उत्थितस्तु दिवा तिष्ठे दुपविष्टस्तथा निशि।
एतद्वीरासनं प्रोक्तं महापातकनाशनम्॥"

पाताञ्जलयोगदर्शन में योग को चित्तवृत्तिनिरोधात्मक बतलाया गया है—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"।

यहाँ निष्कम्पवृक्षों में ध्यानस्थ योगियों की सम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है। छन्द उपजाति है।

प्रसंग—प्रयागस्थित वटवृक्ष के विषय में सीता को स्मरण कराते हुए राम कहते हैं—

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः
सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां
सपद्मरागः फलितो विभाति ॥५३॥

अन्वय—(हे सीते) त्वया पुरस्ताद् य उपयाचितः श्याम इति प्रतीतः सः अयं वटः फलितः (सन्) सपद्मरागः गारुडानां मणीनां राशिः इव विभाति।

शब्दार्थ—त्वया=तुम्हारे (सीता के) द्वारा। पुरस्ताद्=पहले (वन जाते समय) यः=जो। उपयाचितः=प्रार्थना किया गया था (जिससे सीता ने प्रार्थना पूर्वक वर याचना की थी) श्याम इति=श्याम नाम से। प्रतीतः=प्रसिद्ध था। सः अयम्=वही यह। वटः=बरगद का वृक्ष। फलितः=फलों से सम्पन्न होकर। सपद्मरागः=पद्मराग (लाल रंग की) मणियों से युक्त। गारुडानां मणीनाम्=हरे वर्ण की मणियों की। राशिः इव=समूह के समान। विभाति=सुशोभित हो रहा है।

हिन्दी अनुवाद—(हे सीते) तुम्हारे द्वारा पहले (वन जाते समय) जिसकी प्रार्थना की गई थी, 'श्याम' नाम से प्रसिद्ध यह वही वट वृक्ष (इस समय) फलों से सम्पन्न होकर पद्मराम मणियों से युक्त (हरे रंग की) गारुड़ मणियों के ढेर के समान सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ—राम सीता को याद दिलाते हुए कहते हैं, देवि! यह वही श्याम नाम से प्रसिद्ध वट वृक्ष है, जिससे तुमने वन जाते समय प्रार्थना की थी अब यह फलित होकर पद्मराग सहित मरकत मणियों की राशि के समान शोभा पा रहा है।

संस्कृत टीका—(हे सीते!) त्वया भवत्या पुरस्तात् पूर्वं वनगमनकाले यो वटः उपयाचितः प्रार्थितः 'श्याम' इतिनाम्ना प्रथितः प्रसिद्धः सोऽयं वटः न्यग्रोधपादपः (संप्रति) फलितः सञ्जातफलः सन् सपद्मरागः पद्मराग मणिसहितः गारुडानां हरितवर्णानां मरकतमणीनां राशिः समूह इव विशेषेण भाति शोभते इत्यर्थः।

संस्कृत सरलार्थ—रामः सीतां कथयति, देवि सीते! अयं स एव श्याम इति नाम्ना प्रख्यातः वटवृक्षो विद्यते यस्त्वया, मया सह वनगमनकाले स्व पतिव्रतरक्षार्थ मुपयाचितः। अयमिदानीं फलितः सन् पद्मरागसहितमकरत मणिराशिरिवाभाति।

व्याकरण—उपयाचितः—उप+याच+क्त। उपयाचितः शब्द प्रार्थनाऽर्थवाची मात्र न होकर सीता द्वारा की गई याचना के अर्थ को व्यक्त करता है। रामायण में—

न्यग्रोधं तमुपास्थाय वैदेही वाक्यम ब्रवीत्।
नमस्तेऽस्तु महा वृक्ष! पालयेन्मे व्रतं पतिः॥,'

उल्लेखानुसार सीता ने अपने पतिव्रत धर्म का निरन्तर पालन करते रहने की याचना की थी, उसी का यहाँ संकेत है। फलितः—फल+इतच्। सप-

द्मरागः—पद्मरागैः सहित इति सपद्मरागः। गारुड़ानाम्—गरुडस्येमे गारुडास्तेषाम्—गरुड+अण् (तस्येदम् सूत्र से)।

गारुड मणि का वर्ण हरित है जैसा कि अमरकोश में उल्लेख है—"गारुन्मतं मरकमश्मगर्भो हरिन्मणिः"।

विशेष—इस श्लोक में कवि ने वट वृक्ष को गारुड़ मणियों के ढेर से उपमित किया है वस्तुतः वट वृक्ष में जो फल आते हैं वे लाल रंग के होते हैं और पत्त हरे रंग के। पुष्पक विमान के ऊपर से वटवृक्ष के हरे हरे पत्ते और उनके बीच में यत्र तत्र लाल रंग के फल इस प्रकार दिखलाई पड़ते थे जैसे लाल (पद्मराग) मणियों से युक्त हरित (गारुड़) मणियों का ढेर हो। क्योंकि वृत्र का तना व शाखायें नीचे होने के कारण ऊपर से देखने वाले को दिखलाई नहीं पड़ते। अत एव वह रत्नराशि-सा प्रतीत हो रहा था।

इसीलिए इस श्लोक में उपमाऽलंकार है। कुछ लोगों ने इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार माना है। छन्द उपजाति है।

प्रसंग—राम सीता से अब प्रयाग में गंगा यमुना के संगम का वर्णन अग्रिम श्लोकों में करते हुए कहते हैं—

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलै—
मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सितपंकजाना—
मिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥५४॥

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां
कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः।
अन्यत्रकालागुरुदत्तपत्रा
भक्तिभु वश्चन्दन कल्पितेव ॥५५॥
क्वचित्प्रभाचान्द्रमसी तमोभि—
श्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा
रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा ॥५६॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव
भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।

पश्यानवद्याङ्गि ! विभाति गङ्गा
भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥५७॥

अन्वय – अनवद्याङ्गि ! क्वचित् प्रभालेपिभिः इन्द्रनीलैः अनुविद्धा मुक्तामयी यष्टिः इव, अन्यत्र इन्दीवरैः उत्खचिताऽन्तरा सितपङ्कजानां माला इव, क्वचित् कादम्ब संसर्गवती प्रियमानसानां खगानां पंक्तिः इव, अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भुवः चन्दनकल्पिता भक्तिः इव, क्वचित् छायाविलीनैः तमोभिः शबलीकृता चान्द्रमसी प्रभा इव, अन्यत्र रन्ध्रेषु आलक्ष्यनभःप्रदेशा शुभ्रा शरदभ्रलेखा इव क्वचित् कृष्णोरगभूषणा भस्माङ्गरागा ईश्वरस्य तनुः इव यमुनातरङ्गैः भिन्नप्रवाहा गङ्गा विभाति, पश्य ।

शब्दार्थ—अनवद्याङ्गि !=हे प्रशंसनीय अङ्गों वाली सीते । क्वचित्=कहीं पर । प्रभालेपिभिः=कान्ति का लेप करने वाली अर्थात् कान्ति को फैलाने वाली । इन्द्रनीलैः=इन्द्रनील मणियों से । अनुविद्धा=जड़ी हुई । मुक्तामयी=श्वेत मोतियों की । यष्टिः इव=लड़ के समान (हारावली के तुल्य) । अन्यत्र=दूसरे स्थान पर । इन्द्रीवरैः=नील कमलों से । उत्खचिताऽन्तरा=मध्य भाग में गुंथी हुई । सितपङ्कजानां=श्वेत कमलों की । माला इव=माला के समान । क्वचित्=अन्यत्र कहीं पर । कादम्बसंसर्गवती=नीलहंसों से युक्त । प्रियमानसानां=मानसरोवर के लिये उत्सुक श्वेतराज हंसों की । पंक्तिः इव=पंक्ति के समान । अन्यत्र=अन्य स्थान पर । कालागुरुदत्तपत्रा=कालागुरु से बनाई गई पत्र रचना से युक्त । भुवः=पृथ्वी की । चन्दनकल्पिता=चन्दन से रचित । भक्तिः इव=चित्र रेखा के समान । क्वचित्=कहीं पर । छायाविलीनैः=छाया में छिपे हुए । तमोभिः=अन्धकार से । शवलीकृता=मिश्रित । चान्द्रमसी=चन्द्र सम्वन्धिनी । प्रभा इव=चाँदनी के समान । अन्यत्र=दूसरे स्थान पर । रन्ध्रेषु=छिद्रों में । आलक्ष्यनभः प्रदेशा=दिखाई पड़ रहा है आकाश जिससे ऐसी । शुभ्रा=श्वेतरंग की । शरदभ्रलेखा इव=शरद् ऋतु की मेघ पंक्ति के समान । क्वचित्=कहीं पर । कृष्णोरगभूषणा=काले सर्परूपी आभूषण से युक्त । भस्माङ्गरागा=भस्म से लिप्त । ईश्वरस्य=भगवान् शङ्कर के । तनुः इव=शरीर के समान । यमुनातरङ्गैः=यमुना नदी की लहरों से । भिन्नप्रवाहा=मिले हुए प्रवाह वाली । गङ्गा=गंगा नदी (भागीरथी) । विभाति=सुशोभित हो रही है ।

हिन्दी अनुवाद—हे अनिन्द्य अङ्गोंवाली या प्रशंसनीय अंगों वाली सीते ! (प्रयाग में) यमुना की लहरों से मिश्रित प्रवाह वाली गगा की शोभा इस प्रकार प्रतीत हो रही है) कहीं पर अपनी चमक (प्रभा) को फैलाने वाली इन्द्रनीलमणियों से जड़ी हुई (श्वेत) मोतियों की लड़ अर्थात् हारावली के समान, दूसरे स्थान पर नीलकमलों से मध्यभाग में गुथी हुई श्वेतकमलों की माला के समान, 'अन्यत्र नीलहंसों से युक्त मान सरोवराभिनाषी श्वेत राजहंसों की पंक्ति के समान, दूसरी ओर कालागुरु से बनाई गई पत्र रचना से युक्त पृथ्वी की चन्दन रचित चित्र रेखा के समान, कहीं पर छाया में छिपे हुए अन्धकार से चित्रीकृत चन्द्रमा की चाँदनी के समान, दूसरे स्थान पर छिद्रों से दिखलाई पड़ रहा है आकाश जिससे ऐसी श्वेत (रंग की) शरद् ऋतु की मेघ पंक्ति के समान, कहीं पर काले सर्परूपी आभूषण से युक्त भस्म से लिप्त, भगवान शंकर के शरीर के समान यमुना की लहरों से मिले हुए प्रवाह वाली गंगा विशेष रूप से सुशोभित हो रही है ।

भावार्थ—इन चारों श्लोकों का भावार्थ, हिन्दी अनुवाद के समान ही स्पष्ट है ।

संस्कृत टीका—न अवद्यानि निन्दनीयानि अंगानि यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे अनवद्याङ्गि । प्रशंसनीयावयवे सीते । क्वचित्—क्वापि, प्रभालेपिभिः= कान्तिलेपिभि. इन्द्रनीलैः मरकतमणिभिः अनुविद्धा अनुस्यूता मुक्तामयी मौक्तिकमयी यष्टिः पंक्तिः—हारावलिः इव, अन्यत्र—अन्यस्मिन् स्थाने, इन्दीवरैःनीलोत्पलैः उत्खचितमन्तरं यस्याः सा उत्खचितान्तरा – उद्गुम्फितमध्यभागा, सितानां श्वेतानां पङ्कजानां कमलानां माला इव स्रक् इव, क्वचित् क्वापि कादम्बसंसर्गवती नीलहंसान्विता प्रियमानसानां प्रियं मानसं येषान्ते प्रियमानसास्तेषामभीष्टमानसरोवराणाम् खगानां—राजहंसानां पंक्तिरिव आवलिरिव, अन्यत्र च कालं च तत् अगुरुः कालागुरुः तेन दत्तानि पत्राणि यस्याः सा कालागुरुदत्तपत्रा कृष्णागुरुरचितमकरिकपत्रा भुवः पृथिव्याः चन्दनेन श्रीखण्डेन कल्पिता रचिता भक्तिरिव रेखेव, क्वचित् क्वापि च छायासु विलीनैः आतपरहितस्थानस्थितैः तमोभिरन्धकारैः शबलीकृता चित्रीकृता चान्द्रमसी चन्द्रसम्बन्धिनी प्रभेव कान्तिरिव, अन्यत्रापरस्मिन् स्थाने रन्ध्रेषु छिन्द्रेषु आ ईषत् लक्ष्याः दृश्याः नभःप्रदेशाः व्योमप्रदेशाः तादृशी शुभ्रा शुक्ला शरदभ्रलेखा इव शरदृतोर्मेघमाला इव, क्वचित् क्वापि च कृष्णश्चासौ उरगः

कृष्णोरग: कृष्णसर्प: स चासौ भूषणं यस्या: सा कृष्णोरगभूषणा कृष्णसर्पालंकृता भस्माङ्गरागा भस्मनाभिलिप्ता ईश्वरस्य भगवत: शंकरस्य तनुरिव शरीरमिव, यमुनायास्तरङ्गै सूर्यतनयावीचिभि: भिन्नप्रवाहा मिश्रितजलधारा गङ्गा भागीरथी विभाति शोभते इति पश्य विलोकय ।

संस्कृत सरलार्थ—प्रयागे यमुनाया: नीलजलप्रवाहमिश्रितां श्वेतजलां गंगां वर्णयन् राम: सीतां कथयति, देवि सीते, पश्य, क्वचित् सरिदियं मरकतमणिभि: सह गुम्फिता हारावलि रिव, अन्यत्र नीलकमलै: उद् गुम्फितमध्यभागा पुण्डरीकपंक्तिरिव, क्वचित् कलहंसमिश्रिता राजहंसश्रेणीव, क्वचित् कालागुरुरचितमकरिकापत्रा चन्दनरचितभूमे: रेखेव, कुत्रचित् छायास्थितैरन्धकारैश्चित्रीकृता चान्द्रमसी प्रभेव, अन्यत्र छिद्रेषु ईषल्लक्ष्यव्योमप्रदेशा शुक्ला शरन्मेघरेखेव, कुत्रचिच्च कृष्णसर्पालंकारा भस्मानुलिप्ता शम्भुतनुरिव यमनातरङ्गै: मिश्रितप्रवाहा भागीरथी विशोभते ।

व्याकरण—अनवद्याङ्गि !— न अवद्यानि (नञ् तत्पु०) अनवद्यानि अङ्गानि यस्या: सा तत्सम्बुद्धौ (बहु:) प्रभालेपिभि:—प्रभया प्रभाभिर्वा लिम्पन्ति ये ते प्रभालेपिन: तै: । प्रभालेपि—प्रभा+लिप्+णिनि । अनुविद्धा—अनु+व्यध+क्त+टाप् । मुक्तामयी—भूयांसो मुक्ता: सन्ति यस्यां सा इस अर्थ में मुक्ता शब्द से प्रचुर अर्थ में "तत्प्रकृत वचने मयट्" सूत्र से मयट् प्रत्यय होकर मुक्तामय शब्द फिर टित् प्रत्यय होने के कारण 'टिड्ढाणञ०' आदि सूत्र से ङीप् हुआ है । उत्खचितान्तरा —उत्खचितम् अन्तर यस्या: सा (बहु)। सितपङ्कजानाम्—पङ्के जातानि पङ्कजानि सितानि च तानि पङ्कजानि (कर्मधारय) तेषाम्। कादम्बसंसर्गवती—कादम्बानां संसर्ग: अस्या: अस्तीति कादम्बसंसर्गवती । कादम्बसंसर्ग शब्द से मतुप् प्रत्यय होकर स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् हुआ है। प्रियमानसानाम्—मनसा निर्वृत्तं मानसं, प्रियं मानसं येषांन्तेषाम् (बहु०) । मानस शब्द मनस् शब्द में 'तेन निर्वृत्तम्' सूत्र से अण् होकर बना है। कालागुरुदत्तपत्रा—कालं च तदगुरु कालागुरु (कर्मधाराय) तेन दत्तानि पत्राणि यस्या: सा: (तत्पु० बहु०) शबलीकृता—अशबला: शबला: कृता इति शबलीकृता (शबला शब्द से च्वि प्रत्यय कर आ को ई हुआ है। कृ से क्त फिर टाप्) चान्द्रमसी—चन्द्रमस इयम्। चन्द्रमस्+अण्+ङीप् । आलक्ष्यनभ:प्रदेशा—आ (ईषत्) लक्ष्य: (गति समास) नभस: प्रदेश: (प० तत्पु०) आलक्ष्यो नभ: प्रदेशो यस्यां

सा (बहु०)। कृष्णोरगभूषणा—कृष्णाश्च ते उरगाः कृष्णोरगाः (कर्म०) कृष्णोरगाः भूषणानि यस्यां सा (बहु०)। भस्माङ्गरागः—अंगानां रागः अङ्गरागः (ष० तत्पु०) भस्मएवाङ्गरागो यस्याः सा (बहु०) यमुनातरङ्गैः—यमुनायास्तरङ्गैः (ष० तत्पु०)। भिन्नप्रवाहा—भिन्नः प्रवाहो यस्याः सा (बहु०)।

विशेष—५४ से ५७ तक के ४ श्लोकों में कवि ने यमुना और गङ्गा के संगम का विविध रूपों में वर्णन किया है। जितनी भी उत्प्रेक्षायें या उपमायें हैं उनमें कृष्णत्व और गौरत्व (श्वेतत्व) को आधार बनाया गया है। यमुना का जल कृष्ण वर्ण और गंगा का श्वेत वर्ण होता है यह सर्वविदित है। मान सरोवर के विषय में वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि श्री ब्रह्मा ने कैलाश पर्वत पर मानस सरोवर की रचना की थी।

"कैलाश शिखरे राम ! मनसा निर्मितं सरः।
ब्रह्मणा प्रागिदं यस्मात्तस्मादभून्मानसं सरः॥"

अतएव यही मानस सरोवर मान सरोवर कहलाने लगा। इसमें राजहंस निवास करते हैं यह कवि प्रसिद्धि है कि राजहंस वर्षारम्भ में इसी मान सरोवर में चले जाते हैं।—"जलधर समये मानसं यान्ति हंसाः" राजहंसों के पैर और चोंच लाल तथा पंख श्वेत होते हैं यह अमरकोश के उल्लेख से स्पष्ट है—

"राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सितैः"।

साहित्य दर्पण के अनुसार यह चार श्लोकों का समुदाय 'कलाप' कहलायेगा क्योंकि इन चारों श्लोकों में अनवद्याङ्गि ! सम्बोधन और विभाति तथा पश्य क्रियाओं का सम्बन्ध है।

"छन्दोवद्ध पदं पद्यं, तेनेकेन च मुक्तकम्
द्वाभ्यां तु युग्मकं, सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते।
लकापकं चर्तुभिः स्यात् तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम्॥"

इन चारों श्लोकों में 'यमुनातरङ्गैः भिन्नप्रवाहा गङ्गा" इस उपमेय के अनेक उपमान देने के कारण मालोपमा तथा अन्य अनेक रूपों में सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस प्रकार दोनों अलंकारों का संयोग सकर अलंकार है। मालोपमा का लक्षण—"मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते"। (सा० द०)

इन चारों श्लोकों में उप ाति छन्द है।

प्रसंग—"गङ्गा यमुना के संगम में स्नान से अज्ञानियों को भी मोक्ष प्राप्त होता है" इस प्रकार संगम की प्रशंसा करते हुए राम सीता से कहते हैं—

> **समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते**
> **पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।**
> **तत्वावबोधेन विनापि भूय—**
> **स्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ॥५८॥**

अन्वय—अत्र समुद्रपत्न्योः जलसन्निपाते अभिषेकात् पूतात्मनां तत्वावबोधेन विना अपि तनुत्यजां भूयः शरीरबन्धः न अस्ति किल ।

शब्दार्थ—अत्र=इस । समुद्रपत्न्योः=समुद्र पत्नी गङ्गा यमुना के । जलसन्निपाते=संगम में । अभिषेकात=स्नान करने से । पूतात्मनाम्=पवित्र आत्मा वाले (व्यक्तिग्रों का) । तत्त्वाववोधेन-विना अपि=तत्व (सत्यासत्य, धर्माधमादि) के ज्ञान के बिना भी । तनुत्यजाम्=शरीर त्याग करने वालों का । भूयः=फिर से । शरीरवन्धः=जन्म मरण आदि सांसारिक सम्वन्ध । न अस्ति=नहीं होता है । किल=निश्चय ही ।

हिन्दी अनुवाद—इस गंगा-यमुना के संगम में स्थान करने से पवित्रात्मा वाले (व्यक्तियों का) तत्वज्ञान (सत्या सत्य, धर्म अधर्म आदि का ज्ञान) न होने पर भी शरीर त्याग करने वालों का फिर से जन्म आदि सांसारिक बन्धन नहीं होता यह निश्चय है । अर्थात् उन व्यक्तियों की मुक्ति हो जाती है जो गंगा-यमुना के संगम में स्नान करते हैं ।

भावार्थ—प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम स्थल का महत्व बतलाते हुये राम सीता से कहते हैं कि इस संगम पर स्नान करने वाले पूतात्मा जनों के मरने पर उन्हें अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है अर्थात् तत्त्वज्ञानी जनों को तत्त्वावबोध से जो मोक्ष मिलता है वही मोक्ष उन लोगों को भी मिलता है जो इस संगम पर स्नान करते हैं ।

संस्कृत टीका—अत्रास्मिन् स्थाने संगमे वा, समुद्रपन्न्योः गङ्गायमुनयोः-जलसन्निपाते—संगमे अभिषेकात् स्नानात्, पूतात्मनां—पवित्रान्तःकरणानां जनानां, तत्वस्य-अवबोधेन ज्ञानेन विनाऽपि अभावेऽपि तनुत्यजां भौतिक-शरीरत्यागिनाम् भूयः पुनः शरीरबन्धः देहसम्बन्धः पुनर्जन्म मरणादिकमित्यर्थः

नास्ति किल न भवतीति निश्चयः संगमजले स्नानात्पवित्रान्तःकरणानां जनानां मोक्षो भवतीति सरलार्थः।

संस्कृत सरलार्थ—प्रयागे गंगा-यमुनयोः संगमस्य महत्त्वं प्रतिपादयन् रामः कथयति सीते! अत्र संगमे स्नानात् पवित्रामभि जनैः ज्ञानं विनापि मोक्षो लभ्यते।

व्याकरण—समुद्रपत्न्योः—समुद्रस्य पत्न्यौ तयोः (ष० तत्पु०)। जल-सन्निपाते—जलानां संन्निपातः जलसन्निपातः तस्मिन् (ष० तत्पु०), सन्नि-पात—सम्+नि+पत्+घञ्। अभिषेकात्–अभि+सिच्+घञ् (हेत्वर्थ में पञ्चमी विभक्ति 'हेतौ' सूत्र से। पूतात्मनाम्—पूतः आत्मा येषान्ते पूतात्मानः तेषाम् (बहु०) तत्त्वावबोधेन—तत्त्वस्य अवबोधः तत्त्वावबोधः तेन (ष० तत्पु०) यहाँ तृतीया विभक्ति 'विना' के योग के कारण "पृथग्विना नानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" सूत्र से हुई है। शरीरबन्धः—शरीररस्य बन्धः (ष० तत्पु०)।

विशेष—पुराणों में या साहित्य में नदियों का पति समुद्र को माना गया है इसीलिए समुद्र का नाम 'वाहिनीपति' भी है। यहाँ समुद्रपत्न्योः के द्वारा उत्तर भारत की दो प्रमुख गंगा और यमुना नदियों का उल्लेख किया गया है जिनका संगम स्थल प्रयागराज है। "तत्वज्ञानान्मुक्तिः" नहि ज्ञानेन सदृशं पवितमिह् विद्यते" आदि कथनों के अनुसार मनुष्य की मुक्ति तत्व ज्ञान से ही होती है अर्थात् सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म आदि का सम्यक् ज्ञान होने के वाद ही व्यक्ति को मोक्ष मिलता है किन्तु इस प्रयागराज में संगम-स्थल पर स्नान करने वाले व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है। अतः इस गंगा-यमुना संगम में स्नान का अत्यधिक महत्व है। शरीर बन्ध का अर्थ पुनर्जन्मादि है। यहाँ 'विनोक्ति' नामक अलंकार है।

इसमें उपजाति छन्द है।

प्रसंग—"अयोध्या को लौटते हुए राम निषादराज (गुह) की नगरीको देखकर सीता से, "वनगमन के समय यहीं जटावन्धन किया था जिन्हें देख सुमन्त्र रो पड़े थे" आदि का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं—

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्
यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय।

जटासु बद्धास्वरुदत्सुमन्त्रः
कैकेयि ! कामाः फलितास्तवेति ॥५९॥

अन्वय—निषादाधिपतेः तत् पुरम् इदम् यस्मिन् मया मौलिमणिं विहाय जटासु बद्धासु सुमन्त्रः कैकेयि ! तव कामाः फलिताः" इति अरुदत् ॥

शब्दार्थ—निषादाधिपतेः=निषादराज (गुह) का। तत्=वह। पुरम्=नगर। इदम्=यह है। यस्मिन्=जिस नगर में। मया=मेरे (राम के) द्वारा। मौलिमणिं=रत्नमुकुट को। विहाय=छोड़कर (परित्याग कर)। जटासु बद्धासु=जटायें बाँध लेने पर। सुमन्त्रः=सुमन्त्र नामक दशरथ के मन्त्री। कैकेयि !=हे कैकेयी। तव=तुम्हारे। कामाः=मनोरथ (इच्छायें)। फलिताः=सफल हो गए। इति=ऐसा कहकर। अरुदत्=रोये थे।

हिन्दी अनुवाद—यह वह निषादराज गुह की नगरी है जहाँ (वन गमन के समय) मेरे द्वारा मुकुटमणि को छोड़ कर जटायें बाँधने पर सुमन्त्र "हे कैकेयि ! तुम्हारे मनोरथ सफल हो गए" ऐसा (कहकर) रो पड़े थे।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं देवि ! यह वही निषादाधि पति गुह की नगरी (शृङ्गवेरपुर) है जहाँ मैंने जब मुकुटमणि को उतार कर जटायें बाँधी थीं, तब सुमन्त्र यह कह कर रो पड़े थे कि हे कैकेयि ! अब तुम्हारे मनोरथ सफल हुये।

संस्कृत टीका—निषादानामधि पतिस्तस्य निषादाधिपतेः निषादराजस्य गुहस्येदं पुरोदृश्यमानं तत्पुरं नगरमस्ति (शृङ्गवेर पुरमित्यर्थः) यस्मिन् नगरे मया रामेण मौलिमणिं मुकुटरत्नं विहाय परित्यज्य जटासु सटासु बद्धासु रचितासु सुमन्त्रः अयोध्याराज्यस्य मन्त्री कैकेयि ! हे भरतमातस्तव कामाः मनोरथाः फलिताः पूर्णाः इति इत्थमुक्त्वाऽरुदत् अश्रूणि व्यमुञ्चत्।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते ! निषादराजस्य गुहस्येदं तदेव नगरम् यत्र मया मुकुटरत्नं परित्यज्य यदा जटाः रचिताः तदा सुमन्त्रोऽपि, कैकेयि ! इदानीं तव मनोरथाः सफला जाता' इति कथयित्वा अरोदीत्।

व्याकरण—निषादानामधिपतिः (ष० तत्पु०)। मौलिमणिम्=मौलेः मणि (ष० तत्पु०)। विहाय—वि+हा+त्वा (ल्यप्) बद्धासु=बन्ध+क्त+टाप्। कैकेयि !=केकयस्य अपत्यं स्त्री कैकेयी तत्सम्बुद्धौ। जनपदवाची केकय शब्द से जनपद शब्दात् 'क्षात्रियादञ्" सूत्र से अञ् प्रत्यय होकर टिड्ढाणञ्" से ङीप् प्रत्यय हुआ कैकयी।

विशेष—वनगमन के समय राम ने अपने मित्र निषादराज गुह के नगर शृङ्गवेर पुर में पहुँचकर राजसी आभूषणों व वस्त्रों का परित्याग कर वानप्रस्थी वेश धारण करते समय मुकुट को हटाकर जब केशों को जटाओं के रूप में बाँधा था उस समय दशरथ के मन्त्री जो इस समय राम के सारथी बनकर आए थे, राम की इस दशा को देखकर रो पड़े थे। 'निषाद' जाति धीवर या मल्लाहों की थी। कुछ टीकाकारों ने 'निषाद' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है—"निषीदति पापम् एषु इति निषादाः" अर्थात् जिनमें पाप निवास करता है वे निषाद होते हैं। सम्भवतः मत्स्य आदि को नित्य पकड़ने से होने वाली प्राणि हिंसा के कारण ही इनमें पाप का निवास माना गया हो।

सिन्धु नदी का तटवर्ती (पंजाब) प्रदेश ही पहले केकय जनपद कहलाता था। केकय देश के राजा की पुत्री कैकेयी भरत की माता थी।

यहाँ शृङ्गवेरपुर को देखकर सुमन्त्र के रोने आदि का स्मरण आने के कारण स्मरणालंकार है।

छन्द उपजाति है।

प्रसंग—अयोध्या की ओर अग्रसर पुष्पकविमान से सरयू नदी को देखकर राम सीता से उसका वर्णन करते हैं।

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानाम्,
निर्विष्ट हेमाम्बुजरेणु यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो,
बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ॥६०॥

अन्वय—पुण्यजनाङ्गनानाम् पयोधरैः निर्विष्ट हेमाम्बुजरेणु ब्राह्मं सरः बुद्धेः अव्यक्तम् इव यस्याः कारणम् आप्तवाचः उदाहरन्ति।

शब्दार्थ—पुण्यजनाङ्गनानां=यक्ष सुन्दरियों के। पयोधरैः=स्तनों के द्वारा। निर्विष्ट हेमाम्बुजरेणु=जिसके स्वर्णकमलों के पराग को उपभोग किया किया गया है—ऐसे। ब्राह्मं सरः=मानसरोवर को। बुद्धेः=बुद्धि का। अव्यक्तम्=प्रकृति। इव=समान। यस्याः=जिस सरयू का। कारणम्=जन्म-स्थान। आप्तवाचः=सत्य वक्ता मुनिजन। उदाहरन्ति=कहते हैं।

हिन्दी अनुवाद—यक्ष सुन्दरियों के स्तनों द्वारा जिसके स्वर्णकमलों के

पराग का उपभोग किया गया है ऐसे मानसरोवर को बुद्धि के कारण अव्यक्त (प्रकृति) के समान जिस सरयू नदी का कारण (जन्मस्थान) मुनियों ने प्रतिपादित किया है।

अर्थात् जिस प्रकार बुद्धि का कारण (जन्मदाता) अव्यक्त अर्थात् प्रकृति है उसी प्रकार सरयू नदी का कारण मानसरोवर है। ऐसा विद्वानों का कथन है।

भावार्थ—जिस प्रकार बुद्धि का उत्पत्ति स्थान अव्यक्त प्रकृति को माना है उसी प्रकार इस सरयू नदी का उत्पत्ति स्थान मानसरोवर को माना गया गया है। इस मानसरोवर के स्वर्ण कमलों के पराग को यक्ष सुन्दरियाँ अपने स्तनों पर लगाती हैं।

संस्कृत टीका—पुण्यजनाङ्गनानाम्=यक्षसुन्दरीणाम् पयोधरैः=स्तनैः, निर्विष्टः उपभुक्तो हेमाम्बुजानां स्वर्णकमलानां रेणुः परागः यस्य तत् निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु ब्राह्मं प्रजापतिसम्बन्धि सरः सरोवरं मानसरोवरं यस्याः 'सरयू' इति नद्याः सरय्वाः इत्यर्थः बुद्धेः महत्तत्वस्याव्यक्तमिव प्रकृतिमिव कारणं हेतुमुत्पत्तिस्थानमिति आप्तवाचः सत्यवक्तारो मुनयो वेदा वा उदाहरन्ति कथयन्ति।

सरलार्थ—सांख्यशास्त्रोक्तस्य महत्वस्योत्पत्तिस्थानं यथा अव्यक्तम् तथैव सरय्वाः नद्यारुद्गम स्थानं मानसरोवरमिति विदुषां वेदानाञ्चाभिमतम्।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति सीते! मुनिजना अस्याः सरय्वाः प्रभवं मानसरोवरं प्रतिपादयन्ति यथा ते बुद्धे रुत्पत्तिकारण मव्यक्त मुदाहरन्ति। मानसरोवरेऽस्मिन् स्वर्णकमलान्युद्भवन्ति येषां परागं यक्षरमण्यः स्वपयोधरैरुपयोगमानयन्ति।

व्याकरण—पुण्यजनाङ्गनानाम्—पुण्याश्च ते जनाः पुण्यजनाः (कर्मधा०) तेषामङ्गनाः पुण्याजनाङ्गनाः (ष० तत्पु०) तासाम्। पयोधरैः—पयसां धराः पयोधराः तैः (ष० तत्पु०)। निर्विष्ट हेमाम्बुजरेणु—हेम्नः अम्बुजानि हेमाम्बुजानि (ष० तत्पु०) हेमाम्बुजानां रेणुः हेमाम्बुजरेणुः (ष० तत्पु०) निर्विष्टो हेमाम्बुजरेणुर्यस्य तत् (बहु०)। निर्विष्ट—निर+विश्+क्त। ब्राह्मम्—ब्राह्मणः इदं ब्राह्मम्—ब्रह्मन्+अण्। आप्तवाचः—आप्ता वाक् येषान्ते आप्तवाचः (बहु०)।

विशेष—यहाँ सांख्य शास्त्रीय उपमा दी गई है। सांख्यशास्त्र में २५ तत्व माने गये हैं जिनमें प्रधान तत्व अव्यक्त या प्रकृति से बुद्धि (महत्तत्व)

की उत्पत्ति मानी गई है। अतः बुद्धि का कारण प्रकृति (अव्यक्त) है उसी प्रकार सरयू नदी का उत्पत्ति स्थान (कारण) मानसरोवर है।

ऐसी मान्यता है कि मानसरोवर की रचना ब्रह्मा की मानसी सृष्टि है। इसीलिए इसे ब्राह्मसर कहा गया है। यह भी प्रसिद्धि है कि मानसरोवर में स्वर्णकमल होते हैं।

पुण्यजन शब्द विश्वकोष के अनुसार यक्ष वाची भी है।

"भवेत्पुण्यजनो यक्षे राक्षसे सज्जनेऽपि च"।

यहाँ पुण्यजन का अर्थ यक्ष ही कवि को अभिप्रेत है क्योंकि यक्षसुन्दरियों में विलासिता का भाव अधिक होने के कारण मानसरोवर के स्वर्णकमलों के पराग को स्तनों पर वे मलती थीं। कालिदास ने मेघदूत में यक्षपत्नी का चित्रण करते समय यक्षसुन्दरियों की विलासिता का सूक्ष्म चित्रण किया है।

आप्तवाचाः संस्कृत विद्वानों की दृष्टि में आप्त शब्द परमात्मा और यथार्थ (सत्य) दो अर्थों का वाचक है। इस प्रकार यथार्थवक्ता के रूप में आप्तवाचः शब्द मुनियों का वाचक है। आप्त शब्द का अर्थ परमात्मा करने पर उसकी वाणी अर्थात् 'वेद' आप्तवाचः का वाच्य है।

यहाँ उपमालंकार एवं उपजाति छन्द है।

प्रसंग—"इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं से पवित्रीकृत जल को यह सरयू नदी अयोध्या पहुँचाती है" इस तथ्य का निरूपण करते हुए राम सीता से कहते हैं—

जलानि या तीरनिखातयूपा
वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्।
तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णै-
रिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि॥६१॥

अन्वय—तीरनिखातयूपा या तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः इक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि जलानि राजधानीम् अयोध्याम् अनुवहति।

शब्दार्थ—तीरनिखातयूपा=तटपर गाड़े गए यूपों (यज्ञस्तम्भों) वाली। या=जो सरयू नदी। तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः अश्वमेध यज्ञ के वभृथ (यज्ञान्त) स्नान के लिए उतरे हुए। इक्ष्वाकुभिः=इक्ष्वाकुवंशीय पूर्वज राजाओं के द्वारा। पुण्यतरी कृतानि=अत्यधिक पवित्र किए गए। जलानि

=जलों को । राजधानीम् अयोध्याम्=राजधानी अयोध्या के । अनु=समीप । वहति=ले जाती हैं (पहुँचाती हैं) ।

हिन्दी अनुवाद—तीर पर गाड़ गये यज्ञीय स्तम्भों से युक्त जो सरयू नदी अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान अर्थात् यज्ञ की पूर्णता पर किये जाने वाले स्नान के लिए (सरयू में) उतरे हुए इक्ष्वाकुवंशीय पूर्वजों के द्वारा अत्यधिक पवित्र किये गये जल को राजधानी अयोध्या के समीप पहुँचाती है (यह वही सरयू है) ।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं, देवि ! यह वही सरयू नदी है जो कि यज्ञान्त स्नान के लिए नदी में उतरे हुए इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के द्वारा अत्यधिक पवित्रीकृत जलों को राजधानी अयोध्या के समीप तक पहुँचाती है । इस नदी के किनारे पर अश्वमेधीय यज्ञस्तम्भ गाड़े गये हैं, इस प्रकार यह एक अति पवित्र नदी है ।

संस्कृत टीका—तीरे तटे निखाताः स्थापिताः यूपाः यज्ञसम्बन्धिस्तम्भाः यस्याः सा तीरनिखातयूपा, या सरयू नदी तुरङ्गमेधस्य अश्वमेधयज्ञस्यावभृथाय यज्ञान्तस्नानायावतीर्णैः सरयूमवरूढै रिक्ष्वाकुभिरिक्ष्वाकुवंशीयैः पूर्वजैः राजभिः पुण्यतरीकृतानि पवित्रतरीकृतानि जलान्युदकानि राजधानीमयोध्याम् एतदाख्यां नगरीम् अनु समीपे वहति प्रापयति ।

संस्कृत सरलार्थ—सरयूं वर्णयन् रामः कथयति, सीते ! यस्यास्तटे यज्ञयूपा निखाताः सन्ति, सा एषा सरयू नदी यज्ञान्तस्नानपरैः इक्ष्वाकुवंशीयैः राजभिः पवित्रीकृतानि जलानि अयोध्यासमीपं प्रापयति ।

व्याकरण—तीरनिखातयूपाः—तीरे निखाताः यूपाः यस्याः सा (बह०)—निखात—नि + खन् + क्त । तुरङ्गमेधावभृथावतीर्णैः—तुरङ्गो मेध्यतेऽस्मिन्निति तुरङ्गमेधः (उपपद समास) तुरङ्गमेधस्य अवभृथाय अवतीर्णैः (तृतीया० चतु० तत्पु०) अवतीर्णः—अव+तृ+क्त । इक्ष्वाकुभिः—इक्ष्वाकूना मपत्यानि पुमांसः इक्ष्वाकवस्तैः । पुण्यतरीकृतानि—अतिशयेन पुण्यानि पुण्यतराणि—पुण्य+तरप् । अपुण्यतराणि पुण्यतराणि कृतानि इति पुण्यतरीकृतानि—पुण्यतर+च्वि+कृ+क्त । अयोध्याम् में 'अनु' के योग से द्वितीया विभक्ति हुई है ।

विशेष—इक्ष्वाकुवंशीय राजा सरयूनदी के तट पर यज्ञ किया करते थे । यज्ञ के स्तम्भों की स्थापना की जाती थी । अश्वमेध यज्ञ में दिग्विजय की

कामना से कोई राजा एक वलिष्ठ गतिशील अश्व को मन्त्राभिषिक्त कर छोड़ता था, उसके पीछे राजा की सेना चलती थी। जो व्यक्ति उस अश्व को पकड़ता था, उससे अनुनायी सैनिकों का युद्ध होता था, पराजित होने पर वे उस राजा के अधीन हो जाते थे। इस प्रकार जहाँ तक अश्व घूम आता था वह उस अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजा का क्षेत्र होता था। अन्त में उस अश्व की बलि देकर यज्ञ कार्य होता था तपश्चात् वे नदी में स्नान करते थे। इस प्रकार यह स्नान अवभृथ स्नान कहलाता था। इस स्नान से न केवल वे व्यक्ति अपितु जल भी पवित्र हो जाते थे, ऐसी मान्यता है।

यहाँ उपजाति छन्द है।

प्रसंग—राम सरयू नदी को अयोध्या के राजाओं की धाय माँ के रूप में सम्भावित करते हुए कहते हैं—

यां सैकतोत्संगसुखोचितानाम्
प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्य धात्रीमिव मानसं मे
सम्भावयत्युत्तरकोसलानाम् ॥६२॥

अन्वय—याम् मे मानसं सैकतोत्सङ्गसुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् उत्तरकोशलानां सामान्यधात्रीम् इव सम्भावयति।

शब्दार्थ—याम्=जिस सरयू नदी को। मे=मुझ राम का। मानसम्=चित्त (अन्तःकरण)। सैकतोत्सङ्ग सुखोचितानां=वालुकामय (तट) रूपी गोद में सुख से रहने वाले। प्राज्यैः=पर्याप्त। पयोभिः=जल से (दुग्ध से)। परिवर्धितानाम्=पले हुए (वड़े हुए)। उत्तरकोशलानां=उत्तरकोशल प्रदेश के (अयोध्या के) लोगों की। सामान्य धात्रीमिव=साधारण माँ के समान (धायमाता के समान)। सम्भावयति=सत्कार करता है।

हिन्दी अनुवाद—जिस सरयू नदी को मेरा अन्तःकरण वालुकामय तट रूप गोद में अर्थात् तट रूपी गोद में सुख का अनुभव करने वाले, पर्याप्त जल से (दुग्ध से) पले हुए अर्थात् बड़े हुए उत्तर कौशल प्रदेश के लोगों (विशेषतः राजाओं) की धाय माँ के समान सत्कार करता है अर्थात् माँ के रूप में सरयू नदी का आदर करता है।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि मेरा मन इस सरयू नदी को उपमाता के समान आदर की दृष्टि से देखता है क्योंकि इक्ष्वाकुवंशीय हमारे पूर्वजों ने इस नदी की तट रूप गोद में सुख का अनुभव किया था और इसके ही जल रूप दूध से पलकर बड़े हुए थे। अतएव यह हमारे लिए उपमाता के समान आदर का पात्र है।

संस्कृत टीका—याम् पुरोदृश्यमानां सरयूं मे रामस्य मानसं चित्तमन्तः-करणं वेति सैकतोत्सङ्गसुखो-चितानाम् बालुकामयोत्संगे सुखोचितानां लब्ध-सुखानाम् प्राज्यैः=पर्याप्तैः पयोभिर्जलैः पक्षे दुग्धैः परिर्वधिनानाम पुष्टानाम् उत्तरकोशलानाभेतन्नाम जनपदस्य जनानाम् विशेषतः अयोध्यायाः राज्ञां सामान्य धात्रीमिव साधारणमातरमिव सम्भावयति सत्करोति।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति सीते! इमां सरयूनदीं मम चित्त मुपमातरमिव सत्करोति, यतोऽस्माकं पूर्वजा अस्या एव सैकतोत्सङ्गे जननी क्रोड इव सुख मन्वभवन् एवमस्या एव जल रूपदुग्धेन सम्बर्धिता वभूवुः इति एवेयमस्माक मुपजननीव वन्दनीयास्ति।

व्याकरण—सैकतोत्सङ्गसुखोचितानाम,—सिकतायाः इदं सैकतं—सिकता+अण् सैकतम् एव उत्सङ्गः सैकतोत्सङ्गः तस्मिन् सुखे उचिता तेषाम् (सप्त० तत्पु०)। परिर्वधितानाम्—परि+वृध्+णिच्+क्त+षष्ठी बहु०। उत्तर कोशलानाम्—उत्तरं च तत् कोशलं (कर्म धा०) उत्तरकोशलं निवासो येषान्ते उत्तरकोशलाः (बहु०) तेषाम्। सामान्यधात्रीम्—दधातीति धात्री, सामान्या चासौ धात्रीति सामान्यधात्रीम् (कर्मधा०) ताम्।

विशेष—यहाँ कवि ने मुख्यतः सरयू नदी में सामान्य माता के सादृश्य का प्रतिपादन किया है अतः उपमालंकार है। क्योंकि सरयू उपमेय, सामान्य धात्री उपमान, इव उपमावाचक एवं उत्सङ्ग सुखोचितानां तथा पयोभिः शब्द साधारण धर्मवाची हैं अतः पूर्णोपमा है।

पयोभिः शब्द जल और दुग्ध दोनों अर्थों का वाचक होने से श्लिष्ट है। साधारण धर्म श्लिष्ट होने पर श्लेषोपमा होती है अतः यहाँ श्लेषयुक्त उपमा है।

सैकतोत्सङ्ग पद में सैकत में उत्सङ्ग का आरोप करने के कारण रूपक है। यह रूपक मुख्य उपमा का सहायक है अतः उपमा का अङ्गरूप है फलतः रूपक और उपमा का अङ्गाङ्गिभाव संकर अलंकार है।

सामान्यधात्री का अर्थ सामान्य माता है । वस्तुतः जन्मदात्री माँ और पालयित्री माँ के रूप में दो प्रकार की होती हैं । सरयू नदी अपनी तटभूमि एवं जल से अयोध्या के राजाओं का लालन पालन करती रही है इसलिए वह पालयित्री माँ के रूप में थी हिन्दी में इसे धाय मां की संज्ञा दी जाती है । विश्वकोश से भी धाय माँ के स्वरूप की पुष्टि होती है ।

"धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु" ।

छन्द—इन्द्रवज्रा ।

प्रसंग—सरयू नदी की तरङ्गों में भुजालिङ्गन की भावना करते हुए राम सीता से कहते हैं—

सेयं मदीया जननीव तेन—
मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ।
दूरे वसन्तं शिशिरानलैर्मां
तरंगहस्तैरुपगूहतीव ॥६३॥

अन्वय—मदीया जननी इव मान्येन तेन राज्ञा वियुक्ता सा इयं सरयूः दूरे वसन्तं मां शिशिरानिलैः तरङ्गहस्तैः उपगूहति इव ।

शब्दार्थ—मदीया = मेरी (राम की) जननी इव = माता के समान । मान्येन = पूज्य (सम्माननीय) । तेन = उन । राज्ञा = राजा दशरथ से । वियुक्ता = विरहित (रहित) । सा इयं = वह यह, दशरथ की पत्नी रूपा इस समय विरहिणी । सरयूः = सरयू नदी । दूरे वसन्तम् = बहुत दूर रहने वाले । माम् = मुझ राम का । शिशिरानिलैः = शीतल वायु वाले । तरङ्गहस्तैः = लहर रूपी हाथों से । उपगूहति इव = मानो आलिङ्गन कर रही है ।

हिन्दी अनुवाद—मेरी माता (कौशल्या) के समान, सम्माननीय राजा दशरथ से (इस समय) विरहिता वही यह सरयू नदी (बहुत दिनों से) बहुत दूर रहने वाले मुझ राम का शीतल हवा से युक्त अपने तरंग रूपी हाथों से मानो आलिङ्गन कर रही है अर्थात् वात्सल्य भाव से मुझे गले लगा रही है ।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं कि यह सरयू नदी इस समय उसी प्रकार उस सम्मान्य राजा दशरथ से विरहित है जैसे मेरी जननी कौशल्या । अतएव दूर रहने वाले मुझे यह वात्सल्यभाव से अपने तरंग रूपी हाथों से मानो मेरा आलिंगन कर रही है ।

संस्कृत टीका—मदीया मामकीना जननीव माता कौशल्या सदृशा मान्येन सम्माननीयेन तेन राज्ञा दशरथेन वियुक्ता विरहिता सेय पूर्वं पतियुक्ता संप्रति विधवा सरयूः एतन्नामिका सिन्धुः (नदी) दूरे वसन्तं चिरात् विप्रकृष्टदेशे निवासिनं (साम्प्रतमत्रागतम्) मां रामम् शिशिरानिलैः—शीतवातैः तरङ्गहस्तैः वीचिरूपैः करैः उपगूहतीव आलिंगतीव इत्युत्प्रेक्षा।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति सीते! मदीया माता कौशल्येव पूज्येन पित्रा राज्ञा दशरथेन विरहिता सती इयं सरयूः अयोध्यातः दूरे वसन्तं मां पुत्रवात्सल्येन स्वतरङ्गहस्तै रालिङ्गतीव।

व्याकरण—मदीया—अस्मद्+छ (ईय्)+टाप्। वियुक्ता—वि+युज्+क्त+टाप्। वसन्तम्—वस्+शतृ+(द्वितीया एक० व०)। शिशिरानिलैः—शिशिरः अनिलः येषां तैः (बहु०)। तरंगहस्तैः—तरंगा एव हस्तास्तैः। उप+गुह् (आलिङ्गनार्थक)+लट् (प्रथम० एक० व०)।

विशेष—यहाँ जननीव में उपमा अलंकार एवं उपगूहतीव में उत्प्रेक्षा अलंकारों की परस्पर निरपेक्ष स्थिति होने के कारण संसृष्टि अलंकार है।

जैसे किसी माँ का बेटा बहुत दिनों बाद कहीं दूर विदेश में रहकर लौटा हो तो माँ उसको गोद में भरकर स्नेह करती है, उसी प्रकार यह सरयू नदी अपनी शीतल लहर रूपी भुजाओं से मानो राम का आलिगन कर रही है।

छन्द—उपजाति है।

प्रसंग—"हनूमान से सूचना प्राप्त कर भरत राम की अगवानी करने के लिए सेना सहित आ रहे हैं" इस बात को कवि राम के शब्दों में कहता है—

विरक्तसन्ध्याकपिशं पुरस्ता—
द्यतो रजः पार्थिव मुज्जिहोते।
शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः
प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः ॥६४॥

अन्वय—विरक्तसन्ध्याकपिशम् पार्थिवं रजः पुरस्तात् यतः उज्जिहीते हनूमत्कथितप्रवृत्तिः भरतः ससैन्यः माम् अभ्युपैति (इति) शंके।

शब्दार्थ—विरक्तसन्ध्याकपिशम्=विशेष रूप से लाल वर्णवाली संध्या के समान रक्त वर्णवाली। पार्थिवम्=पृथ्वी की। रजः=धूलि। पुरस्तात्

आगे से। यतः=जो। उज्जिहीते=उठ रही है। हनूमत्कथितप्रवृत्तिः=हनूमान के कथनानुसार मेरे आगमन वृत्तान्त को जानकर। भरतः=कैकेयी पुत्र भरत। ससैन्यः=सेना के साथ। माम्=मुझ राम को। अभ्युपैति=अगवानी करने आ रहे हैं। शंके=अनुमान करता है।

हिन्दी अनुवाद—(राम सीता से कहते हैं) विशेष रूप से लाल वर्ण वाली सन्ध्या के समान रक्त वर्णा, पृथ्वी की धूल सामने जो उठ रही है। (उससे) हनूमान के कथनानुसार मेरे आगमन वृत्तान्त को जानकर भरत जी सेना के सहित मेरी अगवानी करने आ रहे हैं (ऐसा मैं) अनुमान करता हूँ।

भावार्थ—राम कहते हैं सीते ! यतः अतिरक्तवर्ण पृथिवी की धूलि जो सामने उठ रही है, इससे मैं अनुमान करता हूँ, कि हनूमान से मेरे आगमन का वृत्तान्त जानकर भरत सेना सहित स्वागत करने आ रहे हैं।

संस्कृत टीका—विरक्ता विशेषेण लोहितवर्णा चासौ सन्ध्या सा इव कपिशं ताम्रवर्णं विरक्तसन्ध्याकपिशम्, पृथिव्या इदं पार्थिवं, पृथ्वीसम्बन्धि रजो धूलिः पुरस्तादग्रे सम्मुखमित्यर्थः यतः यस्मात् कारणात् उज्जिहीते उद्गच्छति तस्मात् हनुमता पवनपुत्रेण कथिता उक्ता प्रवृत्तिः मदागमनवृत्तान्तः यस्मै सः हनूमत्कथितप्रवृत्तिः भरतः कैकेयीनन्दनः ससैन्यः सैनिकैः सहितः सन् मामग्रजं रामं प्रत्युद्गतः स्वागतार्थं समागत इति शंके तर्कयाभि।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति, सीते ! यतः अतिरक्तवर्णा पृथिव्या धूलिरग्रे समुद्गच्छति, अतोऽनुमीयते यत् हनुमन्मुखान्ममागमनवृत्तान्तमुपलभ्य ससैन्यो भरतो मां प्रत्युद्गच्छति।

व्याकरण—विरक्तसन्ध्याकपिशम्—विशेषेण रक्ता विरक्ता, विरक्ता चासौ सन्ध्या विरक्तसन्ध्या सा इव कपिशम् (कर्मधा०)। पार्थिवम्—पृथिव्या इद पार्थिवम्—पृथिवी+अण् (भावार्थक)। उज्जिहीते—उद्+ओहाङ्+लट् प्र० पु० एक वचन (आत्मनेपदी)। हनूमत्कथितप्रवृत्तिः—हनुः अस्यास्तीति हनूमान् तेन कथिता प्रवृत्तिः यस्मै सः (तत्पु० पुरुषगर्भित बहु०)। प्रत्युद्गतः—प्रति+उद्+गम्+क्त।

विशेष—यहाँ हनुमान जी द्वारा सूचना पाकर भरत राम की अगवानी सेना के साथ करने जा रहे हैं। इसका वर्णन किया गया है। विरक्त सन्ध्या कपिशम् में उपमा तथा धूलि को देखकर भरत के आगमन का अनुमान करने के कारण अनुमान अलंकार है। छन्द उपजाति है।

प्रसंग—सीता के समर्पण की भाँति भरत भी राज्यलक्ष्मी राम को सौंप देंगे इसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

अद्धा श्रियं पालितसंगराय
प्रत्यर्पयिष्यत्यनधां स साधुः ।
हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन्
संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे ॥६५॥

अन्वय—साधुः सः पालितसंगराय मृधे खरादीन हत्वा निवृत्ताय मे लक्ष्मणः संरक्षिताम् अनघां त्वाम् इव श्रिय प्रत्यर्पयिष्यति अद्धा ।

शब्दार्थ - साधुः सः=सज्जन वह भरत । पालितसंगराय=प्रतिज्ञा का पालन करने वाले । मृधे=युद्ध में । खरादीन् खरदूषण आदि राक्षसों को । हत्वा=मार कर । निवृत्ताय=लौटे हुए । मे=मेरे (राम के) लिए । लक्ष्मणः=लक्ष्मण ने । संरक्षिताम्=रक्षा की गई । अनघाम्=निष्पाप (निर्दोष) त्वाम् इव=तुम्हारे (सीता के) समान । श्रियम्=राज्य-लक्ष्मी को । प्रत्यर्पयिष्यति=लौटा देंगे या सौंप देंगे । अद्धा=निश्चय ही ।

हिन्दी अनुवाद—हे सीते ! प्रतिज्ञा का पालन करने वाले, युद्ध में खरदूषण आदि को मार कर लौटे हुए मेरे लिए लक्ष्मण ने संरक्षित निर्दोष तुमको जिस प्रकार मुझे सौंपा था, उसी प्रकार वह सज्जन भरत मुझे संरक्षित निर्दोष राज्यलक्ष्मी को सौंप देंगे यह निश्चय है ।

भावार्थ – राम सीता से कहते हैं, देवि ! सत्स्वभाव वाले भरत, अब प्रतिज्ञा पालन कर चुकने वाले मुझको, अपने द्वारा संरक्षित एवं निर्दोष राज्यलक्ष्मी को उसी प्रकार समर्पित कर देंगे, जैसे लक्ष्मण ने, खर आदि राक्षसों का वध करने वाले मुझे संरक्षित एवं निर्दोष तुम्हें समर्पित कर दिया था ।

संस्कृत टीका—साधुः सज्जनः सः भरतः पालितसंगराय रक्षितपितृ प्रतिज्ञाय, मृधे-युद्धे खरादीन् जनस्थानमकान् राक्षसान् हत्वा व्यापाद्य निवृत्ताय परावृत्ताय मे रामाय लक्ष्मणः सुमित्रानन्दनः संरक्षिताम् सम्यक् पालिताम् अनघां निर्दोषां त्वामिव सीतामिव श्रियमयोध्यायाः राज्यलक्ष्मीं प्रत्यर्पयिष्यति समर्पयिष्यतीति अद्धा सत्यम् निश्चयो वा ।

अर्थात् यथा लक्ष्मणन संरक्षिता निर्दोषा सीता रामाय समर्पिता तथा भरतोऽपि साम्प्रतं निर्दोषां संरक्षितां राज्यलक्ष्मीं समर्पयिष्यतीति सत्यम् ।

संस्कृत सरलार्थ—रामः कथयति सीते ! साधुस्वभावो भरतो रक्षितपितृप्रतिज्ञाय मह्यम्, निर्दोषाम् भोगाभावादनुच्छिष्टाम् अपितु अद्यावधि पालितां राज्यश्रियं, युद्धे खरादिराक्षसान् हत्वा परावृत्ताय मह्यम् तथैव समर्पयिष्यति यथा लक्ष्मणः राक्षसेभ्यः संरक्षिताम् सर्वदोषरहितां कल्याणमयीं भवतीं मह्यम् समर्पयत् ।

व्याकरण—पालितसंगराय—पालितः संगरो येन तस्मै (बहु०)। हत्वा—हन्+क्त्वा । निवृत्ताय—नि+वृत्+क्त (चतु० ए० व०)। संरक्षिताम्—सम्यक् रक्षिता संरक्षिता ताम् (गति समास) अनघाम्—अविद्यमानं अघं यस्याः सा ताम् (नञ् बहु०) अद्धा—"तत्वे त्वद्धाऽञ्जसा द्वयम् इत्यमरः ।

विशेष—इस श्लोक में कवि ने राज्यलक्ष्मी की सीता से उपमा दी है। इससे सीता की पवित्रता भी स्वतः ही प्रकट हो जाती है। इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं इन्द्रवज्रा छन्द है।

प्रसंग—अगवानी के लिए आते हुए भरत का वर्णन करते हुए राम कहते हैं—

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः,
पश्चादवस्थापितवाहिनीकः ।
वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा,
मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति ॥६६॥

अन्वय—पदातिः चीरवासाः असौ भरतः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः गुरुं पुरस्कृत्य वृद्धैः अमात्यैः सह अर्घ्यपाणिः सन् माम् अभ्युपैति ।

शब्दार्थ—असौ=यह (भरत) । पदातिः=पैदल । चीरवासाः=वल्कलवस्त्रधारी । भरतः=कैकेयी पुत्र । पश्चादवस्थापितवाहिनीकः=सेना को पीछे रखकर । गुरुम्=वशिष्ठ को । पुरस्कृत्य=आगे रखकर । वृद्धैः=वृद्ध । अमात्यैः=मन्त्रियों के । सह=साथ । अर्घ्यपाणिः=हाथों में पूजा की सामग्री लिए हुए । माम्=मुझ राम की ओर । अभ्युपैति=आ रहे हैं ।

हिन्दी अनुवाद—पैदल चलने वाले, वल्कलवस्त्र पहनें हुए, ये भरत जी

सेना को पीछे रखकर गुरु (वशिष्ठ) को आगे करके वृद्ध मन्त्रियों के साथ हाथों में पूजा की सामग्री लिए हुए मेरी (राम की) ओर आ रहे हैं।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं देवि ! वल्कलधारी एवं पैदल चलने वाले भरत, सेना को पीछे छोड़कर, गुरु वशिष्ठ को आगे करके, वृद्ध मन्त्रियों के साथ, अर्घ्य को हाथ में लिए हुए मेरी ओर आ रहे हैं।

संस्कृत टीका—पदातिः=पदचारी चीरवासाः=वल्कलवसनः असौ=विप्रकृष्टस्थः भरतः=कैकेयीसुतः। पश्चाद् पृष्ठतः अवस्थापिता संस्थापिता वाहिनी येन सः पृष्ठस्थापितसेनः गुरुं वशिष्ठञ्च पुरस्कृत्याग्रतो विधाय वृद्धैः प्रवयोभिरमात्यैः मन्त्रिभिः सहितः अर्घ्यपाणिः करस्थापितपूजाद्रव्यः माम् रामं प्रति अभ्युपैति सम्मुखमागच्छति ।

संस्कृत सरलार्थ—भरतं स्वाङ्गुल्या निर्दिशन् रामः कथयति, सीते ! पादचारी वल्कलवसनः असौ भरतः सेनां पृष्ठतः संस्थाप्य, गुरुं वसिष्ठञ्चाग्रतो विधाय प्रवयोभिर्मन्त्रिभिः सह करस्थापितार्घ्यद्रव्यः ममाभिमुखमायाति ।

व्याकरण—पदातिः—पदाभ्याम् अततीति पदातिः (उपपद समास) इस अर्थ में पाद उपपद अत् (सातत्य गमने) धातु से इण् प्रत्यय करने पर पाद को पद आदेश होकर पदाति शब्द बना है। चीरवासाः—चीरे वाससी यस्य सः (बहुः) पश्चादवस्थापितवाहिनीकः—पश्चात् यथा स्यात्तथा अवस्थापिता वाहिनी येन सः (बहु०) यहाँ समासान्त कप् प्रत्यय हुआ है।

अमरकोश के अनुसार ध्वजायुक्त सेना वाहिनी कहलाती है जैसे—ध्वजिनी वाहिनी सेना पृतनाऽनीकिनी चमूः" पुरस्कृत्य—पुरः+कृ+क्त्वा (ल्यप्)। अर्घ्यपाणिः—अर्घार्थम् इति अर्घ्यम् अर्घ्यं पाणौ यस्य सः (बहु०)। अभ्युपैति—अभि+उप+इण् लट् तिप्। अभ्युप+एति+(एत्येधत्यूठ्सु) से वृद्धि सन्धि ।

विशेष—राम के वनगमन से लेकर आगमन तक भरत ने राज्यलक्ष्मी का पालन पूर्णतः विरक्त भावना से किया था उन्होंने इन १४ वर्षों में न तो पैरों में जूते खड़ाऊँ आदि पहने थे और न ऊनी सूती आदि वस्त्र ही पहने थे, ऋषितुल्य छाल के (वल्कल) वस्त्र ही धारण करते थे।

भारतीय संस्कृति के अनुसार किसी महापुरुष आदि से मिलने के लिए जाते समय गुरुजनों एवं सेना को साथ लेकर जाना चाहिए वही आचरण

भरत ने किया। इसमें उपजाति छन्द है।

प्रसंग—राम सीता से भरत की राजलक्ष्मी के प्रति विरक्त भावना का चित्रण करते हुए कहते हैं—

पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः
श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्र—
मभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम् ।।६७।।

अन्वय—पित्रा विसृष्टाम् अङ्कगताम् अपि श्रियं युवा अपि मदपेक्षया अभोक्ता यः इयन्ति वर्षाणि तया सह उग्रम् आसिधारव्रतम् अभ्यस्यति इव।

शब्दार्थ—पित्रा=पिता दशरथ के द्वारा। विसृष्टाम्=दी गई। अङ्कगताम्=गोद में आई हुई। अपि=भी। श्रियं=राजलक्ष्मी को। युवा अपि युवक होने पर भी। मदपेक्षया=मेरे कारण (मेरे प्रति भक्ति के कारण)। अभोक्ता=भोग न करने वाले। यः=भरत जी। इयन्ति=इतने। वर्षाणि =१४ वर्षों तक। तया सह=उस राजलक्ष्मी के साथ। उग्रम्=अति कठिन (भयंकर) आसिधाराव्रतम्=तलवार की धार पर चलने वाले असिधारा व्रत का। अभ्यस्यति इव=मानो पालन-सा कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—पिता दशरथ के द्वारा दी गई, गोद में आई हुई भी राजलक्ष्मी को, (स्वयं) युवक होने पर भी मेरे कारण भोग न करने वाले भरत जी इन १४ वर्षों तक उस राजलक्ष्मी के साथ (रहते हुए) भयंकर असिधारा व्रत का मानो पालन सा करते रहे हैं।

भावार्थ—राम सीता से कहते हैं देवि! पिता दशरथ के द्वारा प्रदत्त एवं स्वयं ही गोद में आई हुई भी राज्यलक्ष्मी का, युवक अर्थात् समर्थ होने पर भी, मेरे प्रति श्रद्धा के कारण, न भोग करने वाले, भरत, इन चौदह वर्षों तक उस राज्यलक्ष्मी के साथ मानो उग्र आसिधाराव्रत का पालन-सा करते रहे हैं।

संस्कृत टीका—पित्रा राज्ञा दशरथेन विसृष्टाम् प्रदत्ताम् अङ्कगताम् उत्सङ्गप्राप्तामपि श्रियं राज्यलक्ष्मीं युवाऽपि तरुणः सन्नपि मदपेक्षया मयि भक्त्या अभोक्ता अनुपयोक्ता यो भरतः इयन्ति एतावन्ति चतुर्दश वर्षाणि पर्यन्तं तया राजलक्ष्म्या सह उग्रमति दुष्करम् आसिधाराव्रतम् तीक्ष्णकृपाणधारासंचालनात्मकमसिधाराव्रतम् अभ्यस्यतीव आचरतीव।

संस्कृत सरलार्थ—भरतस्य विरक्तिभावस्य तपस्विव्रतस्य च महत्वं निर्दिशन् रामः कथयति देवि ! पितृप्रदत्तां स्वयमङ्कागतामपि राज्यलक्ष्मीं युवा अपि भूत्वा मदपेक्षया अभोक्ता अयं भरतः चतुर्दश वर्षाणि यावत् तया सह दुश्चर मासिधारं नाम व्रतं आचरतीव।

व्याकरण—विसृष्टाम्—वि+सृज्+क्त+टाप्। अङ्कगताम्—अङ्कं गता इति अङ्कगता ताम् (द्वितीया तत्पु०)। मदपेक्षया—मम अपेक्षा मदपेक्षा तया (ष० तत्पु०)। अभोक्ता—भुनक्तीति भोक्ता, न भोक्ता अभोक्ता (नञ्) भोक्ता—भुज्+तृन्। वर्षाणि में 'कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे' सूत्र के अनुसार द्वितीया विभक्ति हुई है। आसिधारव्रतम्—असेः धारा असिधारा (ष० तत्पु०) असिधारायाः इदम् आसिधारम् आसिधारं च तद् व्रतम् आसिधारव्रतम्।

विशेष—

युवा युवत्या सार्धं यन्मुग्धभर्तृवदाचरेत्।
अन्तर्निवृत्तसङ्गः स्यादासिधारव्रतं हि तत्॥"

इस यादवोक्ति के अनुसार युवा-युवती का एक साथ रहते हुए पति पत्नी-भाव रखते हुए परस्पर आसक्ति और भोग न करना असिधाराव्रत होता है। यहाँ युवक भरत और स्त्री रूपा राज्यलक्ष्मी दोनों में पति-पत्नी भाव होते हुए भी भरत का उसे भोग न करना, असिधारा व्रत के पालन सदृश है।

यहाँ राज्यलक्ष्मी ओर भरत के व्यवहार से युवा युवती के व्यवहार की प्रतीति होने के कारण उसमें असिधाराव्रत आचरण रूप क्रिया की संभावना की गई है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। छन्द उपजाति।

प्रसंग—राम का पुष्पक विमान राम की इच्छा के अनुरूप भूमि पर उतर गया इसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीया—
मिच्छां विमानमधि देवतया विदित्वा।
ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभि—
रुद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतानुगाभिः॥६८॥

अन्वय—दाशरथौ एतावदुक्तवति, तदीयाम् इच्छाम् अधिदेवतया विदित्वा सविस्मयाभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः उद्वीक्षितं विमानं ज्योतिष्पथात् अवततार।

शब्दार्थ—दाशरथौ=दशरथ पुत्र राम के। एतावत् उक्तवति=इतना कहने पर। तदीयाम्=उन राम की। इच्छाम्=इच्छा को। अधिदेवतया=विमान की अधिष्ठात्री देवी के द्वारा। विदित्वा=जानकर सविस्मयाभि: आश्चर्य युक्त। भरतानुगाभि:=भरत का अनुसरण करने वाली। प्रकृतिभि: =प्रजाओं के द्वारा। उद्वीक्षितम्=ऊपर देखा जाता हुआ। विमानम्=पुष्पक विमान। ज्योतिष्पथात्=आकाश मार्ग से। अवततार=नीचे उतरा।

हिन्दी अनुवाद—दशरथ पुत्र राम के ऐसा कहने पर, उनकी इच्छा को (भूमि पर विमान उतरने की इच्छा को) विमान की अधिष्ठात्री देवता से जानकर, भरत के अनुगामी प्रयोजनों के द्वारा विस्मयपूर्वक देखा जाता हुआ पुष्पक विमान आकाश से भूमि पर उतरा।

भावार्थ—जब राम ने सीता से भरत के विषय में यह सब कहा, तब राम की इच्छा को जानकर अर्थात् विमानाधिष्ठात्री देवी के प्रभाव से यह जानकर कि राम यहाँ उतरना चाहते हैं, वह पुष्पक विमान वहाँ उतर गया, उस समय भरत के साथ आने वाले प्रजाजन विस्मयपूर्वक विमान को उतरता हुआ देख रहे थे।

संस्कृत टीका—दाशरथौ दशरथस्यात्मजे रामचन्द्रे एतावत् पूर्वोक्तम् उक्तव्रति कथिते सति तदीयां रामसम्बन्धिनीम् इच्छामभिलाषाम् अधिदेवतया विमानाधिष्ठातृदेवताप्रभावेण विदित्वा ज्ञात्वा भरतस्य कैकेयिसुतस्यानुगामि: पृष्ठानुसारिणीभि: प्रकृतिभि: सविस्मयाभि: आश्चर्यचकिताभि: यथास्यात्तथा-उद्वीक्षितम् ऊर्ध्वं दृष्टं सत् विमानम् ज्योतिषां नक्षत्राणां पथात् मार्गात् आकाशादित्यर्थ: अवततार भूमण्डलमवातरत् इत्यर्थ:।

संस्कृत सरलार्थ—यदा राम: भरतविषये पूर्वोक्तप्रकारेण सीता मकथयत् तदा विमानाधिष्ठतदेवताप्रभावेण रामस्यावतरणेच्छा मभिज्ञाय भरतानुगामिभि: प्रजाजनै रुद्वीक्ष्यमाणं तत्पुष्पकविमानम् आकाशमार्गात् अवततार।

व्याकरण—दाशरथौ—दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथि: तस्मिन् दशरथ शब्द से अपत्यार्थ में इञ प्रत्यय आदिवृद्धि:। एतावत्—एतद्+मतुप् (परिमाण अर्थ में)। उक्तवति—वच्+क्तवतु (सप्तमी) तदीयाम्—तद्+छ (ईय्)+टाप् (द्वितीया)। अधिदेवतया—दीव्यतीति देव:, देव एव देवता, अधिका देवता अधिदेवता, तया (गात समास)। सविस्मयाभि:—विस्मयेन

सहिताः ताभिः । भरतानुगाभिः—अनु गच्छन्तीति अनुगाः भरतस्यानुगाः भरतानुगा ताभिः (ष० तत्पु०)। उद्वीक्षितम -उद्+वि+ईक्ष्+क्त। ज्योतिष्पथात्—ज्योतिषां पन्थाः तस्मात् (ष० तत्पु०)। अवततार—अव+तॄ+लिट् (प्रथ० पु० एक०)।

विशेष—पुष्पक विमान स्वचालित था। वह मानसिक भावनाओं के आधार पर ही संचरण करता था ऐसी मान्यता है। राम ने भरत से मिलने और उनके सत्कार को स्वीकार करने की इच्छा की इस बात को उसने स्वाधिष्ठातृ देवता के माध्यम से जान लिया अतः आकाश से नीचे भूमि पर उतर गया।

दशरथ का नाम अन्वर्थक था। "दशसु (दिक्षु) रथो यस्य सः दशरथः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार दशरथ का रथ दशों दिशाओं में समान गति से चलता था और सर्वत्र अप्रतिहतगति था यह विदित होता है। अयोध्या के निवासियों द्वारा स्वचालित विमान कभी न देखा गया था अतः उनमें आश्चर्य का उदय होना स्वाभाविक है।

छन्द—इस श्लोक में वसन्त तिलका छन्द है। लक्षण—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगा।

प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण, दो गुरु होते हैं।

रूप— ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

प्र...ग—'विभीषण और सुग्रीव के साथ राम पुष्पक विमान से उतरे' इस विषय में कवि कहता है—

तस्मात्पुरस्सरविभीषणदर्शितेन
सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः।
यानादवातरद् दूरमहीतलेन
मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः ॥६९॥

अन्वय—सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः रामः पुरस्सरविभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेन भङ्गिरचितस्फटिकेन मार्गेण तस्मात् यानात् अवातरत्।

शब्दार्थ—सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः = सेवा में निपुण वानरराज सुग्रीव के हाथ के सहारे। रामः=भगवान् राम। पुरस्सरविभीषणदर्शितेन=

=अग्रगामी विभीषण द्वारा निर्दिष्ट। अदूरमहीतलेन=समीपस्थ भूमितल वाले। भङ्गिरचितस्फटिकेन=बीच में स्फटिक मणियों से जटित। मार्गेण= सोपान मार्ग से (सीढ़ियों से)। तस्मात्=उस। यानात्=पुष्पक विमान से। अवातरत्=उतरे।

हिन्दी अनुवाद—सेवा में निपुण वानरराज सुग्रीव के हाथ का सहारा लिए हुए राम अग्रगामी विभीषण द्वारा निर्दिष्ट समीपस्थ भूमि तल वाले, बीच-बीच में स्फटिक मणियों से जटित सोपान मार्ग से उस पुष्पक विमान से उतरे।

भावार्थ—कवि कहता है कि जब पुष्पक विमान भूमि पर उतरा, तब सेवानिपुण विभीशण ने राम को उतरने के लिए अपने हाथ का सहारा दिया, विभीषण ने आगे बढ़ कर मार्ग दिखलाया, और तब राम भूमि के पास ही स्फटिकमणिजटित सौपान मार्ग से नीचे उतरे।

संस्कृत टीका— सेवायां परिचरणे विचक्षणेन निपुणेन हरीश्वरेण वानर-राजेन सुग्रीवेण दत्तहस्तः दत्तहस्तावलम्बः सेवाविचक्षणहरीश्वदत्तहस्तः, रामः रामचन्द्रः पुरस्सरेणाग्रगामिना विभीषणेन रावणानुजेन दर्शितेन निर्दिष्टेन पुरस्सरविभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेनासन्नभूतलेन, भङ्गिरचितस्फटिकेन भङ्गिभिः प्रकारविशेषैः रचिताः, जटिताः स्फटिकाः शुभ्राः स्फटिकमणयो यस्मिन् तेन भङ्गिरचितस्फटिकेन मार्गेण पथा तस्मात् पूर्ववर्णितात् यानात् पुष्पकविमानात् अवातरत् भूमाववतीर्णः।

संस्कृत सरलार्थ—कविः कथयति, भूमिसमीपमागते विमाने, परिचरण-निपुणसुग्रीवप्रदत्तहस्तावलम्बः रामः अग्रसरविभीषणप्रदर्शितेनआसन्नभूतलेन विच्छित्तिनिर्मितस्फटिकेन पथा, तस्माद् विमानादवतीर्णः।

व्याकरण—सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः सेवायां विचक्षणः सेवाविच-क्षणः (सप्त० तत्पु०) हरीणामीश्वरः (ष० तत्पु०) हरीश्वरः सेवाविचक्षण-श्चासौ हरीश्वरः सेवाविचक्षणहरीश्वरः तेन (कर्मधा०) दत्तो हस्तो यस्य सः सेवाविचक्षणेन हरीश्वरेण दत्तहस्तः (तृ० तत्पु०)। पुरस्सरविभीषणदर्शितेन —पुरः सरतीति पुरः सरः पुरस्सरचासौ विभीषणः (कर्मधा०) पुरस्सर-विभीषणः तेन दर्शितः तेन-पुरस्सरविभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेन—न दूरम् अदूर (नञ् तत्पु०) मह्याः तलम् महीतलम् (ष० तत्पु०) अदूरं महीतलं यस्य तेन अदूरमहीतलेन (बहु०)। भङ्गिरचितस्फटिकेन—भङ्गिभिः रचिताः

स्फटिकाः यस्मिन् तत् (बहु०) तेन (तृ० तत्पु०)। यान—या+ल्युट्। अवातरत्—अव+तृ+लङ् (प्र० पु० एक०)।

विशेष—पुष्पक विमान की रत्नजटित सीढ़ियों से भगवान राम उतरे। यहां सुग्रीव के हाथ का सहारा लेने से सख्यभाव की प्रतीति तथा विभीषण को आगे कर उससे मार्ग निर्देश प्राप्त करने में विभीषण के प्रति अतिविश्वास का भाव ध्वनित होता है।

इस श्लोक में भी वसन्ततिलका छन्द है।

प्रसंग—"राम ने गुरु को प्रणाम कर भरत को गले लगाया" इसका भावुकतापूर्ण वर्णन करते हुए कवि कहता है—

इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य
स भ्रातरं भरतमर्घ्यपरिग्रहान्ते।
पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ
तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके ॥७०॥

अन्वय—प्रयतः सः इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रणम्य अर्घ्यपरिग्रहान्ते पर्यश्रुः भ्रातरं भरतं अस्वजत् तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके मूर्धनि उपजघ्रौ च।

शब्दार्थ—प्रयतः=पवित्र एवं तत्पर। सः= रामचन्द्र ने। इक्ष्वाकुवंश गुरवे=इक्ष्वाकु कुल के गुरु वशिष्ठ को। प्रणम्य=प्रणाम करके। अर्घ्य-परिग्रहान्ते=अर्घ्य को स्वीकार करने के पश्चात्। पर्यश्रुः=आँसुओं से पूर्ण होकर। भ्रातरं=भाई। भरतम्=भरत का। अस्वजत=आलिगन किया। तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके=राम के प्रति भक्ति से पिता के द्वारा दिये गये राज्य के महाभिषेक का त्याग करने वाले। मूर्धनि=भरत के सिर को। उपजघ्रौ=सूँघा।

हिन्दी अनुवाद—पवित्र राम ने इक्ष्वाकुवंश के कुलगुरु वशिष्ठमुनि को प्रणाम करके भरतकृत पूजा को स्वीकार करने के पश्चात्, आँसुओं से भरे हुए उन्होंने भाई भरत का आलिगन किया और पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य के महाभिषेक का राम के प्रति भक्ति होने के कारण परित्याग करने वाले भरत के सिर को सूँघा।

भावार्थ—विमान से उतर कर पवित्रात्मा राम ने सर्वप्रथम इक्ष्वाकु कुल

के गुरु वशिष्ठ को प्रणाम करके, भरत द्वारा कृत पूजाविधि को स्वीकार करने बाद, आनन्दाश्रपूरित नेत्र होकर उन्होंने भरत के उस मस्तक को सूंघा जिसके द्वारा रामभक्तिवशात् पितृराज्य के महाभिषेक का त्याग कर दिया गया था।

सस्कृत टीका—प्रयतः पवित्रः सः रामः इक्ष्वाकुवंशगुरवे इक्ष्वाकुकुलगुरवे वशिष्ठाय प्रणम्य नमस्कृत्यार्घ्यपरिग्रहान्ते भरतकृतपूजास्वीकारावसाने, पर्यश्रुः परिगतानन्दवाष्पः सन् भ्रातर मनुजं भरतं कैकेयीसुतं अस्वजतालिङ्गितवान्। तद्भक्त्या रामंप्रति भक्तिभावनया अपोढः परित्यक्तः पितुः राज्यस्य महाभिषेकः येन तस्मिन् तादृशे मूर्धनि भरतशिरसि उपजघ्रौ चाघ्रातवांश्च।

संस्कृत सरलार्थ—विमानादवतरणानन्तरं पवित्रात्मा रामः सर्वप्रथमम् इक्ष्वाकुवंशाचार्याय वसिष्ठाय प्रणिपत्य, आनन्दाश्रुपूरितमुखः सन् भरतकृतपूजाविधिं स्वीकृत्य, रामभक्तिपरित्यक्तपितृराज्यमहाभिषेके भरतमस्तके समाजिघ्रत्।

व्याकरण–प्रयतः—प्र+यम्+क्त। इक्ष्वाकुवंशगुरवे—इक्ष्वाकोः वंशः इक्ष्वाकुवंशः (ष० तत्पु०) तस्य गुरवे (ष० तत्पु०) प्रणम्य—प्र+नम्+क्त्वा (ल्यप्)। अर्घ्यपरिग्रहान्ते–अर्घार्थं अर्घ्यं, अर्घ्यस्य परिग्रहः अर्घ्यपरिग्रहः तस्यान्ते (ष० तत्पु०) पर्यश्रुः—परिगतानि अश्रूणि यस्य सः (बहु०)। तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके, तस्मिन् भक्तिः तद्भक्तिः (सप्त० तत्पु०) तद्भक्त्या अपोढः, तद्भक्त्यपोढः, पितुः राज्यं पितृराज्यम् (ष० तत्पु०) महांश्चासौ अभिषेकः, महाभिषेकः, पितृराज्ये महाभिषेकः पितृराज्यमहाभिषेकः (सप्त० तत्पु०) तद्भक्त्यपोढः पितृराज्यमहाभिषेको येन सः तस्मिन् (बहु०)। उपजघ्रौ—उप+घ्रा+(लिट् प्र० पु० एक०)।

विशेष—राम ने शिष्टाचार का पालन करते हुए सर्वप्रथम गुरु को प्रणाम किया तदनन्तर भाई भरत की पूजा स्वीकार कर आलिंगन किया और शिर सूँघा। भारतीय शिष्टाचार के अनुसार चिर प्राप्त पुत्र व छोटे भाई का शिर सूँघा जाता है।

भरत ने पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य को भाई राम के प्रति अतिश्रद्धा के कारण स्वीकार नहीं किया और स्वयं एक सेवक की भांति १४ वर्षों तक राम की धरोहर समझ कर राज्य का संचालन करते रहे। उस भरत के

मस्तक को राम ने सूँघा यह भाव अभिप्रेत है। इस श्लोक में भी वसन्त तिलका छन्द है।

प्रसंग—राम ने वृद्ध मन्त्रियों के प्रणाम को स्वीकार कर उनसे कुशल-क्षेम पूछा—

श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रयांश्च
प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान्।
अन्वग्रहीत् प्रणमतः शुभदृष्टिपातै-
र्वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा ॥७१॥

अन्वय—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान् प्ररोहजटिलान् प्लक्षान् इव प्रणमतः मन्त्रिवृद्धान् च शुभदृष्टिपातैः वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा अन्वगृहीत्।

शब्दार्थ—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान्=दाढ़ी मूँछ आदि के बढ़ जाने से विकृत मुख वाले। प्ररोहजटिलान्=शाखाओं से निकली जटाओं से जटिल। प्लक्षान् इव=वरगद (वट) के वृक्षों के समान। प्रणमतः=प्रणाम करने वाले। मन्त्रिवृद्धान्=वृद्ध मन्त्रियों को। शुभदृष्टिपातैः=मङ्गलमय अवलोकनों से। वार्तानुयोगमधुराक्षरया=कुशल क्षेम आदि के प्रश्न से मधुर वर्णों वाली। वाचा=वाणी से। अन्वग्रहीत्=अनुगृहीत किया।

हिन्दी अनुवाद—(राम ने) दाढ़ी मूँछ आदि के बढ़ जाने से विकृत मुख वाले, शाखाओं से निकली जटाओं से जटिल बरगद (बट) के वृक्षों के समान (प्रतीत होने वाले) प्रणाम करने वाले वृद्ध मन्त्रियों को (अपने) मङ्गलमय अवलोकनों से (तथा) कुशल क्षेम आदि के प्रश्नों से मधुर वर्णों वाली वाणी (बोलकर) अनुगृहीत किया।

भावार्थ—भरत के आलिङ्गन के बाद राम ने उन मन्त्रिवृद्धों को भी, अपने कल्याणमय अवलोकनों से तथा कुशल प्रश्न में प्रयुक्त मधुराक्षरा वाणी से अनुगृहीत किया, जिनका मुख दाढ़ी मूँछों के बढ़ जाने से विकृत हो गया था अतएव जो कि शाखाओं से लटकने वाली अधोमुख जड़ों से जटा वाले बट वृक्षों के समान प्रतीत हो रहे थे और राम को प्रणाम कर रहे थे।

संस्कृत टीका—श्मश्रुप्रवृद्ध्या मुखरोमाभिवृद्ध्या जनिता उत्पन्ना आननविक्रिया मुखविकारो येषान्तान् श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान् अतएव प्ररोहैः—शाखावलम्बिभि- रधमुखै र्मूलैः जटिलान् जटावतः प्लक्षान् इव न्यग्रोधपादपान् इव (प्रतीयमानान्) प्रणमतः प्रणामं कुर्वतः, मन्त्रिवृद्धान् च सचिवस्थविरांश्च (स रामः) शुभदृष्टिपातैः मङ्गलावलोकनैः वार्तानुयोगमधुराक्षरया वार्तया अनुयोगेन कुशलक्षेमप्रश्नेन मधुराक्षरया कोमलप्रियवर्णसमन्वितया वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा वाण्या च अन्वग्रहीत् अनुगृहीतवान् ।

संस्कृत सरलार्थ—भरतालिङ्गनानन्तरं रामः तानपि मन्त्रिवृद्धान् कल्याणमयावलोकनैः कुशलप्रश्नप्रयुक्तमधुराक्षरया वाण्या चानुगृहीतवान्, येषां मुखानि श्मश्रूणां संस्काराभावादभिवृद्ध्या विकृतानि आसन् अतएव ते शाखावलम्बिभिरधोमुखै र्मूलैः जटावतः न्यग्रोधपादपानिव प्रतीयमाना आसन् अथ च प्रणामक्रियापरा अपि आसन् ।

व्याकरण—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान्—प्रकृष्टा वृद्धिः प्रवृद्धिः (गति समास) श्मश्रूणां प्रवृद्धिः (ष० तत्पु०) तया जनिता (तृ० तत्पु०) आननेषु विक्रिया येषान्ते तान् प्ररोहजटिलान्—प्ररोहैः जटिलान् (तृ० तत्पु०) । मन्त्रिवृद्धान्—मन्त्रः अस्ति येषान्ते मन्त्रिणः, मन्त्रिणश्च ते वृद्धाः मन्त्रिवृद्धास्तान् (कर्म धा०) । शुभदृष्टिपातैः—शुभाश्च ते दृष्टिपाताः तैः (तत्पु० गर्भित कर्मधारय) । वार्तानुयोगमधुराक्षरया—वार्तायां अनुयोगः वार्तानुयोगः (ष० तत्पु०) मधुराणि अक्षराणि यस्यां सा मधुराक्षरा (बहु०) वार्तानुयोगेन मधुराक्षरा तया (तृ० तत्पु०) । अन्वग्रहीत्=अनु+ग्रह+लुङ्+प्र० पु० एक० व० ।

विशेष—राम के वियोग में वृद्धमन्त्रियों ने दाढ़ी मूँछ के बाल नहीं कटाये थे अतएव वे पुराने बरगद वृक्षों की भाँति, प्रतीत हो रहे थे । अतः यहाँ उपमा अलंकार है । छन्द वसन्ततिलका है ।

प्रसंग—राम के द्वारा विभीषण और सुग्रीव का परिचय दिए जाने पर भरत ने लक्ष्मण से पहले इन दोनों की वन्दना की—

दुर्जातबन्धुरयमृक्ष हरीश्वरो मे
पौलस्त्य एष समरेषु पुरः प्रहर्ता ।

इत्यादृतेन कथितौ रघुनन्दनेन
व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे ॥७२॥

अन्वय—"अयं मे दुर्जातबन्धुः ऋक्षहरीश्वरः एष समरेषु पुरः प्रहर्ता पौलस्त्यः," इति आदृतेन रघुनन्दनेन कथितौ उभौ लक्ष्मणं व्युत्क्रम्य भरतः ववन्दे ।

शब्दार्थ—अयम्=यह । मे=मेरे । दुर्जातबन्धुः=आपत्ति के समय बन्धुतुल्य । ऋक्षहरीश्वरः=भालू एवं बन्दरों के स्वामी सुग्रीव हैं । एष=यह । समरेषु=युद्धों में । पुरः प्रहर्ता=सबसे पहले प्रहार करने वाले । पौलस्त्यः=पुलस्त्य के नाती विभीषण हैं । इति=इस प्रकार । आदृतेन=आदर भाव से, रघुनन्दनेन=राम के द्वारा । कथितौ=कहे गये (बतलाये गये) । उभौ=दोनों विभीषण व सुग्रीव को । लक्ष्मणम्=सुमित्रा नन्दन लक्ष्मण को । व्युत्क्रम्य=लाँघ कर, छोड़ कर । भरतः=भरत ने । ववन्दे=वन्दना की ।

हिन्दी अनुवाद—यह मेरे आपत्ति के बन्धु, भालू व वन्दरों के स्वामी सुग्रीव हैं, यह युद्ध में सर्वप्रथम प्रहार करने वाले विभीषण हैं इस प्रकार आदरपूर्वक राम के द्वारा बतलाये गये इन दोनों सुग्रीव व विभीषण को लक्ष्मण को छोड़कर (पहले) भरत ने वन्दना की अर्थात् अभिवादन किया ।

भावार्थ—यह मेरे आपत्तिकालसहायक भालू एवं वानरों के अधिपति सुग्रीव हैं, तथा संग्रामों में आगे प्रहार करने वाले यह पुलस्त्य नप्ता विभीषण हैं, जब इस प्रकार राम ने दोनों का परिचय दिया तब भरत ने लक्ष्मण को छोड़कर पहले इन दोनों की वन्दना की ।

संस्कृत टीका—अयं पुरोदृश्यमानः मे मम रामस्य दुर्जातबन्धुः आपद् बन्धुः ऋक्षहरीश्वरः भल्लूकवानराधीशः सुग्रीवः, एष निकटस्थश्च समरेषु पुरः प्राक् प्रहर्ता प्रहारकर्ता पौलस्त्यः पुलस्त्यगोत्रापत्यः पुमान् विभीषणः इति एवं प्रकारेण आदृतेन आदरवता रघुनन्दनेन भगवता रामेण कथितौ उक्तौ उभौ सुग्रीवविभीषणौ लक्ष्मणं सुमित्रात्मजं व्युत्क्रम्यातिक्रम्य भरतः ववन्दे अभिवन्दितवान् ।

राममुखादादरपूर्वकं सुग्रीवविभीषणयोः परिचयं प्राप्य भरतः लक्ष्मण-सीतादेः प्राक् इमौ अभिवन्दितवान् ।

संस्कृत सरलार्थ—अयं ममापद्बन्धुः सुग्रीवः, अयञ्च वीराग्रणीः

विभीषण: इत्यादरकारिणा रामेण कथितौ तौ सुग्रीवविभीषणौ, भरतः लक्ष्मण-मप्युत्सृज्य, ववन्दे ।

व्याकरण—दुर्जातबन्धुः—दुष्टं जातं यस्य तत् दुर्जातम् (बहु०) दुर्जाते बन्धुः (सप्त० तत्पु०)। ऋक्षहरीश्वरः—ऋक्षाश्च हरयश्च तेषामीश्वरः इति ऋक्षहरीश्वरः (ष० तत्पु०). प्रहर्ता - प्र+हृ+तृच् । पौलस्त्यः—पुलस्त्यस्यगोत्रापत्यं पुमान्—पुलस्त्य+अण । व्युत्क्रम्य - वि+उद्+क्रम्+क्त्वा (ल्यप्) ।

विशेष—भरत जी वनवास की १४ वर्ष की अवधि समाप्ति के पश्चात् लौटे हुए राम आदि का अभिवादन कर रहे हैं। राम की वन्दना के पश्चात् वे लक्ष्मण से मिले इसके पूर्व राम के द्वारा आपत्तिकाल में सहायक वानरराज और विभीषण का परिचय प्राप्त कर उनका अभिवादन करना भरत के लिसे अत्याश्वयक और व्यवहारोपयोगी था, अतः उन्होंने लक्ष्मण की अपेक्षा सुग्रीव आदि का अभिवादन पहले किया ।

यहाँ भी वसन्त तिलका छन्द है ।

प्रसंग—भरत जी ने लक्ष्मण का आलिङ्गन किया—

सौमित्रिणा तदनु संससृजे स चैन—
मुत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग ।
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन
क्लिश्नन्निवास्य भुजमध्यमुरः स्थलेन ।।७३।।

अन्वय—तदनु सः सौमित्रिणा संससृजे, नम्रशिरसम् एनम् उत्थाप्य च रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन अस्य उरः स्थलेन भुजमध्यं क्लिश्नन् इव भृशम् आलिलिङ्ग ।

शब्दार्थ—तदनु=इसके बाद (सुग्रीवादि को अभिवादन के पश्चात्। सः =भरत जी। सौमित्रिणा=लक्ष्मण से। संससृजे=मिले। नम्रशिरसम्= और प्रणामार्थ नीचे को सिर झुकाए हुये। एनं=लक्ष्मण को। उत्थाप्य= उठाकर। रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन=मेघनाद के प्रहार से उत्पन्न घांवों (व्रणों) से कठोर। अस्य=उन लक्ष्मण के। उरःस्थलेन=वक्षस्थल से। भुजमध्यम्=अपने वक्षःस्थल को। क्लिश्नन् इव=पीडित करते हुए से (गाढालिङ्गन से)। भृशम् =अत्यधिक (कसकर)। आलिलिङ्ग=आलिङ्गन किया।

हिन्दी अनुवाद—सुग्रीवादि को अभिवादन करने के पश्चात् भरत जी लक्ष्मण से मिले और (प्रणामार्थ) नीचे को सर झुकाये हुये लक्ष्मण को उठा कर मेघनाद के प्रहार से उत्पन्न घावों से कठोर उनके वक्ष से अपने वक्ष को पीड़ित करते हुए भली प्रकार से उनका आलिङ्गन किया।

भावार्थ—सुग्रीवादि के अभिवादन के बाद, भरत लक्ष्मण से मिले। तब भरत ने, प्रमाणार्थ सिर झुकाये हुये लक्ष्मण को उठाकर, उनके उस वक्षःस्थल से अपने वक्षःस्थल को पीड़ित-सा करते हुये गाढालिङ्गन किया, जो कि मेघनाद के प्रहारों के घावों से कर्कश हो गया था।

संस्कृत टीका—तदनु तत्पश्चात् सुग्रीवविभीषणयोरभिवादनानन्तरं सः भरतः सौमित्रिणा लक्ष्मणेन संससृजे संगतः मिलितः नम्रशिरसम् प्रणतम् एनं लक्ष्मणम् उत्थाप्य चोन्नमय्य च रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन-रूढम् उत्पन्नं यत् इन्द्रजितः मेघनादस्य प्रहरणेन् आयुधेन व्रणं क्षतं तस्मात् कर्कशेन कठोरेण अस्य लक्ष्मणस्य उरःस्थलेन वक्षःःस्थलेन स्वकीयं भुजमध्यम् बाहुमध्यं वक्षस्थलमित्यर्थः क्लिश्नन् इव पीडयन्निव भृशं गाढं यथास्यात्तथा आलिलिङ्ग आलिङ्गितवांश्च।

संस्कृत सरलार्थ—सुग्रीवाद्यभिवादनानन्तरं भरतः नम्रीभूतं लक्ष्मणमुत्थाप्य, मेघनादप्रहारव्रणकठोरेण लक्ष्मणवक्षःस्थलेन स्ववक्षः पीडयन्निव तं गाढमालिङ्गितवान्।

व्याकरण—सौमित्रिणा—सुमित्रायाः अपत्यं पुमान् सौमित्रिः तेन। सुमित्रा+इञ् (आदि वृद्धिः)। नम्रशिरसम्—नम्रं शिरो यस्य तम्। उत्थाप्य—उद्+स्था+णिच्+त्वा (ल्यप्) रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन—इन्द्रं जयतीति इन्द्रजित्, इन्द्रजितः प्रहरणानि इन्द्रजित्प्रहरणानि (ष० तत्पु०) तैः व्रणानि इन्द्रजित्प्रहरणव्रणानि रूढानि च तानि व्रणानि तैः कर्कशं तेन (तृ० तत्पु०) उरःस्थलम्—उरसः स्थलम् (ष० तत्पु०)। क्लिश्नन्—क्लिश्+शतृ। आलिलिङ्ग—आ+लिगि+लिट्।

विशेष—यहाँ क्लिश्नन्निव पद में क्रियोत्प्रेक्षा है। इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

प्रसंग—रामाज्ञा से वानरों ने मानुष रूप धारण कर हाथियों की सवारी की—

रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं
कृत्वा मनुष्यवपु रारुरुहुर्गजेन्द्रान् ।
तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः
शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते ।।७४।।

अन्वय—तदानीं हरिचमूपतयः रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा गजेन्द्रान् आरुरुहुः बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु तेषु ते शैलाधिरोहणसुखानि उपलेभिरे ।

शब्दार्थ—तदानीम्=उस समय । हरिचमूपतयः=वानर सेनापति । रामाज्ञया=राम की आज्ञानुसार । मनुष्यवपुः=मनुष्य का शरीर । कृत्वा= धारण कर । गजेन्द्रान्=हाथियों पर । आरुरूहुः=चढ़ गये । बहुधा=बहुत अधिक । मदवारिधाराः=मदजल की धाराओं को । क्षरत्सु=बहाने वाले । तेषु=उन हाथियों पर । ते=उन वानर सेनापतियों ने । शैलाधिरोहण-सुखानि=पर्वतों पर चढ़ने के सुखों को । उपलेभिरे=प्राप्त किया ।

हिन्दी अनुवाद—उस समय वानर सेनापति राम की आज्ञानुसार मनुष्य शरीर धारण कर हाथियों पर सवार हो गये (तथा) बहुत अधिक मदजल धाराओं को बहाने वाले उन हाथियों पर वानर सेना नायकों ने पर्वतों पर चढ़ने के सुखों को प्राप्त किया ।

भावार्थ—उस समय वानर सेनापति राम की आज्ञा से मनुष्य शरीर धारण कर गजराजों पर चढ़ गये, उन मदस्रावी हाथियों पर चढ़कर उन्हें वैसा ही आनन्द प्राप्त हुआ जैसा कि पर्वतों पर चढ़कर प्राप्त होता था ।

संस्कृत टीका—तदीनाम् तस्मिन् काले हरिचमूपतयः वानरसेनापतयः रामाज्ञया रामचन्द्रादेशेन मनुष्यवपुः नरशरीरं कृत्वा विधाय गजेन्द्रान् हस्तिन् आरुरुहुः आरूढवन्तः बहुधा प्रायशः मदवारिधाराः दानवारिधाराः क्षरत्सु वर्षत्सु तेषु हस्तिपु ते वानरसेनापतयः शैलाधिरोहणसुखानि पर्वता-रोहणानन्दान् उपलेभिरे प्राप्तवन्तः अनुभूतवन्त इत्यर्थः ।

संस्कृत सरलार्थ—तदा वानरसेनापतयः रामाज्ञया मनुष्यशरीरं गृहीत्वा गजेन्द्रानारुरुहुः । अनेकशः मदधाराः क्षरत्सु तेषु गजेषु ते पर्वतारोहणसुखानि प्राप्तवन्तः ।

व्याकरण—हरिचमूपतयः—हरीणां चम्वाः (ष० तत्पु०) हरिचमूनां पतयः (ष० तत्पु०) । रामाज्ञया—रामस्य आज्ञा रामाज्ञा (ष० त०) तया । आरुरुहुः

—आ+रुह+लिट् (प्र० पु० बहु०)। मदवारिधाराः—मदस्य वारीणि मदवारीणि (ष० तत्पु०) तेषां धाराः ताः शैलाधिरोहणसुखानि—शैलेषु अधिरोहहणानि (स० तत्पु०) शैलाधिरोहणानां सुखानि तानि (ष० तत्पु०)। उपलेभिरे —उप+डुलभष्+लिट् (प्र० पु० बहु० व०)।

विशेष—अयोध्या में वानरसेनापतियों ने रामाज्ञा से मनुष्य का शरीर धारण कर हाथियों की सवारी की। स्वभाव से वानर होने के कारण उन हाथियों पर उन्हें पर्वतारोहण का सा आनन्द मिला। वस्तुतः पर्वत पर झरने आदि होते हैं यहाँ हाथियों के मदजल की धारायें बह रही थीं। अतः वे हाथी पर्वत तुल्य थे। ऐसी मान्यता है कि उत्तम गज के अङ्गों से मदजल निकलता है—दोनों नाक से, दोनों कपोलों से, दोनों नेत्रों से एवं मूत्रेन्द्रिय (उपस्थ) से हाथियों की पर्वतों से तुल्यता व्यङ्ग्य होने के कारण उपमा अलंकार व्यङ्ग्य है। छन्द वसन्त तिलका है।

प्रसंग—रामाज्ञा से विभीषण भी अपने सेवकों के साथ रथों पर आरूढ़ हुए—

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणां
भेजे रथान् दशरथप्रभवानुशिष्टः।
मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयै—
र्न स्यन्दनैस्तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः ॥७५॥

अन्वय—सानुप्लवः क्षणदाचराणां प्रभुः अपि दशरथप्रभवानुशिष्टः रथान् भेजे। ये मायाविकल्परचितैः अपि तदीयैः स्यन्दनैः तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न (भवन्ति) इति शेषः।

शब्दार्थ—सानुप्लवः=अनुचरों के साथ। क्षणदाचराणाम्=राक्षसों के। प्रभुः=स्वामी विभीषण। अपि=भी। दशरथप्रभवानुशिष्टः=दशरथ पुत्र राम की आज्ञा से। रथान्=रथों पर। भेजे=चढ़ गये। ये=जो रथ। मायाविकल्परचितैः अपि=मायावी कल्पना से बनाये गये भी। तदीयैः=उन राक्षसों के। स्यन्दनैः=रथों से। तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः=कृत्रिमरचनात्मक शोभा के समान। न (आसन्) नहीं थे।

हिन्दी अनुवाद—(अपने) अनुचरों के साथ राक्षस राज विभीषण भी राम के आदेश से (उन) रथों पर आरूढ़ हुए जो विभीषण के मायावी

कल्पना से रचे गये रथों की कृत्रिम रचनात्मक शोभा के समान नहीं थे।

भावार्थ—अयोध्या के रथ मायावी कल्पना से रचित विभीषण के रथों से अधिक सुन्दर थे उनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नजर नहीं आती थी, ऐसे रथों में विभीषण अपने सेवकों के साथ सवार हुए।

संस्कृत टीका—सानुप्लवः सानुचरः क्षणदाचराणां निशाचराणां प्रभुः स्वामी विभीषणः अपि दशरथप्रभवानुनिष्टः दशरथपुत्ररामानुज्ञप्तः रथान् स्यन्दनान् भेजे आरुरोह। गे रथाः मायाविकल्परचितैः अपि संकल्पमात्रेणैव-निर्मितैः अपि तदीयैः विभीषणसम्बन्धिभिः स्यन्दनैः रथैः तुलितकृत्रिमभक्ति-शोभाः तुलिता समीकृता कृत्रिमा मायाकृता भक्तिशोभा रचनाशोभा येषान्ते तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः न। अयोध्याया रथाः असाधारणशोभासम्पन्नाः आसन् इति भावः।

संस्कृत सरलार्थं—सानुचरो विभीषणोऽपि रामाज्ञया रथारुढोऽभवत्। संकल्पविशेषनिर्मिता अपि विभीषणरथाः अकृत्रिमैः अयोध्यारथैः साम्यं ना लभन्त।

व्याकरण—सानुप्लवः—अनुप्लवैः सहितः इति। क्षणदाचराणां क्षणं ददातीति क्षणदा "निशानिशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा" इत्यमरः। क्षणदायां चरन्ति ये ते क्षणदाचरास्तेषाम्। दशरथप्रभवानुशिष्टः—दशरथः प्रभवो यस्य सः (बहु०) दशरथप्रभवः, तेन अनुशिष्टः (तृ० तत्पु०)। अनुशिष्टः—अनु+शास्+क्त। मायाविकल्परचितैः—मायायाः विकल्पाः (ष० तत्पु०) तैः रचिताः तैः (तृ० तत्पु०)। तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः—भक्तीनां शोभा (ष० तत्पु०), कृत्रिमा चासौ भक्तिशोभा कृत्रिमभक्तिशोभा (कर्मधा०) तुलिता कृत्रिमभक्तिशोभा येषान्ते (बहु०)।

विशेष—अयोध्या के रथ राक्षसों के कृत्रिम मायावी रथों से अधिक सुन्दर और स्वाभाविक थे, अतः मायावी रथों से उनकी कोई तुल्यता न थी। यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार है। इसमें वसन्त तिलका छन्द है।

प्रसंग—अयोध्यापुरी में प्रवेश के लिए राम पुनः पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए—

भूयस्ततो रघुपति विलसत्पताक—
मध्यास्त कामगति सावरजो विमानम्।

दोषातनं बुधवृहस्पतियोगदृश्य—
स्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम् ॥७६॥

अन्वय—ततः सावरजः रघुपतिः विलसत्पताकं कामगतिं विमानम् भूयः बुधवृहस्पतियोगदृश्यः तारापतिः दोषातनं तरलविद्युत् अभ्रवृन्दम् इव अध्यास्त ।

शब्दार्थ—ततः=इसके पश्चात् । सावरजः=छोटे भाइयों (भरत और लक्ष्मण) के साथ। रघुपतिः=रामचन्द्र । विलसत्पताकं=पताकाओं से सुशोभित होने वाले । कामगति=स्वेच्छा से चलने वाले । विमानम्=पुष्पक विमान पर। भूयः=फिर से। बुधवृहस्पतियोगदृश्यः=बुध और वृहस्पति के योग से दर्शनीय। तारापतिः=चन्द्रमाः । दोषातनम्=रात्रिकालीन । तरलविद्युत्=चञ्चल बिजली वाले । अभ्रवृन्दम् इव=मेघ समूह पर जैसे । अध्यास्त=आरूढ़ हुए ।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद (सुग्रीव विभीषणादि के रथारूढ़ हो जाने पर) छोटे भाइयों के साथ रामचन्द्र जी ध्वजाओं से सुशोभित स्वेच्छा से चलने वाले पुष्पक विमान पर फिर से उसी प्रकार आरूढ़ हुए जैसे बुध और वृहस्पति के योग से दर्शनीय चन्द्रमा, रात्रिकालीन चञ्चल बिजली वाले मेघ समूह पर आरूढ़ होता है ।

भावार्थ—विभीषणादि के रथारूढ़ हो जाने पर भाइयों सहित राम, पुनः पताकों से शोभित स्वेच्छागति पुष्पक विमान पर उसी प्रकार आरूढ़ हुए जैसे बुध गुरु योग से शोभायमान चन्द्रमा रात्रिकालीन चञ्चलविद्युत् से युक्त मेघ समूह पर आरूढ़ होता है ।

संस्कृत टीका—ततस्तदनन्तरम् सावरजः=अनुजाभ्यां सहितः रघुपतिः राजा रामचन्द्रः विलसत्पताकम् ध्वजाभिः सुशोभितम्, कामगति स्वेच्छाचारि विमानं पुष्पकविमानं भूयः पुनरपि, बुधवृहस्पतियोगदृश्यः—बुधगुरु नक्षत्राभ्यां दर्शनीयः तारापतिः चन्द्रमाः दोषातनं रात्रिसम्बन्धि तरलविद्युत् चञ्चल सौदामनीकम् अभ्रवृन्दमिव मेघमण्डलमिव । अध्यास्ताधिष्ठितवान् ।

संस्कृत सरलार्थ—बुधवृहस्पतिभ्यां युक्तश्चन्द्रो यथा रात्रौ तरलविद्युत्समन्वितं मेघमारुह्य शोभते तथैव श्री रामचन्द्रः भरतलक्ष्मणसमेतः पताकाभिः शोभमानं पुष्पकमारुरोह ।

व्याकरण—विलसत्पताकम्—विलसन्त्यः पताकाः यस्मिन् तत् (बहु०)। कामगति—कामेन गतिः यस्य तत् (बहु०) सावरजः—अवरस्मिन् काले जातौ अवरजौ ताभ्यां सहितः। दोषातनम्—दोषा भवम् इस अर्थ में दोषा शब्द से "सायं चिरं प्राह्णे प्रगे०" इत्यादि सूत्र से ट्युल् प्रत्यय तथा तुट् का आगम होकर दोषातन बना। बुधवृहस्पतियोगदृश्यः—बुधश्च वृहस्पतिश्चेति बुधवृहस्पती तयोर्योगः तेन दृश्यः (तृ० तत्पु०)। तारापतिः—ताराणां पतिः (ष० तत्पु०)। तरलविद्युत्—तरला विद्युत् यस्मिन् तत् (बहु०)। अभ्र-वृन्दम्—अभ्राणां वृन्दं (ष० तत्पु०)। अध्यास्त मे—अधिपूर्वक आस् धातु होने के कारण "अधिशीङ्स्थासां कर्म" सूत्र से विमानम् और अभ्रवृन्दम् में आधार में कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है।

विशेष—ज्योतिष् शास्त्र के अनुसार बुध और वृहस्पति से युक्त चन्द्रमा होने पर उसकी शोभा अधिक बढ़ जाती है वह चन्द्रमा उच्च का कहलाता है। भरत और लक्ष्मण से युक्त राम भी उसी प्रकार शोभायमान हो रहे थे।

इस श्लोक में उपमालंकार है। छन्द वसन्ततिलका है।

प्रसंग—भरत ने जनकनन्दिनी सीता की वन्दना की—

तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वीं
वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः।
रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रात्
प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरतो ववन्दे॥७७॥

अन्वय—तत्र जगताम् ईश्वरेण प्रलयात् उर्वीम् इव, वर्षाऽत्ययेन अभ्र-घनात् इन्दोः रुचम् इव रामेण दशकण्ठकृच्छ्रात् प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं मैथिलसुतां भरतो ववन्दे।

शब्दार्थ—तत्र=उस विमान में। जगताम् ईश्वरेण=संसार के स्वामी (आदि वराह) ने। प्रलयात्=प्रलयकाल के जल से। उर्वीम् इव=पृथ्वी के समान। वर्षाऽत्ययेन=वर्षा ऋतु के बीत जाने पर शरदागम ने। अभ्रघ-नात्=मेघमण्डल से। इन्दोः=चन्द्रमा की। रुचम् इव=चाँदनी के समान। रामेण=रामचन्द्र जी के द्वारा। दशकण्ठकृच्छ्रात्=रावण रूप आपत्ति से। प्रत्युद्धृताम्=उद्धार की गई। धृतिमतीं=धैर्यशालिनी। मैथिलसुतां=

सीता की। भरतः=भरत जी ने। ववन्दे=वन्दना की, अर्थात प्रणाम किया।

हिन्दी अनुवाद—उस विमान में संसार के स्वामी (आदिवाराह भगवान् द्वारा) प्रलयकाल के जल से (उद्धृता) पृथ्वी के समान, वर्षा ऋतु के बीत जाने पर (शरद ऋतु द्वारा) मेघमण्डल से चन्द्रमा की चाँदनी के समान, रामचन्द्र जी के द्वारा रावणरूप आपत्ति से उद्धार की गई धैर्यशालिनी सीता की भरत जी ने वन्दना की।

भावार्थ—जैसे आदिवाराहावतार भगवान् ने प्रलयकाल के जल से पृथिवी का, और शरदागम ने मेघसमूह से चाँदनी का उद्धार किया था, उसी प्रकार रावणरूप विपत्ति से राम के द्वारा उद्धृता, सन्तोषवती सीता की भरत ने वन्दना की।

संस्कृत टीका—तत्र तस्मिन् पुष्पकनाम्नि विमाने, जगतामीश्वरेण लोकानां स्वामिना आदिवाराहरूपेण भगवता, प्रलयात् कल्पान्तात् (उद्धृताम्) उर्वीम् इव पृथ्वीमिव, वर्षात्ययेन शरदागमेनाभ्रघनात् मेघमण्डलात् इन्दोः चन्द्रमसः रुचमिव कान्तिमिव, रामेण रामचन्द्रेण दशकण्ठकृच्छ्रात् रावण संकटात् प्रत्युद्धृतां प्रत्युन्मोचितां धृतिमतीं धैर्यशालिनीं सीतां जनकपुत्रीं भरतः कैकेयीसुतः ववन्दे अभिवन्दितवान्।

संस्कृत सरलार्थ—तस्मिन् विमाने, आदिवाराहेण प्रलयात् उद्धृताम् पृथिवीमिव, शरदागमेन मेघमण्डलात् उद्धृताम् चन्द्रमसः कान्तिम् इव, रावण-रूपसंकटात् रामेण उद्धृताम् धृतिमतीं जानकीं भरतः ववन्दे।

व्याकरण—वर्षात्ययेन—वर्षायाः अत्ययः यस्मिन् तेन (बहु०)। अभ्र-घनात्—अभ्राणां घनम् अभ्रघनं तस्मात (ष० तत्पु०)। दशकण्ठकृच्छ्रात्—दश कण्ठाः यस्य सः (बह०) स एव कृच्छ्र तस्मात्। प्रत्युद्धताम्—प्रति+उद्+धृञ्+क्त+टाप्। धृतिमतीम्—प्रशस्ता धृतिः यस्याः सा ताम् धृति+मतुप्+ङीप् मैथिलसुताम्—मिथिला निवासो यस्य सः, मैथिलः—"तस्य निवासः" सूत्र से अण् प्रत्यय—मिथिला+अण् मैथिलः, मैथिलस्य सुता ताम् (ष० तत्पु०) ववन्दे—वदि (अभिवादनार्थक) धातु से लिट् लकार प्रथम पु० एकवचन।

विशेष—इस श्लोक में कवि ने सीता के अनेक उपमान प्रस्तुत किये हैं। साथ ही रावण के चंगुल से राम के द्वारा मुक्त कराई गई सीता की

घटना की भी समानान्तर दो घटनायें प्रस्तुत कर कवि ने सीता की सुन्दरता और पवित्रता का आख्यान किया है।

प्रथम घटना—प्रलयकालीन महाजल में डूबी हुई पृथ्वी का या हिरण्याक्ष नामक दैत्य के द्वारा पाताल ले जाई गई पृथ्वी का जैसे स्वयं भगवान् ने बाराह रूप धारण कर उद्धार किया था, उस समय जल से स्नात पृथ्वी का सौन्दर्य कुछ अद्भुत ही था।

द्वितीय घटना—वर्षाकाल में मेघों से चन्द्रमा को ढक लेने पर उसकी चांदिनी मलिन हो जाती है किन्तु शरद् ऋतु मेघों को साफ कर चन्द्रमा को मुक्त कर चांदनी के सौन्दर्य को निखार देती है। अतः शरद् पूर्णिमा को चांदनी की कुछ अद्भुत ही छटा होती है।

इसी प्रकार भगवान राम ने रावण द्वारा अपहृत सताई गई सीता को रावण वध कर मुक्त किया ऐसी जो धैर्यशालिनी, आपत्तियों को पार कर निकली हुई सीता थी, उस सीता की भरत ने वन्दना की।

अतः यहाँ एक ही उपमेय सीता के पृथ्वी और चांदनी दो उपमान प्रस्तुत करने के कारण मालोपमा अलंकार है। इस श्लोक में भी वसन्ततिलका छन्द है।

प्रसंग—कवि भरत और सीता की पवित्रता का आख्यान करता हुआ कहता है—

लङ्केश्वर प्रणतिभङ्गदृढव्रतं तद्
वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधो-
रन्योन्यपावन मभूदुभयं समेत्य ॥७८॥

अन्वय—लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं जनकात्मजायाः वन्द्यं तत् चरणयोः युगं ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं साधोः अस्य शिरः च उभयं समेत्य अन्योन्यपावनम् अभूत्।

शब्दार्थ—लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम्=रावणकृत प्रणामों को भङ्ग करने से अखण्ड सतीव्रत वाले। जनकात्मजायाः=सीता जी के। वन्द्यं= वन्दनीय। तत्=वे। चरणयोः युगं=दोनों चरण। ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम् =बड़े भाई (राम) के अनुसरण करने के कारण जटाओं वाला। साधोः=

सज्जन। अस्य=इन भरत जी का। शिरः च=शिर। उभयं=दोनों। समेत्य=मिलकर। अन्योन्यपावनम्=एक दूसरे को पवित्र करने वाले। अभूत्=हुए।

हिन्दी अनुवाद—रावणकृत प्रणामों का तिरस्कार करने से अखण्ड या दृढ़ सतीव्रत वाले सीता जी के वन्दनीय वे दोनों चरण और बड़े भाई (राम) का अनुसरण करने के कारण जटाओं से युक्त सज्जन भरत जी का शिर (ये) दोनों मिलकर एक दूसरे को पवित्र करने वाले हुए।

शब्दार्थ—रावणकृत अनेक अनुनयों का तिरस्कार कर दने से अखण्ड पातिव्रत्य वाले सीता के वन्दनीय वे दोनों चरण तथा राम के प्रति भक्ति के कारण जटाधारी भरत का मस्तक ये दोनों उस समय मिलकर परस्पर पवित्र करने वाले हुए। सीता के चरणद्वय इस लिये पवित्र एवं वन्दनीय थे क्योंकि उन्होंने रावण की प्रणतियों का तिरस्कार कर पतिव्रत की रक्षा की थी। भरत का मस्तक इस लिये पवित्र था क्योंकि उन्होंने राम पर भक्ति के कारण राज्यभोग छोड़कर तपस्वियों जैसे जटायें धारण कर ली थीं। भरत का मस्तक सीता चरणों से मिलकर दोनों ही एक दूसरे को अधिक पवित्र करने वाले बन गये थे।

संस्कृत टीका—लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम् लङ्केश्वरस्य रावणस्य प्रणतीनां प्रणामानां भङ्गेन निरासेन दृढं पुष्टमखण्डं वा पातिव्रतं यस्य तत् जनकात्मजायाः सीतायाः वन्द्यं प्रणम्यं तत् चरणयोः युगं पादयुग्मं तथा च ज्येष्ठानुवृत्या अग्रजरामानुसरणेन जटिलं जटाभिः सम्पन्नं साधोः सज्जनस्यास्य भरतस्य शिरश्च मस्तकश्चेति उभयं समेत्य द्वयं मिलित्वाऽन्योन्यपावनं परस्परपवित्रीकरणसमर्थम् अभूत् अभवन्।

संस्कृत सरलार्थ—रावणकृतानेकप्रणातिनिरोधक मत एव नमस्करणीयं पातिव्रत्यसमन्वितं सीताचरणद्वयम्, अथ च स्वज्येष्ठभ्रातृरामानुवृत्तिजटिलो भरतमस्तकश्चै तद्द्वयं मिलित्वा अन्योन्य पावनमभूत्।

व्याकरण—लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम्—लङ्कायाः ईश्वरः लङ्केश्वरः (ष० तत्पु०) तस्य प्रणतयः तासां भङ्गेन (ष० तत्पु०) दृढं व्रतं यस्य तत्। जनकात्मजायाः—जनकस्य आत्मजा तस्याः (ष० तत्पु०)। ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम्—अतिशयेन प्रशस्यः ज्येष्ठः—प्रशस्य शब्द से इष्ठन् प्रत्यय तथा प्रशस्य के स्थान पर 'ज्य' आदेश होकर ज्येष्ठ शब्द बना। अनुवर्तनम् अनुवृत्तिः,

ज्येष्ठस्य अनुवृत्तिः ज्येष्ठानुवृत्तिः तया जटिलम् (तृ० तत्पु०)। समेत्य—सम् +आङ्+इण्+त्वा (ल्यप्)। अन्योन्यपावनम्—पावयतीति पावनम्—पूङ्+णिच्+ल्युट् (अन्), अन्योन्यस्य पावनम् अन्योन्यपावनम् (ष० तत्पु०)।

विशेष—यहाँ सीता के चरणयुगल और भरत के शिर में विशेषताओं का उल्लेख कर दोनों में पवित्रता का आधान किया गया है। सीता के चरण युगल इसलिए वन्दनीय एवं पवित्र हैं क्योंकि उन्होंने रावणकृत प्रणामों का तिरस्कार का राम के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा का प्रदर्शन किया था, अतएव पराधीन होने पर भी सीता का पातिव्रत धर्म बना रहा। दूसरी ओर भरत जी ने प्राप्त राज्यलक्ष्मी का भोग न कर राम के समान वनवासी जीवन धारण कर जटाओं को बढ़ा लिया था अतः राम के प्रति प्रगाढ़ भक्ति के कारण उनका शिर भी पवित्र था, इस प्रकार भरत ने जब सीता के चरणों पर शिर रखकर उनका अभिवादन किया तो कवि कहता है कि वे दोनों अत्यन्त पवित्र थे और एक दूसरे को पवित्र करने वाले थे।

इस प्रकार यहाँ अन्योन्य नामक अलंकार है। लक्षण—

> अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम्।
> त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया॥

(चन्द्रालोक)

इस श्लोक में भी वसन्त तिलका छन्द है।

प्रसंग—विमान से आधा कोस चलकर अयोध्या के उपवन में शत्रुघ्न द्वारा बनाये गये स्वागत स्थल पर उतर कर राम ने निवास किया—

> **क्रोशार्धं प्रकृति पुरः सरेण गत्वा**
> **काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण।**
> **शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः**
> **साकेतोपवन मुदार मध्युवास ॥७९॥**

अन्वय—आर्यः काकुत्स्थः प्रकृतिपुरःसरेण स्तिमितजवेन पुष्पकेण क्रोशार्धं गत्वा शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम् उदारं साकेतोपवनम् अध्युवास।

शब्दार्थ—आर्यः=श्रेष्ठ। काकुत्स्थः=ककुत्स्थ वंश में उत्पन्न (रामचन्द्र जी ने)। प्रकृतिपुरःसरेण=प्रजाजन जिसके आगे चल रहे थे। स्तिमि-

तजवेन=मन्दगति वाले। पुष्पकेण =पुष्पक विमान से। क्रोशार्द्धं=आधा-कोस। गत्वा=जाकर। शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम्=जिसमें शत्रुघ्न द्वारा तम्बू लगाये गये थे। उदारम्=विशाल। साकेतोपवनम्=अयोध्या के बगीचे में। अध्युवास=निवास किया।

हिन्दी अनुवाद—पूज्य एवं ककुत्स्थवंशोत्पन्न रामचन्द्र जी ने प्रजाजन जिसके आगे चल रहे थे ऐसे मन्दगति वाले, पुष्पक विमान से आधाकोस जाकर जिसमें शत्रुघ्न द्वारा तम्बू लगाये गये थे ऐसे विशाल अयोध्या के उपवन में निवास किया।

भावार्थ—इक्ष्वाकुवंशीय पूज्य राम ने, प्रजाजन जिसके आगे-आगे चल रहे थे और जो मन्दगति से चल रहा था ऐसे पुष्पक विमान से आधाकोस जाकर उस विशाल साकेतोपवन में निवास किया, जहाँ कि शत्रुघ्न ने उनके स्वागतार्थ तम्बू लगा रखे थे।

संस्कृत टीका—आर्यः पूज्यः काकुत्स्थः ककुत्स्थवंशोद्भवः श्री रामचन्द्रः प्रकृतिपुरः सरेण प्रजाऽग्रसरेण प्रजाः अग्रे अग्रे गच्छन्ति यस्य तेनेत्यर्थः, स्तिमितजवेन मन्दवेगेन पुष्पकेण पुष्पकनाम्ना विमानेन क्रोशार्द्धम् अर्धक्रोश-भागं गत्वाऽतिक्रम्य शत्रुघ्नेन लक्ष्मणानुजेन प्रतिविहिता सज्जिता उपकार्या पटभवनादिकं यस्मिंस्तत् तादृशं निवासयोग्यमित्यर्थः उदारमतिविशालं साकेतोपवनमयोध्याया आरामम् अध्युवासाधितिष्ठितवान्।

संस्कृत सरलार्थ—पूज्यः ककुत्स्थवंशीयः रामः मन्दवेगवता पुष्पक-विमानेन क्रोशार्धं गत्वा, तत् विशालं साकेतोपवनमध्युवास यत्र शत्रुघ्नेन पूर्वमेव स्वागतार्थं सुसज्जितपटभवनम् निर्मितमासीत्।

व्याकरण—काकुत्स्थः—ककुत्स्थस्यगोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थः—ककुत्स्थ+अण्। प्रकृतिपुरः सरेण—पुरः सरन्तीति पूरः सर्यः, प्रकृतयः पुरः सर्यो यस्य तेन (बहु०)। स्तिमितजवेन—स्तिमितो जवो यस्य सः तेन (बहु०)। क्रोशार्द्धम्—क्रोशस्य अर्द्धं क्रोशार्द्धम् (ष० तत्पु०) शत्रुघ्नप्रति-विहितोपकार्यम्—शत्रुघ्नेन प्रतिविहिता उपकार्या यस्मिंस्तत् (बहु०)। "उदरोदातृमहतोः" इस अमरकोश के कथनानुसार यहाँ उदार का अर्थ महान् विशाल है। साकेतोपवनम्—साकेतस्य उपवनम् इति (ष० तत्पु०)। यहाँ 'अध्युवास' में अधि पूर्वक वस् धातु का प्रयोग होने के कारण "उपान्व-

ध्याङ् वस:" सूत्र से उपवन में आधार की कर्म संज्ञा हुई जिससे द्वितीया विभक्ति में उपवनम् का प्रयोग हुआ है।

विशेष—वायुयान अवतरण स्थल पर भरत कृत पूजा को स्वीकार कर राम पुन: उसी पुष्पक विमान से अयोध्या के समीपवर्ती उपवन में जाकर ठहरे जहाँ शत्रुघ्न ने अनेक तम्बुओं आदि को लगाकर रुकने की व्यवस्था की थी।

राम के लिए काकुत्स्थ का प्रयोग किया गया है राम के वंश में पहले पुरञ्जय नाम के कोई पराक्रमी राजा हुए थे जिन्होंने देवासुर संग्राम में वृषरूपधारी इन्द्र के ककुद् (पीठ के मांस (ठिठौरी)) पर चढ़ कर राक्षसों को पराजित किया था, तब से उन पुरञ्जय का ककुत्स्थ नाम पड़ गया। उन्हीं के वंश में राम हुए-अत: वे भी काकुत्स्थ कहलाये।

महाकाव्य के लक्षणानुसार इस सर्ग का अन्तिम श्लोक होने के कारण कवि ने इसमें सम्पूर्ण सर्ग में प्रयुक्त उपजाति (इन्द्र वज्रा, उपेन्द्र वज्रा) एवं वसन्ततिलका से भिन्न प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग किया है। प्रहर्षिणी का लक्षण—

म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयति प्रहर्षिणीयम्

स्वरूप— म. न. ज. र. गुरु

ऽऽऽ ।।। ।ऽ। ऽ।ऽ ऽ = १३ वर्ण

इति श्री कविवर कालिदासकृते रघुवंश महाकाव्ये त्रयोदशसर्गस्यव्याख्या सम्पूर्णा।

परिशिष्ट

(सूक्ति व्याख्या)

१. विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा

प्रस्तुत श्लोकांश रघुवंश त्रयोदश सर्ग के समुद्र वर्णन प्रसङ्ग से लिया गया है। वनवास से लौटते हुए राम वायुयान पर बैठी हुई सीता को समुद्र की विशालता का परिचय देते हुए कहते हैं—

भगवान् विष्णु के समान इस समुद्र के रूप का "इतना अथवा ऐसा" निर्धारण नहीं किया जा सकता है। भगवान् विष्णु जिन्हें परब्रह्म परमात्मा कहा गया है, जिनके रूप का निर्धारण आज तक भी नहीं किया जा सका है। वेदान्त के अनुसार समस्त सृष्टि विष्णु का ही विवर्त मान कर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कहा गया है जो कण-कण में व्याप्त होने के कारण अनेकता, अगाधता असंख्य रूपों वाला है, उसी प्रकार समुद्र अपनी विशालता, आदि के कारण अनिर्धारणीय है।

उपमा अलंकार के माध्यम से कवि ने इस श्लोक में समुद्र की विशालता, अगाधता, नाना रूपात्मकता की ओर संकेत किया है।

२. नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते—

प्रस्तुत श्लोकार्ध में कविकालिदास समुद्र का वर्णन करते हुए सीता से कहते हैं कि यह समुद्र पीड़ितों, भयाक्रान्तों का शरणदायी है। किन्तु किसी भी राजा के पक्ष या विपक्ष में नहीं अपितु तटस्थ राजा की भाँति है।

पौराणिक सन्दर्भ—प्राचीन काल में पर्वतों के पंख होते थे, उनके अनाचार को रोकने के लिए इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पंख काटने प्रारम्भ किये तो 'मैनाक' नामक पर्वत समुद्र के जल में छिप गया अतः इन्द्र उसके पंख नहीं काट सका।

कवि ने यहाँ उसी 'मैनाक' पर्वत के सन्दर्भ में समुद्र की महत्ता का वर्णन किया है कि जब किसी उत्पाती से कोई राजा पीड़ित हो जाता है, और उसका प्रतिकार करने में समर्थ नहीं होता तो वह किसी शक्तिशाली राजा की शरण में चला जाता है। ठीक इसी प्रकार मैनाक पर्वत भी इन्द्र के अत्याचार से दुःखी होकर तटस्थ एवं शक्तिशाली राजा के रूप में समुद्र की शरण में आ गया। समुद्र आज तक उसे अपने आश्रय में रखे हुए है।

कवि ने यहाँ उपमा अलंकार के द्वारा जहाँ अचेतन समुद्र में सचेतन राजा की कल्पना की वहीं राजनीतिक ज्ञान का परिचय भी दिया है। समुद्र की शक्तिसम्पन्नता का ज्ञान पिछले श्लोक से होता है जहाँ उसके "अनिर्धारणीय स्वरूप" का वर्णन किया है। इन्द्र और समुद्र में कोई द्वेष नहीं है। यह बात 'मध्यम' (तटस्थ) शब्द से स्पष्ट है। इन्द्र की अपेक्षा समुद्र में सामर्थ्य, शक्ति अधिक है यह स्वतः स्पष्ट है क्योंकि मारने वाले से बचाने वाला अधिक शक्तिशाली होता है। इस प्रकार इसमें व्यतिरेक ध्वनि भी है।

३. पिवत्यसौ पाययते सिन्धूः

कवि प्रसिद्धि के अनुसार समुद्र और नदियों में पति-पत्नी सम्बन्ध है। कालिदास समुद्र और नदियों के संगम (मुहाना) में नायक नायिका के रतोत्सव की पूर्वभूमिका का अनुभव करता हुआ वर्णन करता है कि नदियाँ अपने पति समुद्र से न केवल मिल रही हैं अपितु अत्युत्कण्ठित प्रगल्भा नायिका की भाँति अपना मुख अर्पित करती हैं तो समुद्र भी अपने तरंग रूपी अधरों का दान कर रहा है। समुद्र इस सुअवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहता और वह उनका विधिवत् पान करता है। समुद्र पीता है नदियाँ पिलाती हैं।

कवि ने यहाँ समुद्र और नदियों में नायक-नायिका एवं उनके व्यवहार का आरोप किया है। नदियों की प्रगल्भता से उनमें प्रौढ़ नायिका की तथा समुद्र में धीरललित नायक की ध्वनि है। वाणी मनःस्थिति की प्रकाशिका होती है इस आधार पर सीता से वर्णन करने वाले राम के हृदय की कामभावना का भी इसमें संकेत मिलता है।

४. व्रजन्तिकर्णक्षणचामरत्वम्

समुद्र में ऊपर को उछलने वाले नाकों (ग्राहों) का वर्णन करते हुए राम सीता से कहते हैं कि ये हाथी के समान विशालकाय नाक जब ऊपर को उछलते हैं तो समुद्र फेन दो भागों में बँट जाता है और वह श्वेत फेन उनके कानों के समीप क्षणभर को चँवर की शोभा प्राप्त करता है। हाथियों को सजाते समय उनके कानों मे चँवर (चामरी गाय की पूँछ के बालों से बने व्यजन विशेष) लटकाने की आज भी परम्परा है। इसी लिये श्वेत फेन उन मगरमच्छों के कानों के पास क्षणभर को, उनके ऊपर उछलने के समय चँवर की शोभा प्राप्त करता है।

इस श्लोक में मगरमच्छों का हाथी से अभेदारोप करने के कारण रूपक अलंकार है और समुद्र वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार है।

५. सकानना निष्पततीव भूमि

समुद्र के ऊपर से जाते हुए राम सीमा को बतला रहे हैं कि पृथ्वी अब समुद्र से दूर हो रही है अतः ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जंगलों के सहित यह पृथ्वी समुद्र से निकल रही है।

वस्तुतः इस श्लोक में वायुयान की तीव्र गति का वर्णन किया गया है। तेजी से चलने वाले विमान से नीचे देखने पर समुद्र पीछे और पीछे छूटता जा रहा है तथा जंगलों से युक्त पृथ्वी उत्तरोत्तर विशालतर दिखलाई पड़ रही है, इसीलिये उत्प्रेक्षा की गई कि मानो दूर होते हुए समुद्र से पृथ्वी निकल रही है। यहाँ निष्पतति इव क्रिया पद गिर रही है इस अर्थ के स्थान पर लाक्षणिक अर्थ निकल रही है कि द्योतिका है। आज भी रेल या किसी भी तीव्रगति वाहन से यात्रा करने पर पीछे की ओर देखने पर ऐसी ही अनुभूति होती है।

६. त्वच्चरणारविन्द विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्

सीताहरण के पश्चात् सीता को खोजते हुए जिस स्थान पर राम को सीता का नूपर मिला था, उस स्थान की ओर संकेत कर नूपुर की दशा का राम वर्णन करते हैं—

सीते ! मैंने इसी स्थान पर तुम्हारे पैर से गिरे हुए नूपुर को प्राप्त किया था, वह नूपुर मुखर नहीं अपितु मौन धारण किये हुए था क्योंकि तुम्हारे कमलस्वरूपी चरण से वियुक्त होने का उसे अति कष्ट था। इसीलिये तो मानो उसने मौन धारण कर रखा था।

राम सीता के वियोग में दुःखी थे, उस समय का सारा वातावरण उन्हें दुःखमय दिखलाई पड़ रहा था। पैर से पृथक् होकर भूमि पर पडे रहने पर नूपुर में शब्द करने का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु चूंकि राम दुःखी थे, वियोगी थे, वियुक्तावस्था में चेतन अचेतन का भाव ही नहीं रहता, इसीलिये उन्हें नूपुर में बद्धमौन दशा का और उसके कारण रूप में सीता के चरण-कमल वियोग का अनुभव हो रहा है। इस प्रकार कवि ने हेतूत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से यहाँ राम की दुःखद स्थिति का, सीता के प्रति अगाध प्रेम का और सीता की प्रत्येक वस्तु से अतिशय राग का वर्णन किया है। चरणारविन्द पद में रूपक के द्वारा सीता के चरणों में कमलवत् कोमलता की ध्वनि है।

७. समश्नुते में लधिमानमात्मा—

दण्डकारण्य में निरन्तर तपोलीन अगस्त्य ऋषि के आश्रम के ऊपर से गुजरते हुए राम यज्ञाग्नि से उद्‌भूत धूम की सुगन्धि से अपनी आत्मा की पवित्रता, लघुता का वर्णन कर रहे हैं सीता से।

अगस्त्य ऋषि निरन्तर अग्नि होत्र करते थे, वे प्रातः मध्य एवं सायंकाल (तीनों कालों) में यज्ञ करते थे अतः उनकी यज्ञाग्नि त्रिविध विभक्त थी, अथवा त्रेताग्नि 'प्राजापत्य, आहवनीय एवं गार्हपत्याग्नि कहलाती है। उस यज्ञ की अग्नि से उठा हुआ धूम आकाश में विमान के मार्ग तक पहुँच गया और उसमें द्रव्य की पवित्र सुगन्ध थी, उसे सूँघ कर राम सीता से कहते हैं कि इस हवि की सुगन्ध को सूँघने से मेरी आत्मा रजोगुण का परित्याग कर हल्केपन का अनुभव कर रही है। थोड़ी देर पहले राम के हृदय में रजोगुण जन्य रागात्मक विकार उत्पन्न हो गया था, जिससे मन चंचल हो रहा था, किन्तु इस यज्ञ धूम से वह लघुता का अनुभव कर रहा है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञों का विशिष्ट महत्त्व है। "यज्ञाद् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभव। अन्नादभवन्ति भूतानि तस्मात् यज्ञं समाचर"। ऐसा उल्लेख मिलता है। मनुष्य की त्रिविधि प्रकृति बतलाई गयी है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। इनमें सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण का स्वरूप सांख्य शास्त्र में इस प्रकार वर्णित है—

"सत्त्वं लघु प्रकाशक मिष्टम् उपष्ठम्भकं चलञ्च रजः गुरु वरणकं तमः।" सतोगुण लघु (हल्का), प्रकाश करने वाला और इष्ट-हितकारी होता है। राम हवि की सुगन्धि से इसी सात्विक गुण का अनुभव कर विकारहीनता को प्राप्त हो रहे हैं।

कवि ने इसमें दर्शनशास्त्र के साथ भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी दृढ़ आस्था व्यक्त की है जहां ऋषियों को विशिष्ट सम्मान दिया जाता है।

८. नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्त

सुतीक्ष्ण नामक तपस्वी की कष्टसाध्य तपश्चर्या का वर्णन करते राम सीता को बतलाते हैं कि दण्डकारण्य में तपस्वियों की एक दीर्घ परम्परा है इनमें सुतीक्ष्ण नामक ऋषि इन्द्रियजयी हैं और वे अपने चारों ओर चार अग्नियां जलाकर तथा ऊपर से ग्रीष्म कालीन प्रखर तेज सूर्य रूप अग्नि से घिरे हुए बीच में तपस्या कर रहे है।

प्राचीन भारत में इस प्रकार की कठोर साधना के अनेक उपायों का वर्णन है जिनमें शीत ऋतु में खुले आकाश के नीचे आकण्ठ जलमग्न होकर तथा ग्रीष्म में चारों ओर अग्नि जलाकर तप करने का विधान है। 'तितिक्षा' शक्ति की पराकाष्ठा पर विद्यमान सुतीक्ष्ण ऋषि का वर्णन कर राम जैसे सीता को यह बतलाना चाहते हों कि मैंने वनवास काल में या तुमने अशोक वाटिया में जो कष्ट पाये हैं वे इन अकारण तप करने वाले ऋषियों की साधना से बहुत कम हैं।

उपर्युक्त श्लोकांश में "जो सुतीक्ष्ण = शीघ्र कुपित होने वाला है वह दान्त = सौम्य कैसे हो सकता है, यह आपाततः विरोध आभासित होता है किन्तु सुतीक्ष्ण नाम वाले चरित्र से सौम्य या दमनशील इस प्रकार अर्थ करने से विरोध का परिहार हो जाता है। अतः विरोधाभास अलंकार के द्वारा कवि ने सुतीक्ष्ण ऋषि की उत्कृष्ट तपस्या में श्री वृद्धि की है।

९. यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्

दक्षिणा पथ के ऋषियों के वर्णन प्रसङ्ग में शरभङ्ग नामक ऋषि ने यावज्जीवन अग्नि होत्र व्रत का पालन करते हुए यज्ञ किया और अन्तिम समय में स्वयं मन्त्रपूत अपनी इस देह को भी छोड़ दिया। यहाँ कवि का अभिप्राय है कि शरभङ्ग ऋषि ने अग्नि होत्र करते हुए ही अपने शरीर का त्याग कर दिया।

दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि ये तीन अग्नियाँ तीन सन्ध्याकालों की यज्ञाग्नियों के नाम हैं। अग्निहोत्रव्रती को नियमित रूप से बिना व्यवधान के इनमें यज्ञ करना होता है। शरभङ्ग ऋषि ने मृत्यु समय तक इसका निर्वाह किया। इसलिये यह कथन सार्थक है कि उन्होंने अपने शरीर का भी हवन कर दिया।

१०. योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि

अत्रि ऋषि के आश्रम के वृक्षों का वर्णन करते हुए राम कहते हैं कि आश्रम के वृक्षों की वेदी पर ध्यान मग्न बैठे हुए ऋषियों का यहाँ के वृक्ष मानो स्वयं ध्यान लगाने का अभ्यास कर रहे हैं।

कवि ने "संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति" इस उक्ति के अनुसार ऋषियों के सम्पर्क में रहने के कारण अचेतन वृक्षों में भी योगाभ्यास करने की सम्भावना की है। जिस समय आश्रम में वायु नहीं चलती, उस समय वृक्ष पूर्णतः निष्कम्प हो जाते हैं, अतः उनकी निष्कम्प स्थिति में ध्यान या योग लगाने की स्थिति उत्प्रेक्षित की है।

योगशास्त्र में योग के ८४ भेदों का वर्णन है। उनमें से एक वीरासन भी है, जो अत्रि ऋषि के आश्रम के मुनिजन धारण करते हैं। एक पैर को दूसरे पैर की जंघा (उरु) पर रखकर दूसरे पैर को पहले पैर की उरु पर रख कर सीधे निष्कम्प बैठने को वीरासन की संज्ञा दी गई है—

एकपादमथैकस्मिन् विन्यस्योरुणि संस्थितम् ।
इतरस्मिंस्तथा चान्यं वीरासनमुदाहृतम् ॥

वृक्षों पर ध्यानस्थ योगियों की सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

११. तत्त्वावबोधेन विनाऽपि भूय स्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ।

प्रयागराज में गङ्गा यमुना के संगम का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए राम सीता से कहते हैं कि संगम स्थल पर स्नान करने से पवित्र आत्मा हो जाने के कारण धार्मिक तत्त्वों का बोध न होने पर भी उनकी मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् गङ्गा यमुना के संगम में स्नान करने वालों को मोक्ष प्राप्त हो जाता है ।

शास्त्रों में तत्त्वज्ञान से मुक्ति का उल्लेख हैं—तत्त्वज्ञानान्मुक्तिः" प्रयागराज की महिमा समस्त तीर्थों में अधिक है। इसीलिये संगम स्नान का विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । कालिदास भी संगम के महत्त्व को स्वीकार करते हुए सीधे अर्थात् तत्त्वज्ञान के बिना ही मोक्ष प्राप्ति का उल्लेख करते हैं ।

१२. कैकेयि कामाः फलितास्तवेति

राम सीता को स्मरण दिलाते हुए कहते हैं कि यह वही शृंगवेरपुर है जहाँ अयोध्या से १४ वर्ष के वनवास का व्रत लेकर चले हुए हमने राजसी मुकुट का परित्याग कर जटाएँ बांधी थीं और हमारी जटाओं को देखकर सुमन्त्र (सारथी) यह कह कर रो पड़े थे कि "हे कैकेयी ! तुम्हारे मनोरथ सफल हो गये ।"

कवि इस श्लोकांश में कैकेयी के द्वारा अकारण राम को १४ वर्षों तक वन में रहने का जो वरदान माँगा गया था, वह अनुचित था, इस सुमन्त्र की भावना का वर्णन किया है । राम जो अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र एवं राज्य के उत्तराधिकार थे, उन्हें राज्य के उत्तराधिकार से वंचित करने एवं १४ वर्षों तक वन में रहने का कार्य कैकेयी ने कराया था । अतः इस सब का उत्तरदायित्व कैकेयी का ही था । इसी लिये सुमन्त्र कैकेयी के इस कृत्य की निन्दा करते हुए यह कहते हुए रो पड़े थे "कैकेयि कामाः फलितास्तवेति" ।

१३. तरङ्गहस्तेरूपतीव

वन प्रवास से लौटे हुए राम को अयोध्या और सरयू नदी में मातृ भाव की अनुभूति हो रही है कवि ने सरयू नदी की शीतल तरङ्ग वायु के स्पर्श से विमान में ही होने वाले सुखानुभव का वर्णन इस प्रकार किया है कि मानो माँ स्वरूपा सरयू दूर रहने वाले अपने पुत्र तुल्य राम का अपने तरङ्ग रूपी हाथों से आलिङ्गन कर रही है अर्थात् गले लगा रही है ।

लोक में भी जब कोई व्यक्ति दूर से या दीर्घ प्रवास से लौटता है तो माँ उसे गोद में भर कर उसको गले लगाती है। यहाँ राम के हृदय में सरयू के प्रति मातृवत् आदर भाव वर्णित है। उपगूहतीव में आलिंगन की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है जो सरयू नदी के प्रति राम के भक्तिभाव को और अधिक पुष्ट कर रहा है।

१४. सामर्थ्यपाणिभरितिऽभ्युपैति

अयोध्या पहुँचने पर स्वागत करने हेतु आते हुए भरत को देखकर राम कहते हैं। गुरुजनों को आगे कर सेना को पीछे रखकर वृद्ध मन्त्रियों के साथ भरत हाथों में पूजासामग्री लिये हुए पैदल ही मेरे स्वागतार्थ आ रहे हैं।

अपने से बड़ों का स्वागत करने विशिष्ट महापुरुषों, सैनिकों एवं मन्त्रियों के साथ पहुँचना चाहिए, इस परम्परा का पालन करते हुए भरत वनवास प्रवास से लौटे हुए अपने बडे भाई राम का स्वागत करने के लिए पैदल पहुँचे। भारतीय संस्कृति में किसी भी मांगलिक अवसर पर रिक्त हस्त उपस्थित होने की परम्परा नहीं है। इसलिये भरत के हाथों में अर्घ्य (पूजा सामग्री) है। कवि ने यहाँ सांस्कृतिक परम्पराओं का पालन किया है।

१५. श्रियंयुवाप्यङ्कगतामभोक्ता

राम भरत के अचरण की प्रशंसा में कहते हैं कि पिता दशरथ के द्वारा श्री राज्यलक्ष्मी भरत को दे दी किन्तु युवक होने पर भी भरत ने उसका भोग नहीं किया। सामान्यत: लोक में ऐसा आचरण देखने को नहीं मिलता। जो भोग के लिये गुरुजनों द्वारा प्रदत्त हो और ग्रहीता युवा भी हो किन्तु भोग न करे। भरत ने राज्य लक्ष्मी का भोग नहीं किया इसलिये वे उनका आचरण असाधारण है इसलिये उनके इस आचरण को असिधाराव्रत कहा गया है भरत की दृष्टि में दशरथ द्वारा प्रदत्त राज्यलक्ष्मी का वास्तविक अधिकारी राम है, वह उसके पास मात्र धरोहर है। इसीलिये उसने उसका भोग न कर वल्कलवसन रहकर पालन किया।

१६. अभ्यस्पतीवव्रतमासिधारम्

राज्यश्री प्राप्त करके भी भरत ने उसका भोग नहीं किया, उसके इस आचरण की प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं कि इतने वर्षों (१४ वर्षों) तक राज्यलक्ष्मी के स्वामी रहकर भी भरत ने जो युवक होकर भी उसका भोग नहीं किया उससे यह सिद्ध है कि भरत ने असिधाराव्रत का पालन किया है। असिधाराव्रत वह होता है—जो तलवार की धार पर चलने जैसा हो, थोड़ी सी भी असावधानी होने पर तलवार की धार से पैर कट सकता है। यादव कोश में असिधारावृत के सम्बन्ध में उल्लेख है—

"युवा युवत्या सार्धं यन् मुग्धभर्तृवदाचरेत्
अन्तर्निवृत्तसङ्गः स्यादासिधारव्रतं हि तत् ॥"

अर्थात् युवा-युवती का एक साथ रहते हुए परस्पर पति-पत्नी भाव धारण करते हुए भी परस्पर आसक्ति और भोग न करना असिधाराव्रत कहलाता है।

यहाँ भरत राजा बने इसलिये राज्यलक्ष्मी उनकी पत्नी के रूप में थी, दोनों भोग की युवा भी हैं किन्तु भरत में उस के प्रति आसक्ति ही नहीं रखी तो बात ही क्या। इसीलिये उनका यह आचरण असिधाराव्रत जैसा हुआ।

कालिदास ने भरत के भ्रातृप्रेम का जो आदर्शचरित प्रस्तुत किया है वह अति उदात्त है। श्रीराम को ही उस राज्यलक्ष्मी का वास्तविक अधिकारी (पति) मानने के कारण भरत ने स्वयं संन्यस्त होकर अपनी समस्त इन्द्रियों का दमन करते हुए राज्यश्री के प्रति अनासक्ति रखी यह कवि का प्रतिपाद्य है।

१७. शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरेते—

अयोध्या में वानर सेनापतियों के हाथियों पर बैठने की अनुभूति का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि राम की आज्ञा से वानरों के सेनापति सुग्रीव-आदि ने मनुष्य का रूप धारण कर जब मदजल बहाने वाले हाथियों की सवारी की तो उन्हें पर्वतारूढ़ होने का सुख प्राप्त हुआ।

वस्तुतः बन्दर जाति के हाथियों पर चढ़ने से कोई सुख नहीं मिलता, उन्हें तो वृक्षों और पर्वतों पर चढ़ने में ही आनन्द मिलता है। इसलिए कवि ने हाथियों के मदजल बहने का उल्लेख कर उनको पर्वत का रूप दे दिया। हाथियों की ऊँचाई और उनके मदजल से निर्झर का आभास कर उन वानरों को पर्वतारोहण का सुख प्राप्त हुआ।

कवि प्रसिद्धि और पशुओं के लक्षण ग्रन्थ के अनुसार श्रेष्ठ हाथियों के कपोल, आँख, कान आदि से मदजल बहने की प्रसिद्धि है।

१८. वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः

भरत के द्वारा सीता के चरणों में शिर रखकर प्रणाम करने का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि सीता के चरण वन्दनीय हैं क्योंकि रावण के द्वारा सीता के चरणों की वन्दना करने पर भी जिन चरणों ने उसका निवेदन नहीं माना और सीता ने अपने सतीत्व की रक्षा की। ऐसे पवित्र सीता के चरणों में बड़े भाई राम का अनुकरण करने वाले जटायुक्त बाल वाले भरत के शिर रखने से परस्पर दोनों अर्थात् सीता के चरण भरत के शिर स्पर्श से और भरत का सिर सीता के चरणस्पर्श से पवित्र हो रहे थे।

कवि ने इस श्लोक में सीता के सतीत्व और भरत के भ्रातृ आदर्श के आधार पर दोनों को प्रशंसनीय माना है।

Sri Sankaracharya ... Mahavidyalaya ★ Bharatiya Vidya

awan's Sri Sankaracharya
Mahavidyal
Bharatiya Vidy

SCANNED